UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186172

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H375.420954 V99B Accession No. G.H.2944

Author व्यास, जगदीश प्रसाद

Title भारत में अंग्रेजी शिक्षा १९५३

This book should be returned on or before the date last marked below.

भारत में अंग्रेजी शिक्षा

(ऐतिहासिक और आलोचनात्मक विवेचन)

लेखक

प्रो० जगदीशप्रसाद व्यास

एम. ए., बी. टी., पी. ई. एस.

प्रकाशक

ज्ञान-मंदिर, दीक्षितपुरा, जबलपुर

मुद्रक--

जयहिंद प्रेस, गोपालबाग,

जबलपुर

प्रमुख वितरक—

सुषमा साहित्य मंदिर, जबलपुर

मयूर प्रकाशन, झांसी

प्रथम संस्करण, १५००

१९५३

प्रकाशक—

मूल्य ५) रुपया

ज्ञान-मंदिर, जबलपुर

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी

को

श्रद्धा और कृतज्ञतापूर्वक

प्रकाशक का वक्तव्य

प्रो० जगदीशप्रसाद व्यास की यह मौलिक और सामयिक पुस्तक हिन्दी के शिक्षण साहित्य में अपना विशेष स्थान रखेगी। लेखक ने बड़े परिश्रम और अध्ययन के पश्चात् इस पुस्तक की रचना की है। अपने विषय की इतने विशद रूप में लिखी हुई कदाचित् यह पहली हिंदी पुस्तक है। यदि हिंदी साहित्य और शिक्षण क्षेत्र में इसे समुचित समादृत किया गया तो निकट भविष्य में प्रोफेसर व्यास की अन्य उपयोगी और सामयिक पुस्तकों के प्रकाशन का भी प्रबंध किया जा सकेगा।

न्यायाधीश सर विलियम जोन्स :—(१७४६–१७९४)

भारतीय ज्ञान का शास्त्रीय अध्ययन करने वाला प्रथम अंग्रेज विद्वान् ।

(ब्रिटिश कौंसिल के सौजन्य से)

निवेदन

भारत की अंग्रेजकालीन शिक्षा का इतिहास कक्षा-भवन का इतिहास न होकर सरकारी सचिवालय और विभाग का इतिहास है। मोटे रूप से ऐसे सरकारी कागजों और पत्रों के आधार पर हम इस सारी अवधि का विभाजन कर लेते हैं। अंग्रेजी सत्ताके आने के युग से लेकर उसके लौट जाने के बीच में कुछ सरकारी दस्तावेज या तो अपने युग की धारा विशेष का खंडन करते हैं या समर्थन, और तदनुकूल भावी-धारा को दिशा प्रदान करते हैं। इस दृष्टिकोण से यह सारा विभाजन कुछ इस प्रकार से होता है।

(१) अंग्रेजी-सत्ता का आगमन---१८१३ का पूर्व युग
(२) कशमकश की भूमिका---१८१३-१८३५
(३) द्वंद्व-पूर्ववाद-पश्चिमवाद---१८३५-१८५४
(४) वुडके पत्रक का युग---१८५४-१८८१
(५) हंटर और पहिली विश्वविद्यालय कमीशनें-१८८२-१९१७
(६) राजनैतिक सुधार युग १९१८-१९३७
(७) स्वतंत्रता-संघर्ष युग १९३७---४७
(८) स्वातंत्र्य युग १९४७ के बाद

कहना न होगा इस इतिहास के लिखनें में इन सारे के सारे सरकारी कागजों की मदद के बिना काम नहीं चल सकता। प्रकाशित-सरकारी दस्तावेजों के उद्धरणों का उपयोग स्वतंत्रता पूर्वक करने में कृतज्ञता-प्रकाशन आवश्यक भी नहीं होता। तो भी जिन अफसरों ने उन्हें रचने में लगन से काम किया, उनकी शिक्षात्मक सूक्ष्मबुद्धि का हमें कायल होना ही पड़ता है। अंग्रेज जैसे राजनीति-कूटनीति पटु थे वैसे ही शिक्षा-विशारद भी। उनके विवेचनों और दृष्टिकोणों में सदा राजनैतिक दुर्गंधि का अभियोग लगाया गया, परन्तु आज की परिवर्तित राजनीति के

बीच में भी शिक्षा की हालत उतनी ही संगीन और समस्यामूलक है।

बात यह है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद नेता और अनुयायी दलों में एक शैथिल्य, (इनर्शिया) और दुश्चरित्रता का संचार हो गया, जिनका प्रभाव हमारे सारे जीवन में व्याप्त दिखा। यूनिवर्सिटियां गृह-कलहों और बेईमान हथकंडों के अड्डे बन गईं, हाई स्कूल और मिडिल स्कूल नौकरशाही की निरंकुशता और मनमानी के क्रीड़ास्थल तथा प्रायमरी स्कूल स्वायत्त-संस्थाओं की चुनाव-बाजी के चट्टे-बट्टे। शिक्षा की खराबी का परिणाम तत्काल नहीं दिखता। परन्तु 'लांग-रन' में वह सर्वनाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। जब तक शिक्षा क्षेत्र से हम न्यस्त–स्वार्थों की धमाचौकड़ी,–चाहे वे नौकरशाही न्यस्त-स्वार्थ हों चाहे राजनैतिक–का निष्कासन नहीं करेंगे, रिपोर्टों, कमीशनों, और समितियों के बूते कुछ नहीं होगा, सिवा न्यस्त स्वार्थों की संख्या–वृद्धि के।

मुझे आशा है यह रूप-रेखा गलत न समझी जाकर भारत के शिक्षा-हितैषियों और न्यस्त स्वार्थों को अपने अंतर की खोज की प्रेरणा देगी। मेहयू, मेस्टन, परांजपे, निरुल्ला-नायक, प्रभृति महाशयों की रचनाएं जबसे मैंने पढ़ीं थीं, मैं चाहता था भारत में अंग्रेजी शिक्षा का हिन्दी इतिहास भी प्रस्तुत हो। एतदर्थ उनका मैं ऋणी हूँ; इसी तरह सरकारी रिपोर्टों का भी।

अपने लिखने के काम में यदि मैं अपने बड़े भाई पूज्य पं. रामेश्वर गुरु की प्रेरणा और छोटे चित्रकार भाई चिरंजीव विश्वनाथ के परिश्रम के लिये उन्हें धन्यवाद दूँ तो साफ गुस्ताखी है। फिर थोड़ी गुस्ताखी ही सही!

जबलपुर
नवम्बर १९५२

जगदीशप्रसाद व्यास

भारत में अंग्रेजी शिक्षा

सूची और व्याख्या

भारतीय शिक्षा की रूपरेखा

प्राग्वैदिक भारत में क्या सार्वजनिक शिक्षा थी? पंच-तत्वों की उग्रता के शमनार्थ यज्ञ-विधान---यह सार्वजनीन भावना शिक्षा की प्रेरणा रही-वेद पौरुषेय है?-"सार्वजनिक शिक्षा जीवन के अनिवार्य अंगों को छूती हुई होती है" इस कसौटी पर प्राचीन शिक्षा कसी जावे-राष्ट्रीय जीवन से प्रेरणा पा शिक्षा उसे प्रतिबिंबित करती है-भारत अनेक राष्ट्रीय धाराओं का संगम और संघर्ष-अंग्रेजी-युग की शिक्षा में अध्यापक नहीं हुए, केवल विचारक हुए-अंग्रेजी से मुठभेड़-लोक-शिक्षा में सरकारी तंत्र को अंग्रेज लोग नहीं मानते-लोक-शिक्षा या वर्ग-शिक्षा मात्र---वुड का पत्रक---पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति,-भाषा का प्रसार, मिशनरियों का काम-सरकारी नौकरियाँ---२० वीं शती-भारत के जीवन में विद्रोह और करवट पृ. १-११

अध्याय १

जब अंग्रेज-सत्ता आई (१८१३ का पूर्व युग)

कंपनी के नौकरों के वास्ते पादरी---यूरोपीय मिशनरियों के धर्मादा स्कूल---कलकत्ता मदरसा (१७८१) और काशी विद्यालय (१७९१) की स्थापना, कानून-रचना---भारत की शिक्षा-दान-परंपरा और भारतीयों की सरकारी नौकरी में रुचि---मिशनरी-उद्देश्य था धार्मिक, अत: देशभाषा व प्राथमिक शिक्षा---कंपनी उद्देश्य था उच्च-वर्ग तथा शासनार्थ शिक्षा---सन् १७८७ में ग्रांट का उल्लेख---कंपनी की धार्मिक तटस्थता की वृद्धि---सिरामपुर का पादरी-त्रिगुट---कंपनी

और मिशनरियों के शिक्षा-प्रयासों का द्वन्द्व---एडमंड बर्क की शिक्षा विषयक वकालत बनाम कंपनी की धन कमाऊ नीति---पादरी चार्ल्स-ग्रांट की भारतीय चरित्र-हीनता-विषयक दलील तथा अंग्रेजी शिक्षा की आवश्यकता---गवर्नरजनरल लार्ड मिन्टो का पूर्वी-ज्ञान-प्रणाली विषयक मिनिट---सन् १८१३ का चार्टर तथा एक लाख रुपये की रकम का कम्पनी द्वारा शिक्षा के हेतु उपयोग---कर्तव्य---१९ वीं शती, भारतीय शिक्षा प्रणाली की सरकारी रिपोर्टें---टामस मनरो की मद्रास प्रांत की रिपोर्ट---मद्रास के कुछ आँकड़े---भारतीय शिक्षा के कुछ रीति-रिवाज--दंड-विधान तथा मानीटर प्रथा, पाठ्य-क्रम का नियमन---बंबई की रिपोर्ट, शिक्षा-प्रणाली भारतीय समाज और अर्थ-व्यवस्था के अनुरूप है---मुस्लिम संस्थाएं और अंग्रेजी संस्थाएं---बंगाल की रिपोर्ट, विलियम एडम, शिक्षा का विस्तृत स्वरूप, मुस्लिम संस्थाओं का पाठ्य-क्रम अध्यापन-क्रम ओर छुट्टियां---बंगाल में स्त्री-शिक्षा---देशी शिक्षा-प्रणाली के ह्रास का एडम द्वारा निदान। पृ. १२-२७

अध्याय २

कशमकश की भूमिका (१८१३-३३)

चार्टर-कानून की एक लाख रुपये वाली धारा और व्यापारी कंपनी के व्यापारी उद्देश्य---कंपनी के अफसरों की शिक्षा-प्रसार-साधन-विषयक-विविधता---ग्रांट एक लाख से दस लाख---गवर्नर जनरल मोयरा का पत्र---अंग्रेजी राष्ट्र का धर्म है भारत में शिक्षा-प्रसार---बंगाल की लोकशिक्षा समिति की सरकार द्वारा स्थापना---एच, टी प्रिंसेप---राजा राममोहन राय का अंग्रेजी मोह---अजीब देश भक्ति और दूरदर्शिता---उसका आज का दुष्परिणाम---क्या भारतीय स्वतंत्रता अंग्रेजी शिक्षा की देन है अथवा इतिहास और प्रकृति का शाश्वत नियम---अंग्रेजी देश भाषाओं का नाश करके बढ़ी---अंग्रेजी फैलती गई---

बंबई में शिक्षाविभाग की स्थापना––साधारण जनमात्र की शिक्षा बंबई नेटिव एजुकेशन सोसाइटी––वार्डन द्वारा एलफिस्टन के इस मत का विरोध––बंबई और बंगाल की विभिन्न द्वंद्वात्मक परिस्थितियां–– मद्रास में मनरो द्वारा मास्टरों के ट्रेनिंग स्कूल का सुझाव––ईसाई मिशनरियों द्वारा देश-भाषाओं का अध्ययन–– पृ. २८ –४०

अध्याय ३

द्वन्द्व : पूर्ववाद और पश्चिमवाद (१८१३-४५-५४)

द्वंद्व के तीन अभिनेता थे––राममोहनराय की अंग्रेजों के प्रति कृतज्ञता तथा उनकी अपनी सूझ––"संस्कृत भाषा और साहित्य भारत को चिर-अंधकार में पटकने के साधन हैं" राजा राममोहनराय–– द्वंद्व का बीज: १८१३ के चार्टर एक्ट के कतिपय शब्द-समूह––पश्चिमी ज्ञान और भाषा को प्रोत्साहन देकर चार्टर द्वारा स्वीकृत एक लाख रुपयों का सदुपयोग होगा, इसमें कोई वचन-भंग नहीं––भारत के बौद्धिक स्वास्थ्य की मांग है अंग्रेजी; अंग्रेजी सीखने के वास्ते वे कीमत देने को तैयार हैं––पूर्वी शिक्षा–प्राप्त विद्यार्थियों की अर्जियां, उन्हें शिक्षा से कोई लाभ नहीं होता––संस्कृत–फारसी–प्रकाशन विशुद्ध हानि है–– कानूनी विशेषज्ञता अथवा अंध विश्वासों की शिक्षा––हमारा उद्देश्य एक दुभाषिया-संप्रदाय मात्र–निर्मित संस्थाओं को भले न तोड़ा जाय पर प्रोत्साहन देना व्यर्थ है––मैकाले की राजनैतिक दूरदर्शिता और उसका परिणाम १९४७ की भारतीय स्वतन्त्रता – प्रिंसेप की बेवसी और बैंटिक की उस पर डाँट––पूर्ववादी दल पराजित––बैंटिक का प्रस्ताव १८३५––डाउनवर्ड फिल्ट्रेशन थ्योरी 'ऊर्ध्व मूलमधः शाखम्' है और अप्राकृतिक है––सार्वजनिक शिक्षा ही बुनियाद है वर्ग शिक्षा नहीं–– प्रिंसेप द्वारा आलोचना ; एक लाख वाली सरकारी रकम ब्रिटिश की ऑक्सफर्ड, कैंब्रिज के एंडाउमेंट फंड्स की नाई है : उसमें सरकार हस्त-

क्षेप नहीं कर सकती ---लार्ड हार्डिंज का सरकारी नौकरी विषयक प्रस्ताव (१८४४)-यूनिवर्सिटियों के प्रस्ताव सन् १८५४ , उद्देश्य प्रमाण-पत्र और सम्मानार्थ डिग्रियां देना था---आधार लंदन यूनिवर्सिटी लाभों की कल्पनाएं । पृ.४१-६५

अध्याय ४

डायरेक्टरों का शिक्षा-पत्रक १८५४

महत्वपूर्ण और संपूर्ण चिट्ठी, अफसरी-मिशनरी-मनोमालिन्य का अन्त---सरकारी नौकरी और अंग्रेजी माल का मार्केट रहे---अंततः देशभाषाओं को पुष्ट बनाने में अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त भारतीय ही समर्थ होंगे---शिक्षा की विशुद्ध सरकारी मशीनरी स्थापित होना आवश्यक---विश्वविद्यालय संगठित करने की स्वीकृति और रूपरेखा प्रस्तुत हुई; वे परीक्षक मात्र होंगी---सरकारी संस्थाएं केवल मार्ग-प्रदर्शन का हेतु रखेंगी---प्रत्येक जिले में उपयोगी शिक्षा के प्रसारार्थ शालायें खुलें, देशभाषाओं की और एंग्लो वर्नाक्युलर शालाओं को समान सम्मान और प्रोत्साहन दिया जावे---देशी संस्थाओं की आत्म-निर्भरता का आदर्श, तथा सरकारी मुखापेक्षा का निष्कासन होना चाहिये---छात्र-वृत्तियां और मास्टरों की ट्रेनिंग की व्यवस्था---पाठ्य पुस्तकें---कृषि-शिक्षा---स्त्री और धर्म शिक्षा---मिस्टर टॉमसन की निरीक्षण-प्रणाली की सिफारिश---बंबई और मद्रास । पृ.-६६-७७

अध्याय ५

भारत की पहली यूनिवर्सिटियाँ

(१८५६ से शती अंत)

प्रांतीय सरकारों को यूनिवर्सिटी-कानून बनाने का अधिकार

मिला (१८५५–२६ जनवरी)––विषयों और परीक्षार्थियों का स्टेंडर्ड––सब कानून गवर्नर जनरल की स्वीकृति प्राप्त करें ताकि केन्द्रीय अधिकारी एकरूपता ला सकें––बंगाल, उत्तरप्रदेश, मद्रास और बम्बई में कालेजों की स्थापना––उत्तरप्रदेश की हल्काबंदी-प्रणाली और शिक्षा-प्रसार––पंजाब यूनीवर्सिटी द्वारा पूर्वी विद्याओं की डिग्री––इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में जर्मनी जैसी अध्यापनकारिणी प्रणाली शुरू हुई ––शती के अंत तक की यूनिवर्सिटियाँ । पृ. ७८–८६

अध्याय ६

हंटर कमीशन (१८८२)

मिशनरियों और सरकार के बीच मतभेद––सरकारी स्कूल वुड के पत्रक के प्रतिकूल खुलते ही गये–मिशनरियां क्षुब्ध हो गईं अतः कमीशन का निर्माण––प्राइवेट एजेंसियों का स्थान निर्धारण––प्रायमरी शिक्षा स्थानीय संस्थाओं के जिम्मे हो परन्तु सुचारु संचालन के हित में सरकार अपना हाथ न खींचे––गैर सरकारी सहयोग प्राप्त किया जावे––मिशनरी-प्रयास प्राइवेट होते हुए भी स्थानीय नहीं : तो भी वह प्राइवेट व्यवस्था के सामर्थ्य का आदर्श प्रस्तुत करेगा––भारतीय देशी शिक्षा; सहायक-दान की निधि का दान––प्रायमरी शिक्षा का स्थानीय कोषों पर एकांत अधिकार–आय-व्यय सम्बन्धी सिफारिशें––माध्यमिक शिक्षा; स्थानीय प्रयास और सहयोग के ही बल पर सरकार इसे चलाने को बाध्य होगी––कालेजी-शिक्षा––ग्रांट देने के सिद्धांत––विभागीय शासन, शिक्षार्थी–के स्थानांतर पर भर्ती के नियम, प्रोफेसरों, इंस्पेक्ट्रेसों की नियुक्ति–विशेष-वर्गों की शिक्षा; राजा-रईस, मूल व नीच जातियाँ, मुस्लिम विधवाओं और मास्टर-पत्नियों को प्रोत्साहन––तैलंग का मिनिट न्यूनतम फीस का और सहायक दान की निधि का निश्चय डी. पी.

आई. के अधिकार में क्यों हो?– भारत की शिक्षा-परंपरा में फीस को कोई स्थान नहीं––उच्च शिक्षा और सार्वजनिक शिक्षा का अन्योन्याश्रय संबंध, पाँच फी सदी फीस–माफ–विद्यार्थी कम हैं––नीति की शिक्षा लेक्चरों मात्र से नहीं होगी––सरकारी विचारों के सामने समर्पण अथवा विद्रोह: धर्म शिक्षा सामान्य सिद्धांतों या शिक्षार्थियों के धर्म-सिद्धांतों की शिक्षा ? –– भारतीयों की इंस्पेक्टरी पर नियुक्ति, प्रत्येक शाला की व्यवस्था आदर्श हो जिससे इंस्पेक्टरी ही अनावश्यक हो जावे––परिणाम––प्रायमरी शिक्षा स्वायत्तसंस्थाओं के जिम्मे – मिशनरियों ने अपनी व्यवस्था का स्टेंडर्ड तो बढ़ाया पर सरकारी नीति और आज्ञाओं का घोर विरोध किया––मिशनों का दूसरा दल कहता, शिक्षा का उद्देश्य धर्म परिवर्तन न होकर ईसाई-धर्म-उपदेश-प्रचार है––माध्यमिक प्राइवेट स्कूल––शिक्षा का ध्येय केवल अंग्रेजी की योग्यता मात्र रहा––सहायक दान की तीन प्रणालियां, वेतन, अवधि और परीक्षा-फल––प्रायमरी शिक्षा; आत्म-निर्भरता का सिद्धांत कार्य क्षेत्र में––फीस वसूलने की कठिनाइयाँ––मध्यप्रदेश में प्रायमरी शिक्षा––सरकारी दान सब सूत्रों की आय का आधा या व्यय का तिहाई होगा। पृ. ८७–११०

अध्याय ७

व्यावसायिक शिक्षा (१९ वीं शती)

सन् १८३२ में पहली मेडीकल शिक्षा संस्था––१८३५ में कलकत्ते का मेडीकल कालेज––१८४५ में बंबई का ग्रांट मेडीकल––इंजीनियरिंग कालेजों की स्थापना––संगठन १८५४ से शुरू हुआ, पूना, रुड़की, मद्रास––बारिक–मास्टरी के मुहकमे के खुलने से लोकप्रियता–– लॉ कोर्स लोकप्रिय रहा– शिक्षा विभाग, यूनिवर्सिटी और हाईकोर्टों का सम्मिलत नियंत्रण , स्वतंत्र ला कालेज––कृषि, पशु पालन, वन-

विज्ञान; डाक्टर वोल्कर की सिफारिशें; नागपुर की त्रिवर्गीय कृषि-संस्था---देहरादून का फारेस्ट स्कूल सन् १८७८। विभागीय एवं जनता की जरूरतें---ललित कला, बंबई का जेजे स्कूल; टाटा की उदारता--
पृ. १११-११६

अध्याय ८

लार्ड कर्जन की तेजी--बीसवी शती का प्रारंभ
(१९००-२०)

लार्ड कर्जन की तेजी से सारे नौकरशाह चौकन्ना हो गये, १८८२ के बाद फीस कमाऊ यूनिवर्सिटियों की बाढ़: अत: लार्ड कर्जन क्षुब्ध : शिक्षा सुधार के बदले शिक्षा-प्रसार की दलील : लन्दन यूनिवर्सिटी का विधान बदला (१८९८) शिक्षाका स्टेजों में विभाजन केवल सुविधा हेतु है।

१९०२ का विश्वविद्यालय कमीशन अध्यापनकारिणी यूनिवर्सिटियां अंग्रेजी बोलने-लिखने की दक्षता बहुत असन्तोषजनक---भारत की अभिजात भाषाएं---देश भाषाएं---यूनिवर्सिटी परीक्षाएं---प्राइवेट उम्मीदवार; भारतीय विश्वविद्यालय एक्ट १९०४, गोखले कमीशन की कार्रवाई के विरुद्ध हो गये---भारतीय प्रयासों का कोई प्रतिनिधि नहीं---भारतीय विरोध की भूमिका राजनैतिक और शासकीय है---यूनिटरी और फेडरल यूनिवर्सिटियों का भेद (१९१३ का सरकारी प्रस्ताव)---१९१६ के बाद ही नयी यूनिवर्सिटियां लगभग हर प्रांत में बनने लगीं---माध्यमिक शालाओं को दो से मान्यता लेनी पड़ती : शिक्षा विभाग और यूनिवर्सिटी से---मान्यता प्राप्ति की बहुतेरी शर्तें---मिडिल स्कूलों में मातृ-भाषा शिक्षा का माध्यम होने लगी---प्रायमरी शिक्षा---लार्ड कर्जन ने इसे शासकीय आवश्यकता घोषित किया---

परीक्षा-फलों के अतिरिक्त कारणों पर भी ग्रांटें दी जावें--बड़ौदा में अनिवार्य निःशुल्क प्रायमरी शिक्षा (१९०६)-- कानूनी अनिवार्यता के पक्ष-विपक्ष की दलीलें-- पृ. ११७-१३३

अध्याय ९

सन् १९१३ का सरकारी प्रस्ताव

संख्या और क्वालिटी की कशमकश का माध्यमिक स्टेज में प्रसार---प्राथमिक शिक्षा को एकदम सर्वत्र निःशुल्क कर रखना व्यावहारिक नहीं--ग्रामीण और शहरी पाठ्य-क्रम; मास्टरों की ट्रेनिंग, और नौकरी की शर्तों में सुधार--प्रायमरी के मास्टरों तथा शिक्षा की क्वालिटी-साक्षरता-वृद्धि--भारतीय शालाएं समाप्त--ट्रेनिंग संस्थाओं की संख्या वृद्धि- ग्रामीण नार्मल स्कूलों की रचना की कठिनाइयाँ-माध्यमिक शिक्षा: मान्यता की अइच्छुक शालाएँ और उनके शिक्षार्थी-समस्या--प्राइवेट व्यवस्था की सीमाएँ; सरकारी नियंत्रण का क्षेत्र--ट्रेनिंग-प्राप्त मास्टरों की संख्या में संवर्धन; सरकारी हाई स्कूल अनुकरणीय माडल के रूप में संगठित हो--सिफारिशों के बावजूद भी प्राइवेट स्कूलों की संख्या बढ़ी--यूनिवर्सिटी शिक्षा--अध्यापनकारिणी और संबद्धतादायनी यूनिवर्सिटियां रची जावें--विद्यार्थियों के सर्वतोमुखी सुधार के साधन--मेट्रिक की व्यबस्था सरकार के ही जिम्मे हो--
पृ. १३४-१४४

अध्याय १०

कलकत्ता विश्वविद्यालय कमीशन १९१७-१९

इंटरमीजियेट कालेजों के अलगीकरण का सुझाव: केन्द्रीय यूनिवर्सिटियों का प्रत्येक प्रान्त में संगठन हो, आंतरिक व्यवस्था में अधिक अधिकार हों--मुस्लिम लड़कियों के वास्ते पर्दा-स्कूल- माध्यमिक शिक्षा:

चार दोष सूत्र (१) शिक्षक (२) बोझिल शिक्षा, (३) सामूहिक भाषण प्रणाली, (४) सरकार यूनिवर्सिटी खींचतान--एक अलग बोर्ड बने, उसका संगठन--डी.पी. आई. को मुतफरकात शासन से अवकाश मिले-- युनिवर्सिटी अध्यापन में सहयोग नहीं, ऊंचा स्तर नहीं, सरकारी नियम बहुत सख्त और हानिकारक हैं--केवल सरकारी नौकरी उद्देश्य है--सहयोगात्मक अध्यापन, सरकारी हस्तक्षेप न्यूनतम हो--नौकरियों के हेतु, सरकारी नौकरी-कमीशनों की अपनी परीक्षाएँ हों-स्त्री शिक्षा: विशेष कोर्स आवश्यक हैं—अध्यापन कार्य सर्विस के आधार पर न होकर व्यवसाय के आधार पर हो; व्यवस्था भी तदनुकूल होनी चाहिये—मास्टरों की ट्रेनिंग--व्यावसायिक शिक्षा--शिक्षा का माध्यम--परीक्षाएं। पृ, १४५-१५९

अध्याय ११

सुधार कानून का युग (१९२०--१९३६)

घटनाओं की गति बड़ी तीव्र हो गई—शिक्षा हस्तांतरित विषय—केन्द्र और प्रांतों के बीच की आर्थिक व्यवस्था—इंपीरियल सर्विसों द्वारा विरोध, नवीन भारतीय मंत्री समुदाय—बिना इन नौकरशाहों के सारी योजनाएं असफल ही होतीं--आई. ई. एसों की भर्ती बंद (१९२४)--१९३० की आर्थिक हालत और मास्टरों का निष्कासन—हार्टग-समिति की नियुक्ति उसका निदान और सुझाव-- शिक्षा का अपव्यय और प्रभाव हीनता: निरक्षरता ही परिणाम; असंतुलित शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य यूनिवर्सिटी प्रवेश मात्र; यूनिवर्सिटियों की कूपमंडूकता--शिक्षा राष्ट्रीय कल्याण का विषय अत: केन्द्रीय व्यवस्था की अनिवार्यता—स्थानीय संस्थाओं के हाथ में शिक्षा की दुर्दशा; स्त्री-शिक्षा का महत्व; भारतीय शिक्षाविदों के गैर-सरकारी प्रयत्न; शांतिनिकेतन इत्यादि । पृ, १६०-१६८

अध्याय १२

प्राथमिक शिक्षा १९१९-३५

शिक्षा का राजनैतिक पहलू; निर्वाचित मंत्रियों द्वारा अनिवार्य शिक्षा कानूनों की रचना--हार्टॉग समिति की नियुक्ति--विस्तार और संकुचन--गांवों की अपनी निज़ी आर्थिक, सामाजिक और नैतिक समस्याएं और प्रसार—अपव्यय और गति अवरोध के कारण दूर किये जावें, वयस्कों और प्रौढ़ों को शिक्षित बनाया जाय—शिक्षा -संस्थाओं का असंतुलित वितरणः आर्थिक कठिनाइयों का प्रश्न, जन संख्या की समस्या-- पाठ्यक्रम और शिक्षक वर्ग—निरोक्षकों की अनुपयुक्तता, कानून पास करना यथेष्ट नहीं—स्थानीय संस्थाओं की अपनी लोकप्रियता की समस्या—प्रसार के स्थान पर संगठनः भारतीय जनमत का घोर विरोध; सिफारिशें; ग्रामीण स्कूल ग्रामीण जीवन और सुधार का केन्द्र बने; प्रसार के बदले सुधार पर ही सरकारी शक्तियां केन्द्रित— पृ. १६८--१७७

अध्याय १३

माध्यमिक और यूनिवर्सिटी शिक्षा १९१९-३५

मातृभाषा अध्यापन का माध्यम: मध्यप्रदेश का नेतृत्व-किन्तु अंग्रेजी का मोह रहा ही—कृषि, लुहारी, बढ़ईगिरी की शिक्षा—संख्याएं बढ़ी—स्त्री शिक्षा, सह शिक्षा और शिक्षित बेकारी की समस्याएँ—यूनिवर्सिटी शिक्षा--लगभग हरएक प्रांत में एक यूनिवर्सिटी बनी, नागपुर यूनिवर्सिटी कानून १९२३—आंध्र का शिक्षा-माध्यम देश भाषा; आगरा में संबद्धतादायनी यूनिवर्सिटी बनी—सर अन्नामलाई चेट्टियरकी उदारता; ट्यूटोरियल-प्रणाली—दिल्ली की संघीय यूनिवर्सिटी--विभागों की बाढ़--आर्थिक समस्या; सप्रू कमेटी,

बेकारी पर---सैन्य-शिक्षा लोकप्रिय हुई---अन्य उच्च कोटि की संस्थाएं ---रिसर्च की इम्पीरियल कोंसिल, साइंस इंस्टीट्यूट बंगलोर---महिला यूनिवर्सिटी बंबई, बोस रिसर्च इंस्टीट्यूट, भांडारकर पूर्वी रिसर्च इंस्टीट्यूट, जामिया मिलिया इस्लामिया; हारकोर्ट बटलर इंस्टीट्यूट कानपुर, विश्वभारती शांतिनिकेतन--- खदान स्कूल धनबाद---अंत-विश्वविद्यालय बोर्ड की स्थापना १९२४--- पृ:१७८-१८८

अध्याय १४

वुड एबट रिपोर्ट १९३७

सदाचारात्मक योग्यता और व्यावसायिक विशेषज्ञता की शिक्षा का प्रश्न---स्कूलों और व्यवसाय वृद्धि में संतुलन आवश्यक है; केवल चतुर कार्यकर्त्ताओं, के बल कच्चा माल उद्योगों में नहीं लगाया जा सकता–छोटे पैमाने और संगठित उद्योगों के वास्ते अलग किस्म के कार्यकर्त्ता और शिक्षा जरूरी होती है; निरीक्षक कार्यकर्त्ताओं की जरूरत सबसे पहले है---वाणिज्य के कार्यकर्त्ताओं की शिक्षा–उद्योगपति स्थायी इमारतें मशीनें इत्यादि दें---जूनियर सीनियर व्यावसायिक शालाएँ---पाठ्य-क्रम और अध्यापकों की योग्यताएँ–उच्च उत्तरदायित्व के लिये और जीवि-कोपार्जन मात्र के लिये विभिन्न शिक्षा जरूरी होती है–पौलीटैक्नीकों का सुझाव–कला की शिक्षा, अल्पकालीन शालाएँ, नौकरी की सुविधा, मास्टरों की ट्रेनिंग, सामान्य शिक्षा विषयक सुझाव--- पृ.१८९--१९९

अध्याय १५

नई धाराएं : महात्मा गांधी-युग

प्रांतीय स्वशासन १९३७, महात्मा गांधी की अहिंसा की विजय, शिक्षा का महत्व, वर्धा-शिक्षा-योजना– अक्टूबर' ३७ के चार प्रस्ताव, निःशुल्क शिक्षा, केन्द्रीय हस्तकौशल, मातृभाषा और आर्थिक

आत्म निर्भरता—महात्मा गांधी द्वारा लिखित योजना की भूमिका, ग्राम्य, राष्ट्रीय और पूर्ण शिक्षा की उनकी व्याख्या—पाठ्यक्रम के तीन केन्द्र, शरीर, समाज और कौशल— होड़ाहोड़ी वाली अमानुषी व्यवस्था के स्थान पर रचनात्मक मानुषी अहिंसक समाज की स्थापना का आदर्श—कौशल केवल अध्यापन का अतिरिक्त विषय मात्र न होकर समस्त अध्यापन का माध्यम होगा—आत्मविश्वासी व्यक्ति—आर्थिक पहलू की समीक्षा—पूर्ण पाठ्यक्रम—पढ़े पंडित नहीं पैदा करना बल्कि चतुर और समझदार कामगर, मास्टरों की ट्रेनिंग—परीक्षा की विधियां— पृ.२००-२१२

अध्याय १६

सार्जेंट योजना (१६-१-१६४४)

युद्धोत्तर कालके शिक्षा-प्रसार का सरकारी ब्लूप्रिंट —केन्द्रीय सलाहकार शिक्षा-बोर्ड का इतिहास—केन्द्रीय बोर्ड का संगठन, उसकी उप-समितियां—भारत में शिक्षा युद्ध की धरातल पर होनी चाहिये—सीनियर बेसिक अर्थात् वर्तमान मिडिल स्कूल तक—शिशु-वर्गों के सुझाव—हाई स्कूल स्टेज सबके लिये जरूरी नहीं है—यूनिवर्सिटी डिग्री कोर्स तीन वर्ष का हो—मास्टरों की ट्रेनिंग—उपयुक्त उम्मीदवारों को स्कूलों से ही प्रोत्साहन शुरू हो जावे—स्वास्थ्य व्यवस्था—हीन बालकों की शिक्षा; अंशतः हीन और पूर्णतः हीन के लिये विभिन्न साधन—युवक आंदोलन और एंप्लायमेंट ब्यूरो——प्रांत ही शिक्षा शासन की इकाई रहे—परन्तु अफसरों का अंतर्प्रान्तीय लेनदेन चले— पृ.२१३-२३

अध्याय १७

राधाकृष्णन् कमीशन

पहला विशुद्ध भारतीय शिक्षा-कमीशन —उद्देश्य—वेतन मान— अध्यापन का स्टेंडर्ड—सुनिश्चित पाठ्य-ग्रंथ न रहें; ट्यूटोरियल प्रणाली को विकसित किया जाय—अध्यापनकारिणी और संबद्धता-दायिनी यूनिवर्सिटियों के रिसर्च क्षेत्र; सीमास्थित विषयों पर भी रिसर्च हो—विदेशी शब्द हजम किये जायं—यूनिवर्सिटी-शिक्षा संविधान की कान्करेंट लिस्ट पर हो—ग्राम्य विश्वविद्यालय— प. २३१-२४१

अध्याय १८

झा-रिपोर्ट—माध्यमिक शिक्षा

योजनाओं का आधिक्य—रिपोर्ट साहित्यिक रचना भी है—विषयों की वैकल्पिकता का खेल—किशोरावस्था की शिक्षा—राष्ट्रीय जीवन के अभिनय और अनुभव का केन्द्र हाई स्कूल हो—स्टेजवार विषय निर्वाचन—साहित्यिक वैज्ञानिक और टैक्निकल धाराएं आपस में मिलती हुई बढ़ें—शिक्षकों की व्यावसायिक कुशलता और सदाचार : अवकाश की अपेक्षा—स्वायत्त शासनवाले बहुविषयक स्कूल; बोर्ड का कार्य अलग प्रकार का होगा—संख्या के स्थान पर वर्णों के जरिये परीक्षाओं में अंकन—परीक्षा के तीन भाग— पृ. २४२-२५४

अध्याय १९

समाज शिक्षा—मध्यप्रदेश

विशालता के कारण युगान्तरकारिणी योजना है—साक्षरता के आगे समाज में उपयोगिता पूर्वक और प्रभाव पूर्वक रहना—समाज शिक्षा का आदर्श होगा—व्यापक सहकारिता—संचालन के छै केन्द्र—रचना केन्द्र के साहित्य चलचित्र और कला विभाग—प्रधान संपादक—कार्यकर्ता-केन्द्र और प्रवासी-दस्तों के कर्तव्य : क्षेत्रों के सांस्कृतिक गृह—अतिरिक्त जिला इस्पेक्टर, उसके कर्तव्य—स्वयंसेवी संगठनों की रचना—कक्षा संगठन—शिक्षार्थियों में आत्म निर्भरता की भावना—सेशन की अवधियाँ—क्या शिक्षा का अभाव दूर हो सकेगा पांच वर्षों में ?—

पृ. २५५-२६५

अध्याय २०

व्यावसायिक शिक्षा—बीसवीं शती

सन् १९३३ का मेडीकल कौंसिल एक्ट—मेडीकल कालेजों की संख्या वृद्धि—लार्ड कर्जन का काम; कृषि शिक्षा में स्थानीयता पर जोर—कला की शिक्षा व्यावसायिक संभावनाओं के आधार पर ही

हो—शिक्षात्मक प्रयासों और व्यावसायिक उद्योगों के बीच एक रेखा खींचना आवश्यक है—भारतीय शिक्षार्थियों के विदेश प्रवास की समस्याएं— प. २६६—२७३

अध्याय २१

विशेष वर्गों की शिक्षा

भारत के विशेष वर्ग: भारतीय न्यस्तस्वार्थ खड़ा करनेका अंग्रेजी राजनैतिक उद्देश्य— गोरी चमड़ी और काली चमड़ी का भेद— एंग्लोइंडियन स्कूलों की विशेषताएं, भारतीय प्रतिक्रियाएं— उनके अनुशासन का स्टैंडर्ड और शासन का प्रभाव— अमीरी वर्ग की शिक्षा, उनकी स्थापना की प्रेरणा— एस. आर. दास और इंडियन पब्लिक स्कूल सोसाइटी— दून स्कूलकी स्थापना, पाठ्यक्रम इत्यादि, मि...फुट हेडमास्टर— पृ० २७४–२८३

अध्याय २२

प्रथम पंचवर्षीय योजना और शिक्षा

(जुलाई १९५१)

पंचवर्षीय योजना अथवा कांग्रेसका चुनावपत्र— जीवन के उच्चस्तर और सामाजिक न्याय की उपलब्धि, भारतीय संविधान के अनुरूप— विषयों की महत्वशीलता का क्रम, पांचवां स्थान है सामाजिक सेवाओं का— शिक्षा का कमीशन ने स्पर्शमात्र किया है— भारत सरकार के काम की सीमाएं– आर्थिक सुधार पहले, शिक्षा सुधार बाद में— वर्तमान शिक्षा के दोष — बुनियादी — माध्यमिक — विश्वविद्यालय— समाज—कम्यूनिटी संगठन — युवक-कल्याण आंदोलन – स्वास्थ्यशिक्षा – कोलंबोयोजना-यू.एन.ओ. ।

पृ.२८४–२९९

अंग्रेजी शिक्षा के प्रारंभिक् काल का कलकत्ता नगर (१८ वीं शती) ब्रिटिश कौंसिल के सौजन्य से

भारतीय-शिक्षा की रूप रेखा

प्राग्वैदिक-भारत में क्या सार्वजनिक थी ? पंचतत्वों की उग्रता के शमनार्थ यज्ञ-विधान : यह सार्वजनीन भावना शिक्षा की प्रेरणा रही

भारत की अन्य अनेक गतिविधियों की नाईं उसकी शिक्षा का अतीत भी धूमिल और अज्ञात-सा है। भारत का मानव शिक्षा का आदान-प्रदान तो आदिकाल से करता ही होगा किन्तु उसका क्रम-बद्ध विवरण एवं विकास सामान्यत: उपलब्ध नहीं। क्या प्राग्वैदिक भारत में शिक्षा की कोई सार्वजनिक व्यवस्था थी अथवा वेदों की रचना के उपरांत उसका सूत्रपात हुआ, अथवा शिक्षा का सार्वजनिक जैसा कोई स्वरूप था भी, ये सभी तथ्य प्रश्नसूचक चिह्न बने हुए हैं ? वेदों के ग्रंथ रूप में परिणत होने के पूर्व उनकी वर्ण्य-सामग्री मानव-समाज ने अवश्य प्रस्तुत कर ली होगी। पंच-तत्वों के आतंक और विभीषिकाओं से रक्षा करने के हेतु भारत के प्राचीनतम पूर्वजों ने संभवत: 'यज्ञ' का विधान किया। वेदों के मंत्र इन्हीं तत्वों को परितुष्ट करने तथा उनकी उग्रता और उद्दंडता को परिशमन करने की चेष्टाएँ जान पड़ती हैं। प्रकृति के तत्व समान रूप से मानव मानव के वास्ते भयकारी थे, सो केवल आत्म-त्राण की भावना से ही प्रेरित हो यज्ञ की विधि और विधान सार्वजनिक भावना के प्रतीक बन गये। अर्थात् भारतीय शिक्षा का प्राचीनतम स्वरूप 'यज्ञ' करने की विधि का अध्ययन और अध्यापन होना चाहिये। और यह प्रणाली निसर्गत: उस समय तक मौखिक मात्र ही रही होगी जब तक कि लेखन कला और लिपि का आविष्कार न हुआ होगा, अर्थात् जब तक वेदों का ग्रंथ रूप में लिखित निर्माण न हो चुका होगा।

वेद 'पौरुषेय' हैं ? "सार्वजनिक–शिक्षा जीवन के अनिवार्य अंगों को छूती हुई होती है" इस कसौटी पर प्राचीन शिक्षा कसी जावे।

इस मत को स्वीकार कर लेने पर 'वेदों' के 'पौरुषेय' होने की बात उठती है जो कि उन्हें अपौरुषेय मानने वाले भक्तों को अप्रिय होगी। अस्तु, इस विवाद का निणय दर्शन और धर्म-शास्त्रों के पंडितों का क्षेत्र है, हम केवल मानव की शिक्षा का प्रारंभिकतम स्वरूप जानना चाहते हैं, विशेषतः सार्वजनिक शिक्षा का। भारत के इतिहास में सार्वजनिक शिक्षा की परिपाटी को बीसवीं सदी की ईजाद कहा जाता है जो शायद पूर्ण सत्य नहीं। जिस रूप में अनिवार्य शिक्षा, मास एजूकेशन इत्यादि की नित नवीन योजनाएं आज आ रही हैं उनकी अपनी प्रधान प्रेरणा राजनीति और इस युग की प्रजातंत्र भावना है जो शासक-वर्ग द्वारा संचालित हो रही है। जिस सार्वजनिक शिक्षा का सूत्र ऊपर दिया गया वह प्रत्येक मानव के जीवन से अत्यंत निकटतापूर्वक संबद्ध थी और इसलिये नैसर्गिक थी, फिर भले ही उसे पाने और देने में प्रकृति के तत्वों का आतंक प्रेरणा देता रहा हो। मतलब यह है कि हमारी कोई भी शिक्षा जीवन के अनिवार्य अंगों से छूती हुई रहे तो ही वह सार्वजनिक कही जावेगी। कालांतर में यह मौलिकता दिशांतरित होती है वैसे मूलतत्व वही रहता है—जीवन से अविच्छिन्नता। हमारे आदि युग की शिक्षा का इतिहास धूमिल है और रिसर्च स्कॉलरों की खोज का महत्वपूर्ण विषय है। जो इतिहास अधिक क्रमपूर्वक और निर्विवाद उपलब्ध है वह अंग्रेजी साम्राज्य के युग मात्र का है। इसका सिलसिलेवार वर्णन अधिक सरल है और आज के भारत में अधिक काम का है। अतः उसका विवरण स्वभावतः अधिक सुचारु ढंग से हो सकेगा।

राष्ट्रीय जीवन से प्रेरणा पा शिक्षा उसे प्रतिबिंबित करती हैं : भारत में अनेक राष्ट्रीय धाराओं का संगम और संघर्ष

बात यह है कि किसी भी राष्ट्र की शिक्षा के इतिहास में उस

राष्ट्र की समकालीन परिस्थितियों का प्रतिबिंब रहा करता है, चाहे वह प्रत्यक्ष हो चाहे परोक्ष। राष्ट्र की सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक प्रवृत्तियों से प्रेरणा पाते हुए भी शिक्षा उन्हें नित्य नवीन दिशा देती जाती है। इस तरह शिक्षा का इतिहास समाज के इतिहास के समानान्तर चला करता है; जो स्वाभाविक है। यूरोप के अनेकानेक प्राचीन राष्ट्रों की शिक्षा के इतिहास में यह बात साफ दिखेगी। जर्मनी, इटली, ग्रीस, स्वीडन, डेनमार्क, फ्रांस, इंग्लैंड, रूस इत्यादि सभी राष्ट्रों में यही हुआ। किंतु भारतवर्ष में इनसे विभिन्न एक और भी घटना हुई जो शायद अद्वितीय है, यानी भारत का सर्वतोमुखी इतिहास अनेकानेक जातियों के संघर्ष ओर संगम की एक लंबी कहानी है। अतः आपस में टक्कर लेने वाली अथवा संयुक्त हो सकने वाली नानाविध परिस्थितियाँ जितनी भारतवर्ष में एकत्र हुई तथा दीर्घकाल तक क्रियाशील रहीं, उतनी इन अन्य राष्ट्रों में नहीं। इस दृष्टि से भी भारत की शिक्षा के इतिहास का रंग कुछ अजीब-सा हो गया है। अंग्रेजी काल मात्र के शिक्षा-इतिहास को यदि हम लें तो इसमें ही विविध धाराओं, उप-धाराओं की मुठभेड़, और समन्विति मिल जावेगी। मोटे रूप से हमारी सारी शिक्षा-प्रणाली इंग्लैंड की शिक्षा प्रणाली का संस्कार है। और इंग्लैंड की शिक्षा प्रणाली स्वयं अपने देश की सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक परिस्थितियों का संस्कार है। अर्थ यह हुआ कि अवांतर से भारत की शिक्षा प्रणाली पर केवल भारत की परिस्थितियों मात्र का प्रभाव नहीं पड़ा बल्कि विदेशों की परिस्थितियों का भी। फिर यह प्रभाव अल्पजीवी न था दीर्घव्यापी रहा। इस तरह उसका ठीक तरह से मूल्यांकन करने में इंग्लैंड की सामाजिक भूमिका को भी सामने रखना पड़ता है।

अंग्रेजी युग की शिक्षा में अध्यापक नहीं हुए केवल विचारक हुए

इस प्रसंग में हमारी अंग्रेजी-युग की शिक्षा में एक अंग की कमी का उल्लेख करना आवश्यक है। वह है अध्यापन-विज्ञान की अनेकानेक

बारीकियों का सर्वांगीण अनुशीलन । जहाँ अन्यत्र यूरोप में पेस्टलाजी, फ्रोबल, मौंटेसरी, सिरिलबर्ट, नन, व्हाइटहैड इत्यादि जैसे अप्रतिम अध्यापक उत्पन्न हुए भारत में राममोहन राय, गोखले, तैलंग, रवीन्द्रनाथ, मदन-मोहन मालवीय और आशुतोष मुखर्जी जैसे विचारक मात्र पैदा होकर रहे। अर्थात् मौलिक क्षेत्र के कार्यकर्ता हमने भले दिये हों परन्तु अध्यापन विज्ञान की नित्य प्रयोग में आने वाली विधियों, पद्धतियों, साधनों और उपायों में खोजें नहीं हुईं। मतलब यह हुआ कि यूरोप की परिस्थितियों के लिए खोजी गई इन पद्धतियों को भारत की परिस्थितियों में लगाने और सफल बनाने की समस्या नवीन रूप में आई। वहाँ हमारे समाज के कर्णधार अंग्रेज शासकों से मोर्चा लेने में व्यस्त रहने को बाध्य हुए। परिणाम यह हुआ कि अंग्रेज काल की शिक्षा का सारा इतिहास, रिपोर्टों कमीशनों, आज्ञापत्रों, कान्फ्रेंसों और कानूनी कार्रवाइयों की खाताबही मात्र है जिसका राजनैतिक महत्व तो हो सकता है शैक्षणिक और वैज्ञानिक महत्व नगण्य है। संभव है स्वतंत्र भारत के प्रसंग में यह पक्ष भी परिमार्जित और सम्पन्न हो। प्रारम्भ ट्रेनिंग कालेजों और मनोविज्ञान अध्यापन की संस्थाओं में हो रहा है।

पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति, भाषा का प्रसार : मिशनरियों का काम : सरकारी नौकरियाँ

उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में कहना न होगा अंग्रेज शासक स्वयं ही दो संप्रदायों में विभक्त थे। इधर मुगल काल की शिक्षा संस्थाएं और प्रणाली-परिपाटियाँ अपना प्रभुत्व सर्वत्र जमाएं थीं और ऐसी ही परिस्थितियों में ईसाई मिशनरियों ने अपने कार्य प्रारम्भ किये। पाश्चात्य भाषाओं और साहित्यों का अध्यापन एवं प्रोत्साहन उनका उद्देश्य हुआ। इसके माध्यम से वे पाश्चात्य संस्कृति का प्रसार करना चाहते थे। स्वभावतः अंग्रेजी कम्पनी के पदाधिकारियों में इनकी ओर पक्षपात होना चाहिये था, जो हुआ भी। कुछ पश्चिमी–शिक्षा–प्राप्त–भारतीय

'भद्रलोक' भी इस पक्षपात में योग देने लगे। पाश्चात्य सभ्यता से भारत के इस प्रथम संपर्क ने तत्कालीन भारतीय नागरिकों को कुछ विस्मित किया और अंग्रेजों की नकल करने की भावना सहज ही उनमें उग आई। अंग्रेजी कम्पनी के अफसरों ने इस नई पद्धति में शिक्षित--दीक्षित नवयुवक--नवयुवतियों को सरकारी, नौकरियाँ देना शुरू कर दिया कि जिसके कारण शिक्षा-प्रणाली को एक कृत्रिम लोकप्रियता प्राप्त होने लगी। परिणाम भारत की अपनी शिक्षा--प्रणालियों का लोप होना शुरू होकर पश्चिमी ज्ञानका प्रसार स्पष्टतः दिखने लगा। इस ज्ञान का प्रसार स्वभावतः अंग्रेजी-भाषा के माध्यम से हुआ जो कि एक युगान्तरकारी घटना है।

बीसवीं शती : भारत जीवन में विद्रोह और करवट : अंग्रेजी से मुठभेड़

पर बीसवीं शती के आते-आते अंग्रेजी माध्यम और भाषा जो अब तक जड़ें पकड़ चुकीं थीं फिर डगमगाने के चिन्ह दिखाने लगी। भारतीय जनमत के प्रतिनिधि उससे उकताने लगे। अन्य एशियाई राष्ट्रों ने पश्चिमी राजनैतिक जागृति को तो गले लगाया किन्तु अपना उत्कर्ष अपनी मौलिक और राष्ट्रीय संस्कृति की ही भित्ति पर करना चाहा। यूरोप के अनेक राष्ट्रों के राष्ट्रवाद का प्रचंडतम स्वरूप जापान में दिखा। उन्होंने यूरोपीय ज्ञान और विज्ञान को स्वीकार किया किन्तु उनके अध्ययन अध्यापन का माध्यम अपनी निजी भाषा को ही रखा। भारतवर्ष में भी इसी विचार धारा पर कुछ शिक्षा संस्थाएं कायम हुईं जिनमें रवीन्द्रनाथ ठाकुर की विश्व-भारती (शांति-निकेतन), हरिद्वार की गुरुकुल (कांगड़ी), दिल्ली की जामिया मिलिया एकदम स्वतंत्र संस्थाएं हुईं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय और अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी की बुनियाद भी इसी भावना से प्रेरित थी, परन्तु इन्होंने अंग्रेजी विश्वविद्यालयों की परिपाटियों और परंपराओं को अपनी रचना-योजना में हजम ही किया, छोड़ा नहीं।

लोक–शिक्षा में सरकारी–तंत्र को अंग्रेज नहीं मानते

अंग्रेजी युग की भारतीय शिक्षा की व्यवस्था और व्यवस्थापकों के सम्बन्ध में यही कहना पड़ेगा कि वह सर्वांशतः अंग्रेजी शिक्षा का स्वरूप है। प्रजातंत्र के प्रेमी अंग्रेज लोग शिक्षा के दान-आदान जैसे मौलिक अधिकार में शासकीय सत्ता का अधिक हस्तक्षेप चिरकाल से नापसंद करते आये हैं। यहाँ शासक वर्ग अर्थात् ब्रिटेन की सरकार भी जन-शिक्षा को अपना मौलिक कर्तव्य नहीं मानती। फलतः शिक्षा का प्रधान भार और उत्तरदायित्व प्राइवेट संस्थाओं, महाजनों और मिशनरियों को उठाना पड़ता है। वे इस सिस्टम को राष्ट्र–हित और प्रजातंत्र के कल्याण की दृष्टि से उपयोगी समझते हैं। तदनुसार ईस्ट इंडिया कम्पनी भारतीयों को शिक्षा देना अपना कर्तव्य नहीं मानती थी। सन् १६९८ के चार्टर एक्ट के अनुसार भले उसे पादरी और स्कूल अपनी सेनाओं में रखना पड़े पर वे कम्पनी के यूरोपीय कर्मचारियों के बच्चों के लिए भर थे।

लोक–शिक्षा या वर्ग–शिक्षा मात्र ?

सन् १७६५ में दीवानी वसूल करने का अधिकार मिल जाने पर भी कम्पनी ने अपनी अंग्रेजी शासकीय लीक न छोड़ी। परन्तु कम्पनी के अफसरों ने राजनैतिक आवश्यकताओं के कारण ही शिक्षा देने के कर्तव्य पर जोर देना शुरू किया। इसलिये सन् १८१३ के चार्टर एक्टके अनुसार कम्पनी के डायरेक्टरों ने कंपनी को शिक्षा खाते पर कुछ रुपये खर्च करने की इजाजत दे दी और साथ ही यूरोपीय ईसाई मिशनरियों को भी कम्पनी के शासन प्रदेश में पश्चिमी ज्ञान प्रसार करने के लिये आज्ञा दी। इन कानूनों के साथ साथ शिक्षा–विषयक कतिपय विवाद-ग्रस्त प्रश्न उठे––जिनमें पश्चिमी ज्ञान अथवा पूर्वी ज्ञान का प्रसार, अंग्रेजी या भारतीय भाषाओं का माध्यम, सरकारी पाठशालाएं या भारतीय पाठशालाएँ इत्यादि विषय बने। साथ ही यह भी प्रश्न उठा कि क्या

कंपनी आम रियाया को ही शिक्षा देवे या कुछ वर्गमात्र को शिक्षित करके उन्हें शिक्षा फैलाने के लिए स्वतंत्र और मुक्त रखे । इसके बाद का प्रधान अंग्रेजी कागज हुआ सन् १८५४ का वुड का पत्रक ।

वुड का पत्रक—पहला सरकारी कोडपत्र

'वुड के पत्रक' (डिस्पैच) ने आखिरकार अंग्रेजों की सरकारी नीति का स्पष्टीकरण कर दिया । सरकारी शिक्षा-प्रणाली का प्रधान उद्देश्य पश्चिमी-ज्ञान विज्ञानका प्रसार करना हुआ । भारतीय ज्ञान को भी साथ साथ कुछ थोड़ा प्रोत्साहन दिया जाता रहेगा । माध्यमिक स्टेजमें अंग्रेजी और स्थानीय भाषाएं शिक्षाका माध्यम रहेंगी । संस्थाओंके लिए कोष या तो भारतीय लोग स्वयं या मिशनरी निजी तौर पर जुटावें यद्यपि सरकार भी पैसे से मदद देने की चेष्टा करेगी । इस 'पत्रक ने' जो सबसे पतेकी बात कही वह यह कि सरकारकी जिम्मेवारी सार्व-जनिक शिक्षा होगी, वर्ग—विशेषों मात्रकी शिक्षा नहीं । शिक्षा के इतिहासमें इस पत्रकका खास महत्व है । मैकालेके मिनटकी अपेक्षा इसका प्रभाव अधिक स्पष्ट और दीर्घकाल—व्यापी हुआ क्योंकि इसमें सरकारी नीति की स्पष्टतम घोषणा पहले पहल भारतवर्षमें प्रकाश में आई ।

पाश्चात्य शिक्षा जड़ें पकड़ती गई

साफ है कि वुड के पत्रक का पक्षपात प्राइवेट संस्थाओं की अपनी उन्नति की ओर रहा कि जिसके परिणाम स्वरूप कम्पनी के पदाधिकारियों ने उनके प्रति उदासीनता ही बताई । प्राइवेट संस्थाओं को स्वयं प्रगतिशील होना चाहिये इस ख्याल से सरकारी सहयोग देना उन्होंने अपना कर्त्तव्य नहीं समझा । उदाहरण ऐसे भी मिले हैं कि जिनमें पदाधिकारियों ने माता-पिताओं को अपनी संतान देशी शालाओं से अलग कर सरकारी शालाओं में भर्ती कराने के लिए मजबूर किया । इस उदासीनता और दबाव के कारण उन्नीसवीं सदी के अंत तक उच्च शिक्षा की समस्त संस्थाओं

में पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान का प्रसार उद्देश्य हो गया और अंग्रेजी भाषा उस उद्देश्य को प्राप्त करने का साधन अथवा माध्यम। किन्तु इन संस्थाओं में भारतीय अध्यापकों की सदा कमी रही क्योंकि ऐसे व्यक्तियों की संख्या ही कम थी। अंग्रेज या मिशनरी हैडमास्टरों और प्रिंसपलों की मातहती में भारतीय धन और व्यवस्था के अंतर्गत ये स्कूल चलाये गये। सन् १८८२ के हंटर कमीशन ने भी 'वुड के पत्रक' का ही समर्थन किया और प्राइवेट भारतीय संस्थाओं को शिक्षा-प्रसार का प्रधान साधन स्वीकार किया।

लार्ड कर्जन : संख्या और क्वालिटी का संघर्ष

बीसवीं शती का आरम्भ लार्ड कर्जन जैसे तेज वाइसराय शासक के शासन से हुआ। यहाँ इसी युग में भारतीय समाज ने राजनैतिक जागृति की एक अभूतपूर्व करवट ली। सन् १९०१ में कर्जन ने भारत के समस्त प्रांतों के डी. पी. आई. लोगों की एक कान्फ्रेंस बुलाई। सारे देश में शिक्षा के क्षेत्र में बिजली सी भर दी। सरकारी मत इस तथ्य का पोषक था कि पिछली शती के अंत में प्राइवेट संस्थाओं को उत्पत्ति देने तथा बढ़ाने का अंजाम यह हुआ है कि शिक्षा की क्वालिटी, बहुत गिर गई है। इसलिये अब उनकी संख्याएं मात्र बढ़ाने के बजाय मौजूदा संस्थाओं की क्वालिटी सुधारकर उन पर अधिक नियंत्रण करना सरकार का उद्देश्य होना चाहिये। उधर गैरसरकारी किन्तु जागरूक भारतीय लोकमत की यह मांग हुई कि भारतवर्ष को प्रगतिशील बनाने के वास्ते शिक्षा का प्रसार अतः प्राइवेट संस्थाओं की ही संख्या-संवर्धन आवश्यक है। सरकारी अंकुश से उनकी प्रगति कुंठित हो जावेगी अतः उन्हें स्वतंत्रता पूर्वक उत्पन्न हो बढ़ने की आजादी दी जावे। इस मत के प्रधान नेता गोपालकृष्ण गोखले थे। इन्होंने धारा सभा में इसका आंदोलन शुरू किया कि जिसने १९१९ के सुधार कानून की भूमिका प्रस्तुत की।

सुधार कानून १९१९

सन् १९१९ के सुधार कानून ने 'शिक्षा' का महकमा केन्द्र से

हटाकर प्रांतों के जिम्मे कर दिया जहाँ लोक-प्रतिनिधियों के हाथ में सत्ता थी तथा अपने मन-मुताबिक उसमें सुधार कर लेने की आजादी भी। विभाग का हस्तांतर तो ठीक हुआ परन्तु सुधार कानून ने जो अर्थ-विभाग की व्यवस्था रखी उससे प्रांतों के खजाने लगभग खाली हो गये और उनमें किन्हीं नवीन योजनाओं को जन्म देने अथवा पुरानी संस्थाओं को ही अक्षुण्ण चलाते रहने की आर्थिक सामर्थ्य न रही। इसके साथ साथ संख्या और क्वालिटी के बीच का द्वंद्व बाकायदा ज़ोरों के साथ चलता रहा और अभी तक चलता जाता है।

१९३७ से महात्मा गाँधी-युग

सन् १९३७ में जब भारत का नया विधान (सन् १९३५) लागू हुआ तो प्रांतों को स्वायत्त-सत्ता (Autonomy) मिली। पहली बार राजनैतिक सत्ता के वास्ते युद्ध लड़ने वाली संस्था राष्ट्रीय कांग्रेस के निर्वाचित प्रतिनिधियों ने अधिकांश प्रांतों में सरकारें बनाईं। प्रजातंत्र के तक़ाज़ों और सत्ता के नवीन जोश ने १९३७ से १९३९-४० की अवधि को शिक्षात्मक तेजी का युग बना दिया। सारा देश शिक्षा-सुधार और प्रसार की भावना से ओतप्रोत हो गया था जिसमें महात्मा गांधी की वर्धा-शिक्षा-योजना, व्यावसायिक-शिक्षा और आत्म-निर्भर शिक्षा व्यवस्था का सूत्रपात हुआ। इसके बाद जब १९३९ में द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ हो गया तो ये सरकारें समाप्त हो गईं और नामज़द सरकारी अफसरों की सरकारें बनीं।

युद्धकालीन योजनाएँ

जो हो शिक्षा-समृद्धि के जिस टेंपो(Tempo)का प्रारम्भ महात्मा गांधी के नेतृत्व में हो चुका था, अंग्रेजी सरकारी सलाहकार उसे भूले नहीं। यह बात अलग है कि युद्धजनित विशिष्ट कठिनाइयों में उनकी शक्ति और ध्यान अधिक लगा। परन्तु युद्ध-समाप्त होने पर युद्धोत्तरकालीन

समस्याओं की विभिषिका पर भी उनका ध्यान पूरी तरह से रहा। और ज्यों ही विजय के चिन्ह दिखाई पड़े भारत-सरकार ने 'योजना-विभाग' नाम का बड़ा मुहकमा खोला जो भारत के उद्योगपति सर अर्देशर दलाल के जिम्मे हुआ। कहना न होगा जहाँ तक स्पेडवर्क और आँकड़े इकट्ठे करने की बात है इस विभाग ने बहुत काम किया है। शिक्षा के केन्द्रीय-सलाहकारी बोर्ड के अफसर सदस्य डा० जॉन सार्जेंट ने सन् १९४४ में जो योजना प्रस्तुत की वह एक बड़ा काम है। इसे आमतौर से सार्जेंट योजना ही कहते हैं। उससे सहमत होना या असहमत होना अलग बात है।

स्वतंत्रभारत की चहल–पहल

युद्धाँत के बाद जब सन् १९४६ से केन्द्र में कांग्रेस ने सत्ता हाथ में ली, शिक्षा-प्रसार तथा योजनाओं के कार्यान्वित करने का एक उन्मत्त तूफान सा आया। इतनी प्रकार की शिक्षाएं, और शिक्षा-संस्थाएँ, खोलने तथा खुलवाने, विदेशों में स्कालर भेजने, शाला-भवन, प्रयोग शालाएं बनवाने की कुछ ऐसी बाढ़ आई कि आज जो सरकारी खजाने का खालीपन है उसमें इस नये जोश का बड़ा हाथ है। महत्वाकांक्षा की लंबी उड़ानों ने और लोक-कल्याण की भ्रामक भावनाओं ने युद्ध में संचित कोषों के साथ जी खोलकर होली खेली। बेसिक-शिक्षा, टेक्निकल शिक्षा, औद्योगिक प्रयोग शालाएं, इंजीनियरिंग और मेडिकल कालेज, ट्रेनिंग कालेज, नार्मल स्कूल, समाज-शिक्षा, प्रौढ़–शिक्षा, सैन्य-शिक्षा इत्यादि अनेकानेक प्रकारों की शिक्षाओं की आवाज सुन पड़ी। हज़ारों की संख्या में स्कालर सरकारी छात्रवृत्तियाँ ले इग्लैंड, यूरोप और अमरीका में भर गये। भारत में भी शिक्षित-बेकारी का प्रायः अंत सा दिखने लगा। नौकरशाहों ने नये मंत्रियों की महत्वाकांक्षाओं के सामने बड़े सब्ज़बाग बनाये और नियुक्तियों का तांता बांध दिया। अजीब-अजीब नौकरियाँ और अजीब-अजीब योग्यताओं का मोल-तौल खुले आम

चला जिसमें पक्षपात का आ जाना स्वाभाविक था। भारत की शिक्षा प्रणाली ने कुछ इतना खा लिया कि उसे कितना पचाने की शक्ति है यह याद ही न रहा। शिक्षा, और शिक्षा का नारा वैसे अनर्थक नहीं है तो भी आज के आर्थिक युग में जब तक आय और उत्पादन के समुचित साधन और व्यवस्था हाथ में न हों शिक्षा का यूटोपिया स्वप्न–दृष्टाओं का रंगीन मनोरंजन ही रहेगा। खाली खजानों ने आज लगाम लगा दी है, जन-संख्या बाकायदा बढ़ती जा रही है, इसलिये शिक्षा की जरूरत भी नहीं घट रही, पर क्या निर्धन राष्ट्र शिक्षा के व्ययकारी बोझ को सह सकेगा ? आज समस्या यह है कि हम पहले अपने बच्चों को स्कूल भेजें, उनके लिये शाला भवन बनवायें, विदेशों से स्कालरों को शिक्षा दिलावें, सरकारी वेतनभोगियों की पल्टनें खड़ी करें, या उनके लिये अन्न प्राप्त करें, उनके लिये स्वास्थ्य की व्यवस्था करें, उनके लिये ठीक घरों की रचना करायें, उनकी सुरक्षा की सामग्री जुटावें, उनके जीवन का स्टेंडर्ड बढ़ायें ? शिक्षा पहिले या जीवन पहिले यह द्वंद्व है।

अध्याय १

जब अंग्रेज सत्ता आई.......१८१३ का पूर्व युग

कम्पनी के नौकरों के लिए पादरी

अंग्रेजों की ईस्ट इंडिया कम्पनी ३१ दिसम्बर सन् १६०० में बनी। उसका प्रधान उद्देश्य पूर्वी देशों से व्यापार मात्र करना था। तथापि ईसाई धर्म के प्रचार के लिए उन्होंने कुछ कदम उठाये। सबसे पहले कुछ ईसाई पादरी भारत रवाना किये गये जो कम्पनी के कर्मचारियों के आध्यात्मिक और धार्मिक कल्याण की देखभाल करते। बहुत संभव है कंपनी ने कुछ मिशनरियों को भी अनुकूल ट्रेनिंग देने का इरादा किया हो, तो भी लगभग सौ साल तक उन्होंने कोई स्पष्ट शिक्षात्मक कारंवाई नहीं की।

यूरोपीय मिशनरियों के धर्मादा स्कूल

सन् १६९८ के चार्टर ने कंपनी को अपने सैनिकों और कारखानों के बीच धर्म गुरुओं को भी रखने का आदेश दिया। वैसे धार्मिक तटस्थता ही उनकी नीति थी। राजनैतिक दृष्टि से यही लाभकारी जान पड़ा कि धर्म–कार्य अपने ही लोगों तक सीमित रखा जाये। यूरोप से जो अन्य ईसाई मिशनरी निजी तौर पर यहाँ आये उन्हें यह तटस्थता कुछ प्रिय न लगी। इसलिए उन्होंने अपने धर्म–प्रचार के आखिरी उद्देश्य से अंग्रेजी राज्य की सीमाओं के भीतर स्कूल खोलना शुरू कर दिये। पहले ये स्कूल मद्रास, बंबई और कलकत्ता जैसे केन्द्रीय नगरों ही में खोले गये। रेवरेण्ड स्टीवेन्सन ने सन् १७१५में संटमेरी धर्मादा स्कूल खोला। डेनमार्क के मिशनरियों ने तामिल बच्चों के वास्ते सन् १७१७ में दो और ऐसे

धर्मादा स्कूल खोले। इसी तरह १७३१ में रेवरेण्ड रिचर्ड कोब ने बंबई में और एक ईसाई सोसायटी ने कलकत्ते में स्कूल खोले। सचमुच ये स्कूल कंपनी के कर्मचारियों के उन बच्चों की शिक्षा के वास्ते थे जो भारतीय माताओं से उत्पन्न हुए थे। पाठ्य क्रम में अक्षर-ज्ञान एवं ईसाई धर्म की शिक्षा मात्र थी। इनके संचालनार्थ कंपनी के धार्मिक दाता लोग धन देते तथा कंपनी भी कुछ ग्रांट दिया करती। इस तरह अठारहवीं शती में कंपनी का शिक्षात्मक कार्य ऐसी ग्रांटें देकर धर्मादा स्कूलों को प्रोत्साहन देना रहा जो सामान्यतः अंग्रेजी कर्मचारियों की संतानों तक ही सीमित रहा, भारतीयों के लिए नहीं।

कलकत्ता मदरसा (१७८१) और काशी विद्यालय (१७९१) की स्थापना कानून-उद्देश्य

किन्तु अठारहवीं शती के उत्तरार्ध में दो प्रसिद्ध पाठशालाओं की नींव डाली गयी। इन दोनों का ही उद्देश्य कलकत्ता में निर्मित अंग्रेजी सुप्रीम कोर्ट के जजों के सामने हिन्दू तथा मुस्लिम कानूनों का दृष्टिकोण और भाष्य प्रस्तुत करना था। सन् १७८१ तक यह कोर्ट केवल अंग्रेजी कानून के मुताबिक फैसले दिया करता था जो जनता में असंतोष की भावना फैलाते थे। अतः वारेनहेस्टिंग्ज ने सन् १७८१ में कलकत्ते में कलकत्ता-मदरसा स्थापित किया कि जिसमें अरबी और फारसी का अध्ययन-अध्यापन होवे। उसी तरह सन् १७९१ में काशी में बनारस के रेजिडेंट जोनेथन डन्कन ने एक कालेज स्थापित किया कि जिसका उद्देश्य संस्कृत का अध्ययन और अध्यापन हुआ। कंपनी के शासकों का विश्वास था कि इन दोनों पाठशालाओं से जजों को उपयुक्त संख्या में कानूनी मददगार मिल सकेंगे।

भारत की शिक्षा-दान-परंपरा और भारतीयों की सरकारी नौकरी में रुचि

इस शासकीय उद्देश्य के अतिरिक्त कंपनी को एक और परिस्थिति प्रेरणा देती रही। भारत के पूर्व शासक अपने शिक्षा-प्रेम से प्रेरित

हो बड़ी रकमें शिक्षा केन्द्रों और संस्थाओं को दान–स्वरूप दिया करते थे। कंपनी लोकप्रियता प्राप्त करना चाहती थी एतदर्थ उन पूर्व शासकों की इस प्रणाली को उसने अपनाना चाहा। फिर भारतीय समाज के उस प्रभावशाली वर्ग को भी वे अपनी ओर खींचना चाहते थे कि जिसने पाश्चात्य ज्ञान की ओर अपनी रुचि स्पष्टतः प्रगट कर दी थी। बात यह थी कि इस ज्ञान के आधार पर सरकारी नौकरियाँ मिलना ज्यादा आसान हो गया था। जोनेथन डन्कन ने जो चिट्ठी लार्ड कार्नवालिस को लिखी थी उससे भारतीयों की अंग्रेजी नौकरी करने की रुचि तथा उस रुचि को प्रोत्साहन देने और हिन्दू कानून में अंग्रेज जजों को मदद देने तथा लोकप्रिय होने के उद्देश्य स्पष्टतः दिख पड़ते हैं। अगले बीस वर्षों तक जरूर ये पाठशालाएं बहुत उन्नतिशील न हुईं और कंपनी धर्मादा-शालाओं मात्र को ग्रांट देने में व्यस्त रही।

मिशनरी उद्देश्य था धार्मिक अतः देश भाषा व प्राथमिक शिक्षा। कंपनी-उद्देश्य था उच्चवर्ग, तथा शासनार्थ शिक्षा। सन् १७८७ में ग्रांट का उल्लेख।

इस तरह हमने देखा कि मिशनरियों ने अपनी शिक्षा के प्रसार का ध्येय धार्मिक रखा और कंपनी ने शासकीय तथा राजनैतिक। इसीलिए ही जहाँ मिशनरियों ने आम जनता के वास्ते प्राथमिक शालाओं की ओर ध्यान दिया, वहां सरकार ने उच्च वर्गों के लिए उच्च-शिक्षा की संस्थाओं की ओर। स्वभावतः मिशनरियों को भारतीय ईसाइयों की मातृभाषा के माध्यम का अवलंबन करना पड़ा था। यों तो ईसाइयत का जन्म भारत में ईस्वी सन् दो से माना जाता है जब कि सेंट टामस ने आकर त्रावणकोर के समुद्री तट पर शिष्य बनाये तथा धर्म शिक्षा दी परन्तु पोर्तगीजों के शासकीय आगमन के उपरांत ही ईसाई मिशनरियों का (रोमन कैथलिक और प्रोटेस्टेंट) क्रमबद्ध इतिहास स्पष्टतः मिलता है। इन मिशनरियों ने पश्चिमी यूरोप के लगभग सभी देशों से यहाँ आकर

अपना काम और धर्म फैलाया । इस कार्य में शिक्षा निस्संदेह बड़ा भारी साधन सिद्ध हुई । सन् १७८७ के डिस्पैच में कम्पनी के डायरेक्टरों ने श्वार्ज नाम के डेनिश पादरी की शिक्षात्मक सेवाओं की सराहना करते हुए उसके स्कूलों के वास्ते ग्रांट मंजूर की । इस डिस्पैच का महत्व इसलिये हो गया है कि उसमें हमें 'ग्रांट' प्रथा का सबसे आदि उल्लेख मिलता है जो कालांतर में एक महत्वपूर्ण घटना बन गई । दूसरे उससे मिशनरियों की शिक्षात्मक गतिविधि की भारतीय लोकप्रियता तथा अंग्रेजी के अध्यापन का भी स्पष्ट आभास हमें दिख जाता है ।

कंपनी की धार्मिक तटस्थता की वृद्धि

समय और परिस्थितियों के अनुकूल अपनी नीतियाँ और दृष्टिकोणों को परिमार्जित, दिशान्तरित एवं परिवर्तित करने की अंग्रेजी दक्षता एवं स्वभाव हमें इस तथ्य को मानने के लिये मजबूर करते हैं कि उनकी प्रत्येक पालिसी समय की मांगों का अनुसरण करते हुए चलती है । ईसाई मिशनरियों को सन् १७८७ में भले ये सराहना पत्र प्राप्त हो गया हो तो भी ज्यों-ज्यों अंग्रेजी कंपनी की शासकीय सीमाओं का विस्तार होता गया कंपनी के धार्मिक झुकावों के स्थान पर उनकी एक तटस्थता

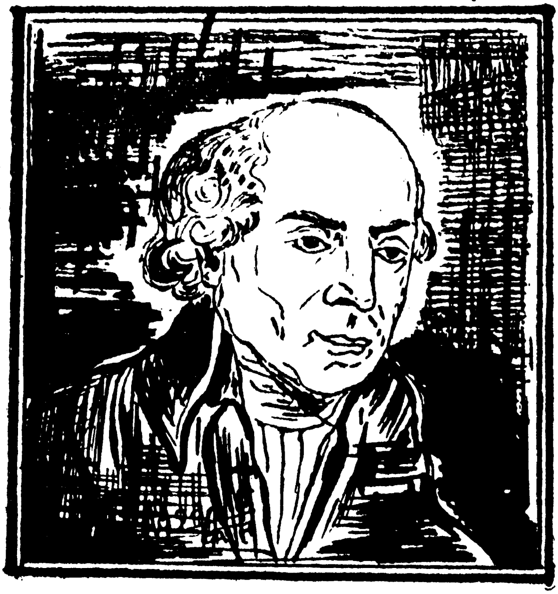

विलियम केरी (१७६१-१८३४)

मात्र रह गई। इस तटस्थता से नाराज होकर एक ईसाई मिशनरी ने तो सारे कर्मचारियों को ईसाइयत के सदाचारों की अन्त्येष्टि करता हुए कह डाला। उसने यहाँ तक कहा कि वारेन हेस्टिंग्ज जैसे गवर्नर जनरल और उसके असुविधाजनक प्रतिद्वंद्वी फिलिप फ्रांसिस खुले आम निर्लज्जतापूर्वक व्यभिचारी जीवन-यापन करते हैं।

सिरामपुर का पादरी-त्रिगुट :

कंपनी और मिशनरियों के शिक्षा–प्रयासों का द्वंद्व

ऐसी कठिनाइयों से मुठभेड़ लेने का बीड़ा डेनमार्क के सिरामपुर-स्थित-मिशनरी-उपनिवेश ने उठाया। सिरामपुर बंगाल का एक छोटा सा गांव है जिसे सन् १७९३, से केरी, मार्शमैन और वार्ड नाम के तीन पादरियों ने मशहूर कर दिया है। इन्हें सिरामपुर-त्रिगुट कहते हैं। इन लोगों में से केरी आले दर्जे का प्रोपैगेंडिस्ट था, वार्ड के पास छापाखाना था और मार्शमैन स्कूल टीचर था। ये तीनों ही चीजें ईसाई-धर्म के प्रचार में कारगुजार हुईं, परन्तु इनका आवेग विवेक की सीमाएं जब पार करने लगा तो सन् १८०८ में हिन्दू-मुस्लिम जनता उनसे नाराज हो गई और जिसमें कंपनी को हस्तक्षेप करना पड़ा तथा अपनी धार्मिक तटस्थता की नीति को पुनः घोषित करना पड़ा। परन्तु फिर इसके बाद इंग्लैंड में एक आंदोलन जैसा उठ खड़ा हुआ जो कंपनी की इस नीति का विरोधी एवं मिशनरियों का समर्थक था। इधर सन् १८१३ के चार्टर एक्ट के अनुसार कंपनी भारत की शिक्षा में सक्रिय उत्तर-दायित्व उठाने को मजबूर हुई।

एडमंड बर्क की शिक्षा विषयक वकालत बनाम कंपनी की धन-कमाऊ नीति

अठारहवीं शती के अंत में यूरोप में औद्योगिक क्रांति शुरू हो गई थी। मशीनों के प्रसार से आबादियों का वितरण उलट गया था कारखानों में मजदूरों की दशा बड़ी दर्दनाक थी। इसलिये दानशील व्यक्तियों के मन में दया जागृत हुई। इस दयनीयता का कारण मिल

मालिकों और उद्योगपतियों ने मजदूरों की चरित्रहीनता और अशिक्षा में देखा इसलिये उन्हें दूर करने के वास्ते अनेकानेक संस्थाएं और उपाय बनाये। पार्लमेंट भी प्रेरित की गई। इस नीति और गतिविधि का प्रभाव इंग्लैंड की शिक्षा-प्रणाली पर तो पड़ा ही पर भारत भी उससे अछूता न रहा। इस आंदोलन का प्रमुख नेता एडमंड बर्क नाम का राजनीतिज्ञ हुआ जो वारेन हेस्टिंग्ज़ का कट्टर विरोधी था। उसने वारेन हेस्टिंग्ज़ के भारतीय शासन पर अभियोग लगाया और यह सिद्ध किया कि व्यापारियों की शुद्ध धन कमाऊ नीति अर्थात् कुनीति से भारतवासियों की रक्षा करना अंग्रेज सम्राट की सरकार का अनिवार्य धर्म है। केवल पैसा और मुनाफा लूटने के लोभ से प्रेरणा पाकर जो व्यापारी-गुट और उसके वेतन भोगी नौकर कम से कम समय में ज्यादा से ज्यादा धनी बनना चाहते हैं वे हमारी भारतीय प्रजा की भलाई कभी नहीं कर सकते। वारेन हेस्टिंग्ज़ इस लूटमार का नेता था अतः इस प्रणाली को मिटाने के लिये हमें भारत की शिक्षा का भी प्रबन्ध करना चाहिये। एडमंड बर्क की इस उदार वकालत का बड़ा असर पड़ा।

पादरी चार्ल्स ग्रांट की भारतीय-चरित्रहीनता विषयक दलील तथा अंग्रेजी शिक्षा की आवश्यकता

इधर मिशनरियों के समर्थकों का दल भी इंग्लैंड में प्रबल होता गया जिसमें चार्ल्स ग्रांट और विल्बरफोर्स प्रमुख हैं। चार्ल्स ग्रांट का ख्याल था कि यदि अंग्रेजी शिक्षा भारत में तरक्की पा गई तो ईसाइयत भी जम जावेगी। इसलिये वह अंग्रेजी शिक्षा और माध्यम का समर्थन करता रहा। यों इस समर्थन को पुष्ट करने के लिए उसने जिस भारतीय नैतिकता का चित्र खींचा वह यद्यपि मुगल राज्य की अंतिम अराजकता के प्रसंग म अंशतः सत्य भले हो पर नितांत अतिशयोक्तिपूर्ण है। इसलिए उसने यही सुझाव रखे कि सरकार प्रांतों के विभिन्न केन्द्रों में निःशुल्क अंग्रेजी शिक्षा पाने की संस्थाएं खोले जहां भारतीय नवयुवक अधिकाधिक

संख्या में आवें और सरल पुस्तकों तथा अध्यापन विधियों के द्वारा विभिन्न विषयों का सत्यता, और तथ्य ग्रहण करें। यहां कई दिनों से हमारा राज्य रहा है और अनेक अंग्रेज भारतीयों के बीच रम भी गये हैं जिससे अपनी प्रणाली और अपनी भाषा लागू करने में कोई कठिनाई न होगी। ग्रांट का निम्नलिखित उद्धरण ध्यान देने योग्य है :—

"यूरोप के निकृष्टतम भागों में भी निस्संदेह निष्कपट, सरल और स्निग्ध व्यक्ति अधिक संख्या में मिल जाते हैं। परन्तु बंगाल में वास्तविक सदाचार और सचाई वाला व्यक्ति एक महान् प्रक्रिया ही होगी। अपने सारे व्यवहार में निष्कपट व्यक्ति तो अलभ्य, अज्ञात चीज है। हिन्दुस्तान के निवासी को दी हुई सत्ता क्वचित् ही निरंकुश की नाई प्रयुक्त न की जाती हो, अन्यथा अत्याचार के लिए आम तौर पर वह उसे औंधा किया करता है। अधिकारी या आश्रित कर्मचारी-पद चाहे वे जिस भी श्रेणी के हों, सभी खयानतखोरी के काम सामान्यत: लाये जाते हैं। न्यायदान, क्रय-विक्रय का व्यापार बन गया है, श्रेष्ठतम सत्य को भी सफल होने के वास्ते मूल्य देने के लिए मजबूर होना पड़ता है और निकृष्टतम असत्य को भी न्याय खरीद लेने का अवसर है। पैसा इतना शक्तिशाली हो गया है कि झूठी गवाही देने के जुर्म के सिवा न तो कोई और जुर्म सोचा जाता है और न किया जाता है। जिस निर्ममता के साथ हिन्दू अपने सिवा अन्य समस्त व्यक्तियों और बातों को देखा करता है वह यूरोप की खिन्नता जागृत करने के लिए खूब भरपूर है। हिन्दुस्तान में देश भक्ति तो कोई जानता भी नहीं।"

गवर्नर-जनरल लार्ड मिंटो का पूर्वी-ज्ञान-प्रणाली विषयक मिनिट

विल्बरफोर्स का (१७५९–१८३३) नाम दास प्रथा के अंत से संबंधित है। उसने भी अंग्रेजी शिक्षा और ईसाइयत का पक्ष लिया। परन्तु सन् १८०६ से १८१३ के बीच जो लार्ड मिन्टो गवर्नर जनरल रहे उन्होंने खुद भारतीय-साहित्य और भाषाओं की ओर अपने पक्षपात और

रुचि का प्रदर्शन किया। उन्होंने तो यहां तक कहा कि पौर्वात्य भाषाएं और साहित्य यूरोप को पथ-प्रदर्शक होने के योग्य हैं। इसलिये ६ मार्च १८११ के एक मिनिट में उन्होंने लिखा कि "अंग्रेजी माध्यम और शिक्षा पर अधिक जोर देने के फलस्वरूप भारत में ज्ञान-विज्ञान की प्रगति एकदम कुंठित हो गई है। ऐसे भारतीय लोगों की संख्या गिर गई है कि जो सूक्ष्म विज्ञानों, साहित्य और वांग्मय के अध्ययन में दिलचस्पी लेते हों और इसका कारण उनके अध्ययन-विषयों को राजाओं द्वारा जो प्रोत्साहन प्राप्त होता था उसका अभाव है। इसी इम्दाद के बल पर ज्ञान-विज्ञान की तरक्की होती है। अतः जब तक सरकार अपनी सहायता और सक्रियता से आगे बढ़कर इन सनातन ज्ञान-पिपासुओं को सहयोग नहीं देती तब तक आशंका है कि ज्ञान का उद्धार उपयुक्त ग्रंथों और व्यक्तियों के अभाव में असंभव ही हो जावेगा।"

इस तरह इंग्लैंड और भारत में दोनों विरोधी मत बड़ी प्रबलता के साथ प्रगतिशील रहे। इधर अगस्त १८०६ में वेल्लोर जिले में सिपाहियों ने एक विद्रोह कर दिया। उस विद्रोह का सूत्र ईसाई मिशनरियों की धार्मिक-धर्मांधता कहा गया। सिपाहियों को यों तो सिर्फ अपनी अपनी पगड़ी बदलने को ही कहा गया था परन्तु समझा गया वह उनके धर्म के ऊपर कुठाराघात। कंपनी के अधिकारी इस अर्थ और परिस्थिति के लिए तैयार न थे इसलिए जो सहानुभूति ईसाइयों के प्रति भारतीयों में जागृत हुई कंपनी के अधिकारी वर्ग ने भी उसे अपना लिया। अंग्रेजी पार्लमेंट में इस तथ्य का उन्मूलन करने के वास्ते साढ़े आठ सौ अर्जियाँ मिशनरियों ने पेशकीं, पर कुछ न हुआ और २३ जून १८१३ को मिशनरी विरोध विजयी हुआ कि जिस पर २१ जुलाई को शाही दस्तखत हुए। यद्यपि इस प्रस्ताव की १३ वीं धारा के मुताबिक मिशनरियों को अपनी कल्याणकारी योजनाएं कार्यान्वित करने की आज्ञा दे दी गई।

सन् १८१३ का चार्टर तथा एक लाख रुपये की रकम का कम्पनी द्वारा शिक्षा के हेतु उपयोग : कर्तव्य :

इसी के आधार पर सन् १८१३ के चार्टर एक्ट में निम्न-लिखित उद्धरण समाविष्ट किया गया :—

"प्रति वर्ष कम से कम एक लाख रुपया शिक्षित भारतीयों को उत्साह देने, उनके साहित्य का जीर्णोद्धार और सुधार करने, तथा भारत की अंग्रेजी सीमाओं के बीच रहने वालों में विज्ञानों का ज्ञान प्रस्तुत करने तथा समृद्ध बनाने के लिए अलग रखा जावे।" इस तरह दोनों पौर्वात्य और पाश्चात्य शिक्षाओं का संतुलन संभव हो सकने की बात दिख पड़ी और भारतीयों की शिक्षा-दीक्षा पहली बार कम्पनी के कर्तव्यों में सम्मिलित की गई।

१९ वीं शती: भारतीय–शिक्षा प्रणाली की सरकारी रिपोर्टें

कंपनी के शासन की इस भूमिका में भारतीय-शिक्षा का जो स्थानीय स्वरूप रहा उसका सिंहावलोकन प्रासंगिक जान पड़ता है। उन्नीसवीं शती के प्रारंभ में भारत की अपनी निजी शिक्षा-संस्थाएं और प्रणालियां मौजूद थीं जो स्वयं काफी महत्वपूर्ण थीं। कंपनी के केन्द्र मद्रास बम्बई और कलकत्ता थे, इसलिए जिस इतिहास का पता मिलता है वह भी इन्हीं स्थानों से संबद्ध है। मद्रास में सन् १८२२ में सर टामस मनरो ने शिक्षा की गति-विधि की जांच का आदेश निकाला। बंबई में सन् १८३३ में एलफिस्टन ने और लार्ड विलियम बैंटिक ने बंगाल में सन् १८३५-३८ के बीच समान आदेश दिये। इन सबमें विश्वस्त रिपोर्ट बंगाल प्रांत की रही जिसे 'एडम' नामक एक मिशनरी, विद्वान ने तीन भागों में लिखा। बाकी दो गड़बड़ भरी थीं।

टॉमस मनरो की मद्रास प्रांत की रिपोर्ट

२५ जून १८२२ को सर टामस मनरो ने एक चिट्ठी लिखी और एक फार्म भी सब मातहत अफसरों को रिपोर्ट और रिकार्ड तैयार करने के वास्ते भेजा। उनमें ऐसे सभी स्कूलों का उल्लेख करना था जिनमें लिखना पढ़ना पढ़ाया जाता था। फार्म में विद्यार्थियों की संख्या और उनकी

जाति भी लिखी रहती थी। इसी प्रकार और भी जानकारी, यथा, पुस्तकें,

सर थॉमस मनरो

कोष, फीस, विषय, वेतन, दान-धर्मादा, कालेज इत्यादि सभी चीजों का उल्लेख अपेक्षित था। मनरो ने लिखा है कि मद्रास के किन्हीं दो जिलों में शिक्षा केवल व्यवसायी और ब्राम्हण वर्गो तक सीमित थी, कहीं-कहीं गांव के पटेलों में भी शिक्षा है। ब्राम्हणों और हिन्दुओं की स्त्रियों में शिक्षा का होना निर्लज्जता का लक्षण माना जाता जो वेश्याओं या नर्तकियों को शोभा देता था।

मद्रास के कुछ आंकड़े

इस तमाम इन्क्वायरी की रूपरेखा मनरो ने स्वयं प्रस्तुत की। उसके तखमीने के मुताबिक हजार पीछे एक स्कूल था। साढ़े बारह लाख की आबादी में एक लाख ८८ हजार अर्थात् ६७ में १ शिक्षा पा रहे थे। इस देश में आमतौर से बच्चे घर पर संबंधियों या निजी शिक्षकों द्वारा पढ़ाये जाते थे। इस देश की वर्तमान शिक्षात्मक दशा के विषय में मनरो ने लिखा है कि यद्यपि इस वक्त यह श्रेष्ठ नहीं तो भी पहले श्रेष्ठ अवश्य रही है और अभी भी यूरोप के कई देशों से तो श्रेष्ठ है ही। प्रत्येक विद्यार्थी को लगभग चार से लेकर छँ, आठ आने की फीस देना पड़ती तथा सामान्यतः शिक्षक ६–७ रुपये मासिक से ज्यादा नहीं कमाते।

भारतीय शिक्षा के रीति–रिवाज

बेल्लरी और कनारा के कलेक्टरों की रिपोर्ट अधिक मजेदार है। बेल्लरी के हिन्दू बालकों की शिक्षा सामान्यतः पांच बरस की उमर में शुरू होती। उमर आते ही गुरु घर पर आमंत्रित किया जाता गुण-श्री भगवान की प्रतिमा स्थापित की जाती, सामने शिशु बैठता; धूप, दीप इत्यादि उज्ज्वलित किये जाते और शिक्षक बालक से एक प्रार्थना दुहरवाता कि जिसमें ज्ञान पाने की विनय होती। इसके बाद कुछ लिखने की रहस्य-भरी क्रिया होती और उपयुक्त दान दक्षिणा पाकर गुरु रुखसत होते। बालक की शिक्षा शुरू हो जाती जो १४, १५ बरस की उमर तक चलती रहती।

दंडविधान एवं मानीटर प्रथा : पाठ्यक्रम का नियमन

समस्त स्कूलों का टाइम-टेबल प्रायः एकसा और कुछ ऐसासा रहता। स्कूल छँ बजे सबेरे खुलता और पहले प्रवेश करने वाले लड़के की हथेली पर सरस्वती का नाम लिखा रहता। दूसरे की हथेली पर शून्य होता जो उसकी स्तुति-निन्दा की अपात्रताका द्योतक होता, तीसरे को धीरे से एक बेंत पड़ती, चौथे को दो और बाद में आने वाले को एक

एक और। दंड की यह व्यवस्था कुछ अधिक कड़ी जान पड़ती है क्योंकि लड़कों को विशेषतः अलालों को बैठकें मारने को बाध्य किया जाता। इकट्ठे हो जाने पर योग्यतानुसार लड़के विभिन्न कक्षाओं में बँट जाते और छोटी कक्षाएं मानीटरों के जिम्मे रहतीं। बालक अक्षर लिखना पहले सीखते जो कि रेत में अंगुली से रेखाएं बनाकर सीखना पड़ता। इसके बाद डंडी से तख्ते पर लिखाया जाता और अंत में खड़िया से। अक्षर सीख लेने के बाद संयुक्ताक्षर, सामासिक शब्द, व्यक्तियों के नाम, गाँव के नाम, पशुओं के नाम और अंत में संख्याएं सीखी जातीं। सौ तक जोड़ और गिनती सीखना पड़ती। गणित और संख्याएं सीखने में विशेष श्रम और सावधानी बरती जाती तथा बांचने का अभ्यास किया जाता।

तदुपरान्त अन्य हस्तलिखित लिपियों को पढ़ने का अभ्यास कराया जाता जिनमें राजीनामे, किस्से-कहानियाँ, काव्य-गायन, तथा स्पष्ट और उचित उच्चारण प्रधान होता। जिस मितव्ययिता से बालकों को पढ़ाने की व्यवस्था है, जिससे बड़े लड़के छोटों को पढ़ाते हैं, मनरो ने उनकी बड़ी तारीफ की है और इंग्लैंड में उसके पालन करने की भी सिफारिश की है।

बंबई की रिपोर्ट : शिक्षा-प्रणाली भारतीय समाज और अर्थ-व्यवस्था के अनुरूप है

इसी प्रकार की रिपोर्ट बंबई प्रांत के लिए बनी। मिस्टर प्रेन्डरगास्ट ने सन् १८२१ में लिखा कि प्रायः प्रत्येक गांव में कम से कम एक स्कूल है जहां लिखना पढ़ना और गणित बड़ी मितव्ययिता से पढ़ाये जाते हैं यही एक मुट्ठी गल्ले से लेकर एक रुपया मासिक मास्टर को फीस देकर। शायद ही ऐसा कोई किसान या दूकानदार हो जो अपना हिसाब किताब पूरी सचाई, सफाई, चुस्ती और आसानी से न रखता हो। इससे साबित है कि भारत की अपनी शिक्षा-प्रणाली लोगों की आर्थिक दशा से मेल खाती हुई है, उसकी योजना और सामग्री तथा पाठ्य-क्रम सीधे सुलझे

और कामकाजी हैं । दंड की योजना अलबत्त: जरा कड़ी है परन्तु घर में पढ़ाने की प्रथा आम है और मानीटर प्रथा तो उसकी अपनी निजी और महत्वपूर्ण देन है । सन् १८१७ म प्रकाशित हुई बम्बई नेटिव सोसाइटी की रिपोर्ट में लिखा है कि सामान्यत: कक्षाओं का चलन नहीं, शिष्य-शिक्षकों को जोड़ियां बना दी जाती थीं जिसमें ज्यादा पढ़ा बालक कम पढ़े को सिखाता तथा राह बताता था ।

बंगाल की रिपोर्ट : विलियम एडम

बंगाल की रिपोर्टों के वास्ते हमें विलियम एडम नामक विद्वान् ईसाई मिशनरी का कृतज्ञ होना पड़ता है । वह सबसे पहले सन् १८१८ में भारत आया और कलकत्ते में उसने संस्कृत तथा बंगला पढ़ी । वहीं राजा राममोहन राय से उसकी तथा उसके कुटुम्ब की घनिष्टता बढ़ी और वह बंगाल के सार्वजनिक जीवन में कलकत्ता क्रॉनीकल, तथा 'इंडिया गजट' नामी अखबारों के सम्पादक के रूप में आया । १८२९ से एडम लार्ड विलियम बेंटिक से प्रार्थना करता रहा कि बंगाल की निजी शिक्षा-प्रणाली की जांच-खोज की जावे परन्तु २० जनवरी १८३५ को-ही उसका यह प्रस्ताव बेंटिक ने स्वीकार किया । सन् १८३८ में एडम अमरीका से होता हुआ सन् १८४० में इंग्लैंड पहुँचा और अपने ढंग से भारत की सेवा करता रहा । एडम ने कई पुस्तकें * लिखी हैं ।

शिक्षा का विस्तृत स्वरूप

एडम की पहली रिपोर्ट में लिखा है कि बंगाल में धर्मादा और धार्मिक संस्थाओं द्वारा संचालित स्कूलों की संख्या सबसे अधिक है । सरकारी शिक्षा समिति के एक व्यक्ति का अनुमान है कि निचले प्रदेश

*The Law & Custom of British Slavery in British India (1840).
The East India Year Book (1841).
Life of Raja Ram Mohan Roy (1879).

के ग्राम्य-स्कूलों में यदि एक रुपया प्रति मास भी खर्च किया जावे तो वार्षिक खर्च बारह लाख रुपयों से कभी कम न होगा। बंगाल और बिहार में शिक्षा के योग्य ६३ बालक बालिकाओं के पीछे एक स्कूल है तथा प्रत्येक ३२ बच्चों के पीछे एक देशी प्राथमिक स्कूल। अपनी दूसरी रिपोर्ट में एडम ने लिखा कि घर में पढ़ाये जाने वाले विद्यार्थियों की संख्या सार्वजनिक स्कूलों में पढ़ाये जाने वालों से लगभग ९ गुनी अधिक है। प्रवेश की औसत आयु ८ वर्ष और समाप्ति की औसत आयु १४ वर्ष है। शिक्षक की औसत आय ५।।) रुपये मासिक है।

मुस्लिम संस्थाएं और अंग्रेजी संस्थाएं

मुस्लिमों के कोई देशी कालेज उसे नहीं मिले पर ३८ ऐसे संस्कृत-कालेज मिले जिनमें ३९७ विद्यार्थी थे जिनमें २६१ दूसरे गांवों से आये थे तथा निवास, भोजन और शिक्षा निःशुल्क पाते थे। साक्षरता मान पुरुषों में ६.१ प्रतिशत और स्त्री में ३.१ प्रतिशत था। प्रायमरी शिक्षकों के वेतन का उल्लेख करते हुए एडम ने लिखा है कि धनियों के बाद , पर, गरीबों के ऊपर का मध्य वर्ग बड़ी मुसीबत से बड़ा त्याग करके अपने बच्चों को शिक्षा देने के वास्ते लालायित था। इसी प्रकार यद्यपि फारसी स्कूलों के अध्यापक बंगाली स्कूलों के अध्यापकों से अधिक कुशल थे तो भी उनका मासिक वेतन ४ से लेकर १० रुपया के ही बीच रहता। हिन्दुओं की नाई मुस्लिम भी कुरान की किन्हीं किन्हीं आयतों और अध्यायों का पाठ करके बच्चे की विद्या का समारम्भ करते जिसे 'बिस्मिल्लाह' कहके शुरू किया जाता। अक्षर ज्ञान के उपरांत कुरान का तीसवां खंड, सादी का पंदनामा, अमदनामा, और गुलिस्तां (सादी) क्रमशः पढ़ाये जाते। लेखन कला बड़ा भारी आभूषण मानी जाती। लैला-मजनूं, यूसुफ और जुलैखा, सिकन्दर नामा इत्यादि काव्य-ग्रंथ पढ़ाये जाते। गणित, तथा संख्याएं, तथा काम काजी पत्र-व्यवहार के तरीके सिखाये जाते।

मुस्लिम संस्थाओं का पाठ्य-क्रम अध्यापनक्रम और छुट्टियां

टाइम टेबल छै बजे सबेरे से शुरू होकर रात के ९ बजे तक चलता। दोपहर को लगभग एक घंटे की खाने-पीने की छुट्टी होती। सबेरे कल का पाठ दुहराया जाता, फिर नया पाठ शुरू होता, कण्ठस्थ किया जाता और मास्टर के सामने सुनाया जाता। प्रति गुरुवार को पिछला सब पाठ दुहराया जाता, तथा उसके बाद लगभग तीन बजे छुट्टी हो जाती। आज के रोज बालक स्वेच्छापूर्वक पाठ्य-क्रमेतर क्रियाओं तथा मनोरंजनों में लगते और कुछ नया काम न होता। शुक्रवार छुट्टी का दिन होता। रईस मुस्लिम खानदानों में अतालिक नाम का एक बड़ा नौकर होता जो प्यून जैसा ही होता तथा जिसके जिम्मे बच्चों का नियंत्रण रहता। फारसी स्कूलों की समीक्षा से जान पड़ता है कि बंगाली स्कूलों की अपेक्षा वे अधिक सुव्यवस्थित और उदारमना थे। लिखित (भले ही वे हस्त-लिखित क्यों न हों) ग्रंथों का समावेश शिक्षा-विज्ञान में बड़ा कदम है क्योंकि उससे न केवल सही और सुगठित साहित्यिक भाषा की जानकारी बढ़ती है बल्कि सोचने, और विचारों को दिशा देने में दक्षता तथा कलात्मिकता आती है।

उन्नतिशील बंगाल में स्त्री–शिक्षा

इस रिपोर्ट में आंकड़ों इत्यादि की अधिकता है यद्यपि अपनी तीसरी रिपोर्ट में एडम ने पुस्तकों के बारे में लिखा है। वह कहता है बंगाल के हिन्दू लोग बंगला पाठ्य पुस्तकों और बिहार के हिन्दी पाठ्य पुस्तकों का प्रचार करते हैं परन्तु उर्दू अधिक व्यंजनाशील है इसलिये उसी का प्रचार आमतौर से सापेक्षतः उन्नतिशील है। स्त्रियों की शिक्षा के निस्बत उसने लिखा है कि एक ऐसा अंध-विश्वास सा फैला है कि पढ़ने लिखने से लड़की विधवा हो जाती है। इससे स्त्रियाँ स्वयं ही नहीं पढ़ना चाहतीं। बात ये है कि पढ़ी लिखी स्त्रियां ज्यादा पंचायत बढ़ाती हैं सो उन्हें अपढ़ रखा जाना ही उचित है। उन्हें तो केवल धनी कुटुम्ब में ब्याह देने से सब काम चल जावेगा।

देशी शिक्षा-प्रणाली के ह्रास का एडम द्वारा निदान

देशी शिक्षा-प्रणाली के ह्रास के कारणों का निदान करते हुए एडम ने देश की निर्धनता को दोषी ठहराया है। यूरोपीय देशों के आक्रमण ने भारत के व्यवसाय को बड़ा धक्का दे दिया था। दूसरे स्थानीय सरकारों से रुपयों का स्थानांतर विदेशी शासकों के हाथों में हो गया जो इच्छा रहते हुए भी कानूनन भारत में उसे खर्च नहीं कर सकते थे। तीसरी बात यह भी थी कि शिक्षा को सबसे अधिक चाहने और प्रोत्साहन देने वाला संप्रदाय मध्यवर्ग था जो कि अपनी निर्धनता के कारण बढ़ते हुए शिक्षात्मक खर्च को बर्दाश्त करने में असमर्थ होता जाता था। साथ ही जीवन की आवश्यकताओं के तकाजे कुछ इतने विकराल हो गये थे कि ज्यों ही बालक कुछ कमाने लायक हुआ कि माता पिता उसकी कमाई का रास्ता देखने और उसकी आशा करने लगते थे।

इस प्रकार हमने देखा कि हमारे देश में अंग्रेजी राज्य के प्रारंभिक युग में शिक्षा की क्या दशा थी और किस दशा में उन्होंने अंग्रेजी-प्रणाली की नींव डाली जो आज फली फूली पर जिसका ट्रांसप्लांटेशन (Transplantation) फिर चला हुआ है।

अध्याय २

कशमकश की भूमिका

१८१३—१८३३

चार्टर-कानून की एक लाख रुपये वाली धारा और व्यापारी कंपनी के व्यापारी उद्देश्य

चार्ल्स ग्रांट, विलबरफोर्स, एडमंड बर्क प्रभृति सज्जनों के आंदोलनों के कारण ब्रिटिश पार्लमेंट ने सन् १८१३ के चार्टर कानून में भले ही एक लाख रुपये अंग्रेजी भारत की शिक्षा के लिए व्यय करने का निर्देश कर दिया हो, परन्तु यह समस्या की इति नहीं थी। वास्तव में इसके बाद भी अनेकानेक द्वंद्वों का जन्म हुआ। ईस्ट-इंडिया कम्पनी व्यापारियों की संस्था थी जिसका प्रधान उद्देश्य धन कमाना था। इस वास्ते पार्लियामेंट की यह एक लाख रुपये खर्च करने की धारा उन्हें प्रियकर नहीं लगती थी, और स्वभावत: वे इसके विषय में हीला-हवाला किया करते थे। उनके हीले-हवाले का एक नमूना ३ जून सन् १८१४ का डिस्पैच है। इस डिस्पैच में कम्पनी के डायरेक्टरों ने भारत की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली, उनके ज्ञान-ग्रंथों की बड़ी तारीफ की और कहा कि उसी की तरक्की करना हमारा उद्देश्य होना चाहिये। एतदर्थ उन्होंने आदेश दिया कि कंपनी के ऐसे भारतीय कर्मचारियों को उस ज्ञान का संपादन करने के वास्ते अपने ढंग से प्रोत्साहित किया जावे कि जो उसे पाने की क्षमता और उत्सुकता का प्रदर्शन करते हैं। कहा गया कि ऐसे कर्मचारियों को कंपनी की ओर से अवैतनिक सम्मान वितरित किया जावे। थोड़ी बहुत आर्थिक मदद भी उन्हें दी जा सकती है। कहने का मतलब यह है कि कंपनी अपनी तरफ से कुछ करने या कराने का इरादा नहीं रखती, जो

करना चाहें उन्हें थोड़ा बहुत पैसा अगर उचित समझेगी दे देगी क्योंकि चार्टर एक्ट का ऐसा कानूनी तकाजा है ।

कंपनी के अफसरों की शिक्षा-प्रसार साधन-विषयक विविधता । ग्रांट एक लाख से दस लाख

इसी काल में इंग्लैंड में सामाजिक सुधारों की जो बाढ़-सी आ गई उसके प्रभावों से जनता तथा उसके कर्णधार वंचित न रह पाये । बात यह थी कि अंग्रेजी दंड-विधान में फांसी के जुर्मों की संख्या कुछ ऐसी बढ़ गई थी कि जरा सी बात में फांसी दे दी जा सकती थी । इसी प्रकार प्राइवेट कल-कारखानों के मजदूरों की हालत भी बड़ी दर्दनाक थी, तथा उन्हें समवेत होकर अपनी मांगें पेश करने का अधिकार न था । लार्ड ग्रे और लार्ड जान रसेल ने इस परिस्थिति के विरुद्ध आवाज उठाई जिनके परिणाम स्वरूप मजदूरी की हालतों में सुधार हुआ । पार्लियामेंट ने लाखों रुपया लोगों की शिक्षा दीक्षा के वास्ते मंजूर किया । इन सब चीजों का असर भारत स्थित कम्पनी के कर्मचारियों की मनोवृत्ति और कार्य प्रणालियों पर पड़ना अवश्यंभावी था । भले कंपनी के डायरेक्टरों को इनसे परहेज रहा हो पर उनके अफसरों में ऐसी कोई बात नहीं थी । वे सामान्यतः शिक्षा-प्रचार के समर्थक थे । परन्तु इस एकता के सिवा उस प्रचार को संपन्न करने के साधनों के विषय में बड़ा ही घोर मतभेद था । मद्रास, बंगाल और बंबई प्रांतों में अलग अलग साधनों की वकालत लेकर कंपनी के पदाधिकारियों ने क्षेत्र में प्रवेश किया । यह दूसरी और अत्यन्त महत्वपूर्ण परिस्थिति थी जिसका जन्म सन् १८१३ के चार्टर कानून के बाद हुआ । शनैः शनैः डायरेक्टरों ने भी अपनी नीति में परिवर्तन के लक्षण बताये और सन् १८२४ में उन्होंने गवर्नर जनरल को लिखा कि हम लोग भारत में शिक्षा-प्रसार के वास्ते बहुत सजग और उत्सुक हैं और एतदर्थ उस दिशा में पर्याप्त त्याग करने को भी तैयार हैं । इस तरह तीनों ही प्रांतों में सरकारी-शिक्षा-प्रणाली का सूत्रपात लगभग १८२३ में

हुआ। इधर पार्लियामेंट की ग्रांट भी एक लाख रुपये से बढ़ाकर दस लाख रुपये कर दी गई।

गवर्नर जनरल मोयरा का पत्र : अंग्रेजी राष्ट्र का धर्म है भारत में शिक्षा-प्रसार

कंपनी के उन भारत-स्थित अफसरों में कि जिन्होंने डायरेक्टरों के रुख का परिवर्तन करने में सबसे महत्वपूर्ण पार्ट अदा किया लार्ड मोयरा (गवर्नर जनरल सन् १८१३–२३) और सर चार्ल्स मेटकाफ का नाम उल्लेखनीय है। २ अक्टूबर १८१५ को लार्ड मोयरा ने शिक्षा-प्रसार की नीति की आवश्यकता का समर्थन करते हुए बताया कि शासकीय सुविधा और आवश्यकताएं पूरी कर चुकने के बाद यदि अंग्रेज लोग भारतीयों की असंख्य जनसंख्या के धन्यवाद और आशीसों के सुपात्र बनने की आकांक्षा रखते हैं तो वह अंग्रेजी राष्ट्र की महानता के अनुरूप है। इस आकांक्षा की पूर्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन शिक्षा है, क्योंकि उस महान् क्षेत्र में बुद्धि अभी तक उपयोग में नहीं लायी गई है। इसलिये और भी कम्पनी को उस ओर क्रियाशील होना चाहिये। इसके बाद ४ सितम्बर १८१५ को सर चार्ल्स मेटकाफ ने भी एक महत्वपूर्ण पत्र लिखा जिसमें उन्होंने उदारमना सरकारों के शिक्षात्मक कर्त्तव्यों और राजनैतिक गतिविधियों के अन्योन्याश्रय संबंधों का विवेचन करते हुए कहा कि :–

"विश्व का शासन एक ऐसी अमोघ सत्ता के हाथों हुआ करता है जो रियासतों का आदान और अपहरण अनायास कर सकती हैं : अतः उस सर्व शक्तिमान सत्ता के विरुद्ध मानव की शक्तिहीन सत्ता यदि क्रियाशील हो तो व्यर्थ ही होगा। शासकों के हाथ में जो है वह केवल यही कि वे अपनी सुपात्रता का संवर्धन करें। भावी के चक्र में चाहे जो क्रांतियां निहित हों, यदि हमने इस दिशा में भारत के प्रति अपना कर्तव्य पालन किया तो भारत की कृतज्ञता, और विश्व की स्तुति युग-युगान्तर पर्यंत हमारे सुयश के साथ सम्बद्ध हो जावेगी।

किन्तु हमने शिक्षा के ऐसे उपकार यदि अपनी प्रजा से वंचित कर रक्खे तो–महज़ इसलिये कि सुदूर भविष्य में उसके फलस्वरूप एक स्वार्थ प्रेरित भय की आशंका संभव है,—हम निस्संदेह उस रियासत के लायक नहीं–बल्कि हम उस अपयश के पात्र हैं कि जिसे काल अपने अंतराल में रखता है और जिसमें असूया और घृणा, लोकापवाद और निन्दा का ही सम्मिश्रण है।" *

निस्संदेह ऐसे उद्‌गार भारत की स्वतंत्रता की मांग की भावी आशंका और शिक्षा के विरोध की दलीलों को चुप करने के वास्ते ही पेश किये गये होंगे। परन्तु इनसे कम्पनी की नीति बदली यह निस्संदेह है।

इन सब उद्‌गारों और चेष्टाओं का परिणाम है सन् १८१३ से लेकर १८३३ तक की शिक्षात्मक चहल-पहल, वाद-विवाद, मत-मतांतर और विचार–विनिमय। सरकारी शिक्षा विभाग का सूत्रपात बंगाल में हुआ और बाद में बंबई और कलकत्ता में फैला।

---

* The world is Governed by an irresistable power which giveth and taketh away dominion and vain would be the impudent prudence of man against the operation of its Almighty influence. All that rulers can do is to merit dominion by promoting the happiness of those under them. If we perform our duty in this respect, the gratitude of India and the admiration of the world, will accompany our name through all ages, whatever may be the revolutions of futurity, but if we withhold blessings from our subjects, from a selfish apprehension of possible danger at a remote period, we shall not deserve to keep our dominion, we shall merit that reverse which time has possibly in store for us and shall fall with mingled hatred and contempt, hisses and execrations of mankind.

बंगाल की लोक-शिक्षा समिति की सरकार द्वारा स्थापना

एच. टी. प्रिंसेप

१७ जुलाई सन् १८२७ को गवर्नर जनरल इन-काउन्सिल ने एक प्रस्ताव पास किया। इसके अनुसार बंगाल प्रांत के वास्ते लोक शिक्षा की एक जनरल समिति (General Committee of Public Instruction) नियुक्त की गई। उसमें दस सदस्य थे जो अधिकांशतः भारत के अभिजात-साहित्य अर्थात् संस्कृत, अरबी और फारसी की शिक्षा के पोषक थे। वे लोग सब लार्ड मोयरा के स्कूल के समर्थक थे और कलकत्ता-मदरसा तथा बनारस-संस्कृत कालेज से संबंधित शिक्षा, शिक्षक और ग्रंथों के प्रोत्साहन का प्रोग्राम लेकर आगे आये थे। इनमें सबसे प्रसिद्ध एच० टी० प्रिंसेप था जिसने मैकॉले की अंग्रेजी वकालत का करारा जवाब दिया और विरोध किया। यह बात अलग है कि इस संप्रदाय वालों की बहुत अधिक चल न सकी।

राजा राममोहन राय

राजाराममोहन राय का अंग्रेजी मोह—अजीब देशभक्ति और दूरदर्शिता उसका आज का दुष्परिणाम।

असल में बात यह हुई कि मैकाले तथा उसकी विचार-धारा को समर्थन और बल प्राप्त हो गया भारतीयों से ही कि जिन्होंने अपने ही निजी अभिजात-साहित्य के प्रोत्साहन की बातें तो रहीं दूर, उसका विरोध किया। हमारे इतिहास और बंगाल की प्रगति में राजा–राममोहनराय का बहुत यशस्वी स्थान हो गया है। उन्होंने इसे किस प्रकार प्राप्त किया और किस प्रकार बंगाली समाचार–पत्रों, लेखकों और प्रचारकों ने उन्हें महान् यश का भागी बनाया यह आज के प्रसंग में बड़ी समस्या है ? उनके मेमोरियल ने जिसमें अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी शिक्षा की विरुदावलि का उन्मुक्त फतवा है, सन् १९५० में बड़ी विभीषिका बनाकर खड़ी कर दी है। आज जब भारत स्वतंत्र है और अपनी आंतरिक निष्टा एवं सनातन प्रवृत्तियों के अनुरूप अपना उत्कर्ष संपन्न करना चाहता है उसे अपनी देशभाषाओं के माध्यम का अवलंबन करना अनिवार्य बन गया है। जिस देश–भक्ति से प्रेरित हो सन् १८३५ के बाद की अंग्रेजी तूफानी रफ़्तार का सूत्रपात राजा राममोहन राय और मैकाले ने कराया, उसका दूसरा अध्याय आज शुरू है। आज भारतीय लोग ही कहने लगे हैं कि भारतीय भाषाओं में अध्यापन के योग्य न तो साहित्य है और न माद्दा ही। इन सवा सौ वर्षों में यदि हमारी देश–भाषाओं पर के निरंतर कुठारा-घात ने उन्हें जर्जर बना दिया हो तो क्या आश्चर्य ? यह कि वे किसी तरह जीवित ही हैं, उनकी सशक्तता और सप्राणता का द्योतक है। भारतीय भाषाओं को उन्नीसवीं शती के प्रारंभ के युग में पिछड़ा देने का परिणाम, निस्संदेह राजा राममोहन राय की देशभक्ति का (?) ही है। यह अभिशाप बड़ा भयंकर हुआ। राजा राममोहन राय की देश–भक्ति न तो स्पष्ट–वादिता थी, न दूरदर्शिता और न व्यावहारिकता ही। आज जो हमारीशिक्षा इतनी पिछड़ गई है कि हर कदम पर अंग्रेजी का मुंह ताकने पर हमें मजबूर होना पड़ता है राजा साहब की सूझबूझ उसमें कम जिम्मेवार नहीं।

क्या भारतीय स्वतंत्रता अंग्रेजी शिक्षा का देन है अथवा इतिहास और प्रकृति का शाश्वत नियम ही ?

रही यह दलील कि जिस आजादी को हमने सन् १९४७ में हासिल किया, उसका बीजारोपण राजा राममोहन राय ने किया, सो लार्ड मैकाले तथा अन्य साम्राज्यवादी कूटनीतिज्ञों की शास्त्रार्थ प्रवृति को अधिक शोभा देगा, भारतवर्ष के स्वतंत्र विचारकों और हितैषियों को नहीं। इस सम्बन्ध में हमें सर चार्ल्स मेटकाफ का उपरोक्त उद्धरण स्मरण आता है कि जो सृष्टि–संचालन और विश्व की सहज प्रगतिशीलता का हामी है–और जिसके प्रभाव से विश्व का कोई भी अंश वंचित नहीं रह सकता। प्रजातंत्र की जिस भावना का सूत्रपात और प्रस्फुटन भारतवर्ष में हुआ, उसे एकांततः अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव कहना केवल आंशिक सत्य है। वैज्ञानिकता की प्रगति से सारे संसार के देशों में इस भावना ने जन्म लिया और बल पाया। अतः हमारी शालाएं भारतीय भाषाओं के ही माध्यम से यदि शिक्षा देतीं तो भी इस अटल राजनैतिक परिणाम को कोई टाल न सकता। यह इतिहास का नियम है, यह विश्व और प्रकृति की परंपरा है। राजा राम-मोहन राय के ११ दिसम्बर १८२३ के मेमोरियल ने कलकत्ता में संस्कृत कॉलेज की स्थापना की योजना का विरोध किया। यह अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीयों का तत्कालीन प्रवृति का द्योतक भले हो पर यह सामान्य भारतीय दृष्टिकोण और आकांक्षा का प्रतीक तो नहीं हो सकता। उनके मेमोरियल में संस्कृत और फारसी के पंडितों तथा आम जनता के प्रति घोर अवहेलना का भाव स्पष्टतः विद्यमान है जो कि विष-वृक्ष का बीज होकर आज की भूमिका में फिर समस्या बनकर खड़ा हो गया है। भारतीय भाषाओं की ऐसी निर्धनता और प्रजातंत्र की भावना तथा लोक-शिक्षा की विशाल योजनाएं सब मिलकर जाल बन गई हैं।

अंग्रेजी देश-भाषाओं का नाश करके बढ़ी।

जिस लोक-रुचि का फतवा पाश्चात्य इतिहासकार दिया करते हैं कि वह अंग्रेजी शिक्षा को पसंद करने लगी थी बड़ा एकदेशीय तथ्य है।

स्पष्टतः दूसरी ओर का तथ्य तो आगे आ ही नहीं पाता था और यदि आता भी था तो उसे देखने या सुनने की मंशा अथवा अवकाश था ही किसे ? विभिन्न कारणों ने समवेत होकर अंग्रेजी को भारतवर्ष में शक्तिशाली बनाया। यह बात आज सत्य हो सकती है सवा सौ बरस पहले वह केवल मनपसंद कल्पना मात्र थी। अंग्रेजी बढ़ी पर अनुपात में हिन्दी और अन्य देश-भाषाएं घटीं, कमज़ोर हुईं, जो उनकी प्रगति हुई भी वह स्वतंत्र है और थोड़ी बहुत अनुवादों के रूप में है। पर उससे भाषा सन् १९५० में शिक्षा का अविरोध सहज माध्यम बन सकती यह न हुआ।

अंग्रेजी फैलती गई।

तो भी सरकारी नौकरियों के लोभ ने, राजा राममोहन राय जैसों के समर्थन ने और ईसाई मिशनरियों के सक्रिय उद्योगों ने अंग्रेजी का प्रसार कराया और जिस भी परिमाण में उसे लोकप्रियता मिली उसका श्रेय हासिल किया। यह बात बंगाल में सबसे अधिक सत्य साबित हुई है। किन्तु यह कहना कि भारतीय दोषों की एकमात्र दवा अंग्रेजी भाषा और शिक्षा है घोर प्रमाद होगा, तब भी था ओर आज भी है। शिक्षा के क्षेत्र में ऐसे भेद एक तो हुआ ही नहीं करते और जो कहे जाते हैं सो राजनैतिक सत्ताधीशों के अपने नारे और दांवपेंच हैं।

बंबई में शिक्षा विभाग की स्थापना : बंबई नेटिव एजूकेशन सोसाइटी का संगठन और एल्फिंस्टन के सुझाव : भारतीय अभिजात भाषाओं तथा साधारण जनमात्र की शिक्षा : अंग्रेजी माध्यम केवल प्रयोग रूप में हो।

बंगाल प्रांत से चलकर हमारा ध्यान बंबई प्रांत की ओर जावेगा। सन् १८१८ तक अंग्रेजों ने पेशवा और मराठों का राज्य नाश कर दिया। पेशवा का खजाना लगभग पांच लाख रुपये ब्राम्हणों को दक्षिणा देने के हेतु व्यय करता था। जब अंग्रेजों ने उस खजाने पर अपना कब्जा कर लिया तो उन्होंने निश्चित किया कि यह रकम ब्राम्हणीय ज्ञान के प्रोत्साहनार्थ व्यय की जावे। एतदर्थ सन् १८२१ में पूना में पूना-संस्कृत

कालेज की स्थापना माउंट स्टुअर्ट एल्फिस्टन की प्रेरणा से कराई गई। एल्फिस्टन भी लार्ड मोयरा के स्कूल के समर्थक था और इसलिये वह भारत की अभिजात भाषाओं संस्कृत, फारसी और अरबी की शिक्षा और माध्यम को ही समर्थन देना चाहता था। उसका ख्याल था कि लोकमत भी इसी बात को चाहता है। बंबई में सन् १८२३ तक सरकारी विभाग केवल इसी पूना कालेज की व्यवस्था तक अपनी कार्यवाही सीमित रखा किया। परन्तु सन् १८२३ में बंबई नेटिव एजूकेशन सोसाइटी

एलफिन्सटन

नाम की शिक्षा-प्रसारणार्थ एक संस्था संगठित हुई जिसने सरकारी ग्रांटों के लिए अर्जी पेश की। एल्फिस्टन की विचार-वृत्ति इस अर्जी ने बड़ी सजग बनाई और उन्होंने सरकारी शिक्षा-विभाग के सर्वांगीण संगठन की योजना प्रस्तुत की जिसमें सरकारी स्कूल, प्राइवेट स्कूल, पुस्तक-प्रकाशन, शिक्षण-विधियों, पश्चिमी-विज्ञान, तथा भारतीय-भाषाओं में अंग्रेजी को एक 'क्लासिक' की नाईं पढ़ाने के सुझाव इत्यादि सभी कुछ रखे।

एलफिंस्टन ने अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम रखने पर जोर नहीं दिया बल्कि मातृ-भाषा के माध्यम द्वारा देशी स्कूलों में सुधार और शिक्षा-प्रसार का ही समर्थन किया। अंग्रेजी का बहिष्कार वह नहीं करना चाहता था तो भी उसे सार्वजनिक बनाना उसकोप्रासंगिक और व्यावहारिक नहीं जान पड़ता था। वह चाहता था कि पहले भारतीयों में अंग्रेजी के प्रति रुचि उत्पन्न हो जावेजो अंग्रेजी को क्लासिक के रूप में पढ़ाने से संभव हो सकता था। दूसरे उसने यह प्रस्ताव सामने रखा कि बंबई में एक ऐसी पाठशाला निर्मित की जावे जहां अंग्रेजी 'क्लासिक' के रूप में पढ़ाई जावे और माध्यम भी रहे तथा इतिहास, भूगोल और साइंस की लोकप्रिय शाखाएं इस माध्यम के जरिये पढ़ाई जावें। सारांश यह है कि एलफिंस्टन का झुकाव सार्वजनिक शिक्षा की ओर अधिक था और अंग्रेजी शिक्षा को वह केवल प्रयोगात्मक और अप्रधान रूप से ही रखना चाहता था।

'वार्डन' द्वारा एलफिंस्टन के मत का विरोध : अंग्रेजी तथा वर्ग मात्र की शिक्षा का समर्थन

जब बंबई के गवर्नर के सामने ये प्रस्ताव रखे गये तो 'वार्डन' नामी कौंसिल–सदस्य ने उसका घोर विरोध किया। सरकार सार्वजनिक शिक्षा को अपने ऊपर लाद ले यह प्रस्ताव स्वीकार्य नहीं हो सकता। उल्टे यदि शिक्षा देना ही है तो पर्याप्त मात्रा में सुचारु ढंग से कुछ अल्पसंख्यकों को देना चाहिये। यह श्रेयस्कर और शंकारहित भी होगा। जरा सी शिक्षा बहुतेरों को दे देने से कोई लाभ नहीं। हमें तो संतोष होगा कि हम विशाल अट्टालिका की मजबूत बुनियाद भर डाल देवें तथा उस अट्टालिका के निर्माण की एक ही दिन में राह न देखने लग जावें क्योंकि इस काम का किया जाना शतियों के अधीन है। और इस उद्देश्य के वास्ते निस्संदेह शिक्षा-प्रणाली श्रेयसी होना चाहिये, जिसका सबसे सीधा और सशक्त मार्ग अंग्रेजी की ही शिक्षा है।

बंबई और बंगाल की विभिन्न द्वंद्वात्मक परिस्थितियां

वार्डन का मत एल्फिंस्टन के मत से विपरीत है। मतभेद का विषय बंगाल से अलग है। बंगाल में सरकारी मत फारसी संस्कृत के पक्ष में था और राजा राममोहन राय जैसे भारतीय का मत अंग्रेजी के, तथा बंबई में मतभेद सरकार के ही विभिन्न सदस्यों के बीच था। फिर मतभेद का विषय बंबई में अंग्रेजी अथवा फारसी-संस्कृत नहीं थीं, बल्कि अंग्रेजी और देश-भाषाएं। वार्डन अंग्रेजी का समर्थक था, एल्फिंस्टन देश-भाषाओं का, वार्डन संप्रदाय-मात्र की शिक्षा चाहता था, एल्फिंस्टन सार्वजनिक शिक्षा। बात यह भी थी कि बंबई के महाराष्ट्र संतों और लेखकों ने देश-भाषाओं को अपनी रचनाओं का तथा आदान-प्रदान का साधन बनाकर सुसम्पन्न भी कर लिया था, जिसका परिणाम यह था कि संस्कृत और फारसी का जो प्रभुत्व बंगाल अथवा उत्तरप्रदेश में था वह इस देश में नहीं रहा। बहस मुबाहसे के बाद कम्पनी के डायरेक्टरों ने एल्फिंस्टन की बात न मानी और न सरकारी शिक्षा-विभाग ही कायम किया। बल्कि बंबई नेटिव एजूकेशन सोसाइटी को ही अपना एजेंट मानकर उन्हें ६००) मासिक ग्रांट मंजूर कर दी। साथ ही स्कूली किताबें छापने का खर्च उठाने के लिए भी वे सहमत हो गये। इस तरह बंबई में शिक्षा का यह स्वरूप रहा जो स्वयं एक द्वंद्व का परिचायक है।

मद्रास में मनरो द्वारा मास्टरों के ट्रेनिंग-स्कूल का सुझाव। कंपनी की अंग्रेजी–शिक्षा प्रसारार्थ आज्ञा।

मद्रास प्रांत में शिक्षा के इतिहास में सर्व प्राचीन और सर्व प्रथम नाम सर टामस मनरो का है जिसने सारे प्रांत भर के देशी स्कूलों के आंकड़े इकट्ठे कराये थे। कहना न होगा मनरो भी एल्फिंस्टन की नाईं देशी प्रणाली को ही इम्दाद देना चाहता था। १० मार्च १८२६ को उसने मद्रास प्रांत के स्कूलों के शासकीय संगठन से संबंध रखने वाली अनेक बारीकियों की व्यवस्था के सुझाव रखे। इन सुझावों में सरकारी दानों के जरिये देशी स्कूलों में सुधार किया जाना प्रमुख था। जो सबसे महत्व

की बात उसने कही वह यह थी कि एक ऐसा स्कूल खोला जाये कि जिसमें शिक्षकों की शिक्षा का प्रबन्ध किया जावे। इसका खर्च सब मिला कर उसने ४०००) रु० मासिक अर्थात् ४८०००) सालाना कूता। उसने भी सर चार्ल्स मेटकाफ के उद्गारों को तथा इंग्लैंड में चलने वाले लोक-कल्याणकारी आंदोलनों की दलीलों को पेश किया। पहले सन् १८२८ में डायरेक्टरों ने इन सुझावों को मान लिया। पर सन् १८३० की २९ दिसम्बर को उन्होंने लिखा कि मद्रास की सरकार सार्वजनिक शिक्षा के प्रसार से ध्यान हटाकर केवल अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार पर सारी शक्तियां केन्द्रित करे। इस बीच मनरो का देहांत १८२७ में हो गया था और उनके उत्तराधिकारियों में न तो मनरो की सूझ थी और न सहानुभूति ही।

ईसाई मिशनरियों द्वारा देश–भाषाओं का अध्ययन एवं शिक्षा के हेतु उनकी सामर्थ्य की खोज और प्रचार।

यह तो हुआ शिक्षा-प्रसार और सुधार की सरकारी गतिविधियों का अनुशीलन। वैसे इस बीच गैर-सरकारी प्रयत्न भी जारी रहे जिनमें एक ओर तो देशी शालाएं थीं, दूसरी ओर मिशनरी स्कूल और तीसरे नये किस्म के गैर सरकारी स्कूल। सरकारी योजनाओं में इनका कहीं भी उल्लेख नहीं था। मिशनरियों का तो उद्देश्य शिक्षा नहीं था, वे धर्म परिवर्तन कराना चाहते थे और शिक्षा को एक साधन रूप में उपयोग करते थे। वे भारतीय सहायकों को तैयार करके अपने काम में लेना चाहते थे। जो हो इधर ईसाई मिशनरियों ने भारत की देश-भाषाओं का खूब गंभीर अध्ययन कर डाला। इस काम को कम्पनी असंभव समझती थी और मान बैठी थी कि भारतीय देश-भाषाएं बिलकुल बेकार हैं। परन्तु यह भ्रम सिद्ध हुआ। मिशनरियों ने सार्वजनिक शालाओं और शिक्षा को ही अपनाया। अंग्रेजी पढ़ाने की मिशनरी शालाएं तो बाद की चीज हैं। सन् १८३० में 'डफ़' नाम के एक पादरी ने कलकत्ता में एक ऐसा ही

स्कूल कायम किया जिसका अनुसरण सारे मिशनरियों ने किया। इनका उद्देश्य अब सामान्यतर संप्रदायों में प्रवेश पाना था। यह संप्रदाय उनकी धर्म-परिवर्तन की परिधि से अभी तक दूर रहे थे।

इस तरह हम देखते हैं कि मैकाले के मशहूर मिनिट के आगमन के पूर्व और १८१३के चार्टर कानून के बाद भारतवर्ष में शिक्षा का क्षेत्र द्वंद्वों से भरा हुआ था। बंगाल में हेस्टिंग्ज़ और मोयरा संस्कृत-फारसी की शिक्षा तथा पश्चिमी ज्ञान को भी इन्हीं के माध्यम से पढ़ाने के हामी थे। उधर बम्बई और मद्रास में एल्फिस्टन, मनरो देश-भाषाओं के ज़रिये सब कुछ पढ़ाना चाहते थे; और तीसरे वे थे जो कि केवल पश्चिमी ज्ञान अंग्रेजी के जरिये ही पढ़ाना चाहते थे। इस परिस्थिति में सन् १८३३ का चार्टर कानून पास हुआ जिसमें भारतीयों को कंपनी की सर्विस बिना किसी जातीय और धार्मिक भेद-भाव के देने का विधान किया गया। यही सब मैकाले और प्रिंसेप, पौर्वात्य और पाश्चात्य कशमकश की भूमिका है।

अध्याय ३

द्वंद्व : पूर्ववाद और पश्चिमवाद

(१८३३—१८४५—१८५४)

द्वंद्व के तीन अभिनेता थे।

प्रस्तुत अध्याय के वर्णन का प्रारम्भ यद्यपि हम सन् १८३३ से मान रहे हैं तथापि इसकी पूर्व पीठिका राजा राममोहन राय ने ११ दिसम्बर सन् १८२३ को ही प्रस्तुत कर दी थी। इस तरह प्रस्तुत द्वंद्व को हम सुविधापूर्वक तीन खंडों में विभक्त कर सकते हैं। प्रत्येक खंड के एक एक नेता रहे—अर्थात् १८२३ में राजा राममोहन राय, सन् १८३५ में मैकाले और प्रिंसेप तथा अंत में लार्ड विलियम बेंटिंक। राजा राममोहन राय की अर्ज़ी में मुसाहबज़ू की फरमाबरदारी की स्पष्ट झांकी है। अर्जी 'माई लार्ड' से प्रारम्भ होकर माई-बाप जैसी सरकार के सामने पेश होती हुई जहाँ एक ओर अपनी देशभक्ति (?) का उद्घोष करती है वहीं अंग्रेज सम्राट और पार्लियामेंट की उदारमना कृपाओं का कृतज्ञता-पूर्वक स्वीकरण भी। †

---

† In representing this subject to Your Lordship I conceive myself discharging a solemn duty which I owe to my countrymen and also to that enlightened Sovereign and Legislature which have extended their benevolent cares to this distant land actuated by a desire to improve its inhabitants and therefore humbly trust you will excuse the liberty I have taken in thus expressing my sentiments to your lordship---

Calcutta — I have etc.

the 11th December 1823 — Ram Mohan Roy

राममोहनराय की अंग्रेजों के प्रति कृतज्ञता तथा उनकी अपनी सूझ।

सन् १८१३ के चार्टर एक्ट के मुताबिक कंपनी के पदाधिकारी कलकत्ते में संस्कृत कालेज की स्थापना करने जा रहे थे। राजा राममोहन राय को यह बात नागवार जान पड़ी और उन्होंने सात समुंदर पार से आये हुए अर्ध-परिचित अपरिचित अंग्रेज शासकों के सामने अपने सुझाव (अर्थात् भारतीयों के) इसलिए रखना चाहे कि सरकार के नेक इरादे कहीं इस सुझाव के अभाव में घपले में न पड़ जावें। यों तो संस्कृत पाठशाला की योजना से राजा साहब कृतकृत्य हो ही उठे थे तो भी उन्हें संदेह था कि उत्तमोत्तम उद्देश्य भी दूरदर्शिता के अभाव में बेकार साबित हो जाते हैं। चार्टर ने जो एक लाख रुपये मंजूर किये थे उसे जानकर राजा साहब इसलिये खुश हुए कि यूरोपीय महाशयों के हाथ तले भारतीयों को गणित, रसायन, ज्योतिष और स्वाभाविक दर्शन इत्यादि विषयों को पढ़ने का अवसर प्राप्त होगा। इसलिये वे ज्ञान के उस सुप्रभात की राह देखने लगे: हर्ष और कृतज्ञता से परिप्लावित होकर। पश्चिम के सर्वश्रेष्ठ उदार और सुसंस्कृत देश को एशिया में वर्तमान यूरोप की साइंसों का बीजारोपण करने की जो सुबुद्धि भगवान ने दी उससे वे आभारनत थे।

"संस्कृत भाषा और साहित्य भारत को चिर अंधकार में पटकने के साधन हैं" —राजा राममोहन राय—

इस संस्कृत पाठशाला की योजना से उन्हें बड़ा धक्का लगा क्योंकि इसका निर्माण हिन्दू पंडितों की अध्यक्षता में हो रहा था जो वही ज्ञान दे सकते थे जो पहले से ही भारत में मौजूद था। यह ज्ञान नवयुवकों के दिमागों को व्याकरणी बारीकियों और आध्यात्मिक भेद उपभेदों के बोझ मात्र से दबाता। उसका न तो समाज के लिए और न स्नातकों

के हेतु ही कोई * व्यावहारिक प्रयोजन था। उन्होंने कहा कि संस्कृत भाषा इतनी कठिन है कि ज्ञान प्राप्ति के हेतु उसे साधन बनाने में सारा जीवन भी पर्याप्त न होगा यह सर्वविदित है। अतः उसमें प्रयुक्त परिश्रम का समुचित पलटा न मिलेगा। यदि ऐसा ही ज्ञान देना है तो और भी साधन तो मौजूद हैं। इस कालेज की स्थापना की ही क्या जरूरत है ? * नवयुवकों को यदि उसे सीखने का प्रोत्साहन भी दिया जाय तो उनके जीवन के बेशकीमती दर्जन भर साल संस्कृत व्याकरण की बारीक उलझनों में ही बीत जावेंगे। उदाहरणार्थ लीजिये, 'खाद का मतलब खाना होता है, परन्तु 'खादति' का वह (स्त्री, पुरुष या निर्जीव पदार्थ) खाता है कैसे हुआ ? –और यदि हुआ तो क्या इस समूचे शब्द का ही यह अर्थ हुआ अथवा उसके विभिन्न विभिन्न अंगों का अलग अलग ? क्या अंग्रेजी भाषा में भी इसी तरह अर्थ पूछे जाते हैं इत्यादि ? यहाँ संस्कृत में यही होता है। अब विषयों के क्षेत्र में संस्कृत के

---

* This Seminary can only be expected to load the minds of youth with grammatical niceties and metaphysical distinctions of little or no practical use to the poss essors or to society.

* Since no improvement can be expected from inducing young men to consume a dozen years of the most valuable period of their lives in acquiring the niceties of the Byakaran or Sanskrit grammar. For instance in learning to discuss such points as the following :-- 'Khad' signifies to eat, 'Khaduti', he or she or it eats. Query whether does the word 'Khaduti' taken as a whole conveys the meaning he, she or it eats, or are separate parts of this meaning conveyed by distinct portions of the word? As if in the English language it were asked how much meaning is there in the 'Eat' and how much in the 'S'?

विषयों को देखिये—वेदांत का प्रश्न है कि "आत्मा किस प्रकार ब्रम्ह में लीन हो जाती है—उसका सत्व से क्या संबंध है" इत्यादि कपोल—कल्पनाएं ? वेदान्त की घोषणा है कि सारी दुनिया झूठी है, माँ-बाप, भाई-बन्धु का कोई सच्चा अस्तित्व नहीं, सारे स्नेह झूठे हैं और जितनी जल्दी हम संसार से मुक्त हो सकें उतना ही श्रेष्ठ ? कहने का मतलब यह कि संस्कृत भाषा या शिक्षा-प्रणाली भारत देश को सदा के अंधकार में डालने का सर्वोत्कृष्ट माध्यम है †क्या अंग्रेजी पार्लियामेंट की यही नीति है ? मेरी समझ में ऐसा नहीं है ।

द्वंद्व का बीज : १८१३ के चार्टर एक्ट के कतिपय शब्द—समूह ।

बस इसी भूमिका में बारह बरस बाद पूर्ववाद और पश्चिमवाद के द्वंद्व का निर्णय हुआ । पूर्ववादी दल सन् १८१३ के चार्टर एक्ट का अपने मतानुसार अर्थ लगाता था और पश्चिमवादी दल अपने मतानुसार । असल में झगड़े की जड़ थे (१) साहित्य का जीर्णोद्धार और सुधार, (Revival and Improvement of Literature) (२) भारतीय शिक्षितों को प्रोत्साहन देना (Encouragement of the Learned Natives of India) (३) साइंसों के ज्ञान का प्रारम्भ तथा संवर्धन (Introduction and Promotion of a Knowledge of the Sciences) । पूर्ववादी दल कहता कि 'साहित्य' से अभिप्रेत है भारत के दो संप्रदायों अर्थात् हिन्दुओं और मुस्लिमों का साहित्य । इसी विषय को लेकर टी० बी० मैकाले और एच० टी० प्रिंसेप की चकचक चली जिसमें वक्रोक्ति, श्लेष और चोटों का तीखापन तथा वाचालता की अप्रतिम बानगी मौजूद है ।

मैकाले ने सबसे पहले यह धारणा प्रस्तुत की कि 'साहित्य' का अभिप्राय अंग्रेजी या यूरोपीय साहित्य से ही है । इसी प्रकार

---

† The Sanskrit System of education would be the best calculated to keep this Country in darkness, if such had been the policy of British legislature......Macaulay..-

का अभिप्राय अंग्रेजी या यूरोपीय साहित्य से ही है। इसी प्रकार 'शिक्षित भारतीय' (Learned native) का मतलब भी पश्चिमी शिक्षा से शिक्षित भारतीय है। यह कहना कि पार्लियामेंट का मतलब उस 'शिक्षित भारतीय' से रहा था कि जो मिल्स की कविता, लॉक का दर्शन और न्यूटन की फीजिक्स से तो अनभिज्ञ हैं पर कुशों के उपयोग और ब्रम्ह में लीनता के सिद्धांतों में पंडित, तो बड़ी अजीब बात होगी ? क्या पार्लियामेंट बाद की इन चीजों के लिए इतनी बडी रकम निश्चित कर सकती है ? यह तो ऐसा ही हुआ कि मिश्र देश का पाशा यदि उपरोक्त उद्देश्यों के वास्ते कुछ रकम मंजूर करे तो हम उसका अर्थ बिल्ली और प्याज के अंध विश्वासों, ममियों और ओसीरीज की दंतकथाओं के ज्ञान से लगा लेवें ? यह तो अनर्थ होगा। वास्तव में साहित्य का जीर्णोद्धार पश्चिम की साइंसों और ज्ञान के समावेश से ही संभव है। यह आदर्श, कानून के शब्दों से बिलकुल स्पष्ट है जिसके बल पर हम सारी की सारी शिक्षा प्रणाली को बदल सकते हैं। हमने माना कि हमने इस रकम का उपयोग अभी तक देशी-शिक्षा-प्रणाली को प्रोत्साहित करने में किया, पर जब हम सरासर देख रहे हैं कि उससे जीर्णोद्धार नहीं हो रहा तो हमें राह बदल देनी चाहिये। इसमें कोई वचनबद्धता की बात नहीं आती। जो भाषाएं और प्रणाली, तथा विषय निकम्मे साबित हो चुके हैं उन पर और खर्च करते जाना बिलकुल फिजूल है। हां यदि कुछेक अध्यापकों अथवा विद्यार्थियों का इस परिवर्तन से आर्थिक नुकसान होता है तो हम भले उसका हर्जाना इत्यादि देवें परन्तु सरकारी वचनबद्धता की जो बात है सो निरर्थक है। अगर कोई सरकार पिछली सदी में माता के टीके लगाने का नियम पास करती है तो क्या आज जेनर के आविष्कार के बाद भी वह अपनी हठधर्मी पर अड़ी रहकर न्याय करेगी ? ऐसे वचन बिलकुल कोरी चीज हैं और यह एक लाख की रकम गवर्नर जनरल की मर्जी पर ज्ञान के संवर्धनार्थ चाहे जिस तरीके से उपयोग में

ली जा सकती है। उनका अधिकार अक्षुण्ण है। *

भारत के बौद्धिक स्वास्थ्य की मांग है अंग्रेजी? अंग्रेजी सीखने के वास्ते वे कीमत देने को तैयार हैं।

इसके बाद मैकाले भारतीय देश-भाषाओं की नपुंसकता, उनकी निर्धनता, उनकी असाहित्यिकता इत्यादि पर कस कसकर आघात करता जाता है। † उसका कहना है कि यूरोप के किसी भी पुस्तकालय की केवल एक अलमारी भारत और अरब के संपूर्ण साहित्य से बढ़कर है। अच्छी से अच्छी अरबी या संस्कृत पुस्तक इंग्लैंड की सड़ी से सड़ी पुस्तक के संशोधित अंशों से घटिया होगी। रही भारतीयों के सहयोग की बात, सबसे पहले तो यह चीज ध्यान में रखना है, जब भी कहीं एक अधिक बुद्धिमान राष्ट्र किसी सापेक्षतः अज्ञानी राष्ट्र की शिक्षा-संचालन का कार्य अपने जिम्मे ले तो क्या सारा का सारा पाठ्यक्रम उसी अज्ञानी

---

* I should have denied the competence of our predecessors to bind us by any pledge on such a subject. Suppose that a Govt. had in the last century enacted in the most solemn manner that all its subjects to the end of time, be inoculated for the small pox, would that Govt. be bound to persist in the practice after Jenner's Discovery? These promises of which nobody claims the performance from which nobody can grant a release, these vested rights which vest in nobody, this property without proprietors, this robbery which makes nobody poorer, may be comprehended by persons of higher faculty than mine. I consider this formality merely as set form of words, regularly used both in England and in India, in defence of every abuse for which no other plea can be set up.

† A single shelf of a good European library was worth the whole native Literature of India and Arabia.

देश के निवासियों द्वारा ही निश्चित किया जावे ? उनके बौद्धिक स्वास्थ्य की अवहेलना कर केवल उनकी बौद्धिक-रुचि की ओर ध्यान देना बड़ी गलती होगी । फिर हम तो इन दोनों की ही अवहेलना कर रहे हैं । सच पूछो तो हम उन्हें रुचिकर ज्ञान से वंचित तो रख ही रहे हैं साथ ही उन पर वह ज्ञान लाद रहे हैं कि जिससे उन्हें उबकाई आती है । इसका सबसे बड़ा सबूत यह है कि संस्कृत और अरबी के विद्यार्थियों के ऊपर तो हमें मजबूरन खर्च करना पड़ता है जब कि अंग्रेजी सीखने के वास्ते वे खुद पैसा देने को तैयार हैं । दुनिया के किसी भी हिस्से में इस सत्य का सबूत देने की जरूरत नहीं कि जो चीज आदमी को सुखद और लाभकारी होती है उसे हासिल करने के लिए उसको पैसे के रूप में पारिश्रमिक देना जरूरी नहीं होता । आखिर भूखे भारतीय को चावल खाने के लिए कोई कीमत नहीं दिया करता और न इसलिये कि जाड़े में वह कपड़े पहनता है । इन तमाम चीजों में बाजार भाव ही फैसले का जिम्मेवार होता है ।

पूर्वी शिक्षा प्राप्त विद्यार्थियों की अर्जियाँ : उन्हें शिक्षा से कोई लाभ नहीं होता !

अब रहा इन कालेजों के विद्यार्थियों का अनुभव । कितनों ने ही अर्जियां पेश की हैं कि "इस शिक्षा के प्रमाण-पत्रों को तो हमने पा लिया पर रोटी कमाने का हमें कोई जरिया दिखता नहीं जब तक कि सरकार हमारी मदद न करे । क्या सरकार की यह मंशा थी कि हम पर इतना सब खर्च करने के बाद सरकार हम लोगों को भूखे मरने पर मजबूर करें ?" हम देखेंगे कि इन तमाम अर्जियों की बुनियादी प्रेरणा एक है । अर्थात् इस शिक्षा ने उन्हें निकम्मा बनाया, उन पर ज्यादती की है; कि जिसका वे मुफ्त पढ़ाये जाने पर भी हर्जाना मांगते हैं । उनका दावा है कि यह शिक्षा उनके ऊपर एक ज्यादती है कि जिसका इलाज वे सरकार से बाजिब ही मांगते हैं । और बात सही है; * हमने भारतीयों को अपनी दकियानूसी

* We are making that opposition which we do not

दुनिया की विरासतों में खुद ही नहीं पड़ा रहने दिया बल्कि एक सक्रिय सहयोग भी दिया कि वे उसमें से बाहर न निकल पावें। हमने उनके अज्ञान के वास्ते दान धर्मादा और रुपये इनाम दिये, और अब उनकी निजी कठिनाइयों में हम अपनी कठिनाइयां इस प्रकार कानून का अर्थ लगाकर जोड़ रहे हैं। अरबी, संस्कृत इत्यादि के ऊपर खर्चा करके हमने केवल सत्य का ही गला नहीं घोंटा बल्कि असत्य के समर्थकों को तरजीह दी। अगर आज मेरे सुझाये परिवर्तन के विरोधी भी पैदा हो गये हों तो उसके लिये हमारी ही सिस्टम जिम्मेवार है क्योंकि उसके नेता हमारे कालेजों से हमारी छात्रवृत्ति से पढ़े लिखे शिक्षित व्यक्ति ही होंगे। सच पूछो तो विरोध भारतीयों की तरफ से नहीं आवेगा बल्कि उस न्यस्त स्वार्थ से कि जिसे हमने अपने कृत्रिम साधनों और नीति से पैदा करके मोटा बना दिया है। ये लोग आवेगों और स्वार्थों के वशीभूत हो किसी भी उपयोगी योजना के विरुद्ध शोरगुल मचावेंगे।

---

find. What we spend on the Arabic and Sanskrit colleges is not merely a dead loss to the cause of truth, it is bounty money paid to raise up champions of error. It goes to form a nest not merely of helpless place hunters but of bigots promoted alike by passion and by interest to raise a cry against every useful scheme of education. If there should be any opposition among the natives to the change that I recommend that opposition will be the effect of our system. It will be headed by persons supported by our stipends and trained in our colleges. The longer we persevere in our present course, the more formidable will that opposition be. It will be every year reinforced by recruits whom we are paying. From the native society left to itself we have no difficulties to apprehend. All the murmuring will come from that oriental interest which we have by artificial means called into being and nursed into strength.

—T. B. Macaulay.

संस्कृत-फारसी प्रकाशन विशुद्ध हानि है ।

यही हाल हमारी संस्कृत – अरबी की पुस्तकों के प्रकाशन की योजना का है । लगभग एक लाख रुपया उसके वास्ते अलग निकालकर रख दिया गया है । पर इन किताबों का कोई खरीददार नहीं । ऐसी लगभग तेईस हजार किताबें उन कचड़ाखानों में पड़ी हैं कि जिन्हें हम लायब्रेरी कह रहे हैं । फिर जब वे नहीं बिकीं तो हमने खैरात बांटना शुरू किया, पर वह भी उनके छपने की रफ्तार के साथ न चल सका । इस तरह इन तीनों सालों में हमने लगभग साठ हजार रुपये नष्ट करके रद्दी के ढेर बढ़ा डाले हैं । उधर अंग्रेजी की किताबों को देखिये; वह लगभग सात हजार सालाना बिकती हैं और २० फी सैकड़ा मुनाफा भी दे रही हैं । †

कानूनी विशेषज्ञता अथवा अंधविश्वासों की शिक्षा ?

संस्कृत या फारसी अरबी के कालेजों की स्थापना का एक उद्देश्य जजों के लिए हिन्दू मुस्लिम कानूनों के विशेषज्ञ पैदा करना भी था । उनके विषय में मैकाले ने साफ साफ कहा कि उन दोनों ही कानूनों को अंग्रेजी में सिखाया जावे । मैकाले ने कहा कि अपनी सहूलियत के नाम पर यदि ऐसा बेकार तीन कौड़ी का गलत साहित्य हम किसी को पढ़ावें तो वह

† Twenty three thousand volumes, most of them folios and Quartos fill the libraries or rather the lumber rooms of this body. The Committee contrive to get rid of their vast stock of oriental literature by giving books away. But they cannot give so fast as they print. About twenty thousand rupees a year are spent in adding fresh masses of waste paper to a hoard which one should think is already ample. During the last three years about 60 thousand rupees have been expended in this manner. The sale of Arabic and Sanskrit books during those years has not yielded quite one thousand Rupees.

—Macaulay.

न तो तर्क-संगत है, न नीति-संगत, और न हमारी उच्च स्वर से घोषित तटस्थतासे ही मेल खाता है। जब हम ईसाई मिशनरियों को भारतीयों का धर्म परिवर्तन करने के लिये सहायता नहीं देते तो किस तरह ऐसे झूठे ज्ञान विज्ञान की तरक्की के लिए सरकारी पैसे की रिश्वत दे सकते हैं कि जिससे वे अपना सारा यौवन एक गधे के स्पर्श से पवित्र होना सीखने अथवा बकरे की बलि के पाप से मुक्त होने के लिए वेदों के मंत्रों का पाठ करने में बितावें ? कितने राक्षसी अंधविश्वास इस भाषा और शिक्षा में हैं ?*

हमारा उद्देश्य एक दुभाषिया संप्रदाय

मैकाले ने इस मत का भी घोर खंडन किया कि भारतवासी अंग्रेजी सीखने में असमर्थ होंगे। उसने कहा यह विचार नितान्त भ्रामक है। सारी दुनिया के लोगों ने अंग्रेजी सीखी, यहाँ हिन्दुओं में से भी कितने

---

* But to encourage the study of a literature admitted to be of small intrinsic value, only because that literature inculcates the most serious errors on the most important subjects, is a course hardly reconcilable with reason, with morality or even with that very neutrality which ought as we all agree to be sacredly preserved. We are to teach false history, false astronomy, false medicine, because we find men in company with false religion. We abstain and I trust. shall always abstain from giving any public encouragement to those who are engaged in the work of converting the natives to Christianity. And while we act thus, can we reasonably or decently bribe men, out of the revenues of the state to waste their youth in learning how they are to purify themselves after touching an ass or what texts of the Vedas they are to repeat to expiate the crime of killing a goat.

—Macaulay.

ऐसे हैं जो संसार के सभी प्रश्नों पर विवेकपूर्वक अंग्रेजी में विचार-विनिमय

लार्ड मेकॉले

संभाषण और वाद–विवाद कर सकते हैं। निसर्गतः मैकाले ने यह घोषणा की कि हम अपने सीमित कोष से सारी प्रजा की शिक्षा की व्यवस्था नहीं कर सकते, हम इसकी चेष्टा भी न करेंगे। अभी तो हमें केवल एक ऐसे दुभाषियों का संप्रदाय उत्पन्न कर देना है जो हमारे और असंख्य भारतीयों के बीच खड़ा हो, जो रूप-रक्त में तो भारतीय हो, पर रुचि, मत, नीति–सदाचार और बुद्धि में अंग्रेजी। उन लोगों के जिम्मे पश्चिमी भाषा

और ज्ञान की मदद से भारतीय लोगों और देशवासियों की तरक्की का काम छोड़ा जावे। †

निर्मित संस्थाओं को भले न तोड़ा जाये पर प्रोत्साहन देना व्यर्थ है।

सुझाये हुए परिवर्तन के बाद मैकाले ने, जिन व्यक्तियों की आर्थिक हानि हो सकती थी उनके बारे में उदारता बरतने का सुझाव रखा। जो अरबी संस्कृत कालेज या संस्थाएं कायम हो चुकी थीं उनको नष्ट करने पर उसने जोर नहीं दिया। हाँ, अंग्रेजी, फारसी किताबों का प्रकाशन एकदम भले बंद कर दिया जावे। छात्रवृत्ति जैसी रिश्वत इन अरुचिकर शिक्षाओं को पाने के लिए एकदम समाप्त हों। सारे देश में ऐसी संस्थाएं कायम कर दी जावें जिनमें अंग्रेजी ठीक और पूरी तरह से पढ़ाई जावे। यदि ये सुझाव नहीं माने गये तो मैकाले शिक्षा समिति से इस्तीफा देने को तैयार था। सउने फैसला दिया क्योंकि इस गलत ज्ञान का अंत सरकारी नीति के बल पर आगे भले बढ़ जाये पर रुकेगा नहीं। उसने इस बात को बार-बार दुहराया है कि सारा भारतीय ज्ञान झूठा है, असंभव है और उस पर सरकारी शिक्षा-समिति को पैसा नष्ट करने का

---

† I feel with them that it is impossible for us with our limited means to attempt to educate the body of the people. We must at present do our best to form a class who may be interpreters between us and the millions whom we govern, a class of persons, Indian in blood and colour but English in taste, in opinions, in morals and in intellect. To that class we may leave it to refine the vernacular dialects of the Country, to enrich these dialects with terms of science borrowed from the Western nomenclature, to render them by degrees fit vehicles for conveying knowledge to the great mass of population.

—Macaulay.

कोई हक नहीं, उस शिक्षा का कोई प्रयोजन नहीं, उसके पाने वाले विद्यार्थी जीवन भर बोझ हैं और बाद में भी भूखों मरने पर मजबूर हैं। *

मैकाले की राजनैतिक दूरदर्शिता : उसका परिणाम १९४७ की भारतीय स्वतंत्रता।

इस तरह एक ओर तो मैकाले ने अंग्रेजी की वकालत की तथा दूसरी ओर भारतीय-ज्ञान और साहित्य के ऊपर भयंकर जहर उगला। अंग्रेजी की वकालत पर अधिक आपत्ति भले न की जावे परन्तु भारतीय ज्ञान के जिस भ्रष्ट स्वरूप को उसने जाना था यह या तो उसके अज्ञान का सूचक है या उसकी भ्रष्ट बुद्धि और तर्क का। उसके ऐसे उद्गारों में राजा राममोहनराय इत्यादि के प्रमाण और सर्टिफिकेट जिम्मेवार जान पड़ते हैं। तथापि उसकी ये तमाम अतिशयोक्तियाँ काम कर गईं, इसमें

---

* I believe that the present system seeks not to accelerate the progress of truth but to delay the natural death of expiring errors. I conceive that we have at present no right to the respectable Board of publc instruction. We are a board for wasting the public money for printing books which are of less value than the paper on which they are printed while it was blank — for giving artificial encouragement to absurd history, absurd metaphysics, absurd physics, absurd theology–for raising up a breed of scholars who find their scholarship an incumbrance and blemish, who live on the public while they are receiving their education and whose education is so utterly useless to them that when they have received it, they must either starve or live on the public all the rest of their lives :—

—Macaulay.

शक नहीं। आज समय की इतनी दूरी पर शायद हम यह तो कह ही सकेंगे कि मैकाले में दूरदर्शिता खूब थी। उस दूरदर्शिता में सद्भावना किस सीमा तक थी और धूर्तता किस सीमा तक इसका निर्णय कठिन है। १५ अगस्त सन् १९४७ को लार्ड माउंटबैटन के नेतृत्व में भारत ने जो स्वराज्य पाया उसका पूरा खाका अंग्रेजी ढंग का ही है। न्याय पूर्वक हमें यह भी कहना पड़ेगा कि मैकाले ने भारत में अंग्रेजी के प्रति कुछ रुचि नहीं उत्पन्न की बल्कि जो लोग सरकारी नौकरियों के लोभ में उसे सीखने लगे थे उसे रुचि का रूप दिया। इस संबंध में अंग्रेजी पार्लिया-मेंट में जब सन् १८३३ के चार्टर कानून के ऊपर बहस चल रही थी तो साम्राज्यप्रिय लोगों ने भारतीय-स्वराज्य की माँग की आशंका और हानिकारक भविष्य का खतरा पेश किया। उस पर मैकाले ने करारा जवाब दिया। इस जवाब में उसकी सदाशयता की झलक है। उसके मतानुसार अंग्रेज-ड्यूटी का यह तकाजा है कि यह भारतीय साम्राज का भविष्य उज्ज्वल बनावें, भारत के सुधार और प्रगति को अपनी सिस्टम द्वारा संपन्न करें ताकि भारतीय इस हालत में पहुँचे कि उन्हें अपनी नीची हालत समझ आ जावे। "फिर उस हालत में सुधार कर जो, यूरोपीय ज्ञान के जरिये संभव होगा, यदि वे यूरोपीय संस्थाओं की मांग पेश करने लगें तो वह दिन जब भी वह आवे हमारे लिये सर्वश्रेष्ठ गौरव का दिन होगा। हमारे हाथ से राजदंड चला जावे, हमारी सारी नीतियाँ समाप्त हो जावें, हमारी सैन्य-शक्ति परास्त हो जावे, पर यह विजय जो शांति और विचार की विजय होगी हमारी सबसे मुस्तकिल और मुकम्मिल सल्तनत होगी, उसका अंत नहीं होगा, उसका ह्रास नहीं होगा"। *

---

* I have no fears. The path of duty is before us and is also the path of wisdom, of national prosperity, of national honour. The destinies of our Indian empire are covered with thick darkness. It is difficult to form any conjectures as to the fate reserved for a state which resembles no

प्रिंसेप की बेबसी और बेंटिंक की उस पर डांट।

मैकाले की इस धुआंधार वक्तृता को लार्ड विलियम बेंटिक, तत्कालीन गवर्नर जनरल ने पूर्णतः स्वीकार कर लिया। पर उसका प्रधान विरोधी था एच० टी० प्रिंसेप। प्रिंसेप ने उस मिनट के ऊपर अपने

---

other in history and which forms by itself a separate class of political phenomena. The laws which regulate its growth its decay are still unknown to us. It may be that the public mind of India may expand under our system, until it has outgrown that system, that by good Govt. we may educate our subjects into a capacity for better govt. that having become instructed in European knowledge they may in some future age demand European institutions. Whether such a day will even come I know not. But never will I attempt to avert or retard it. Whenever it comes it will be the proudest day in English History. To have found a great people sunk in the lowest depths of slavery, superstition, to have so ruled them as to have made them desirous capable of all the previleges of citizens would indeed be a tittle to glory all our own. The sceptre may pass away from us. Unforeseen accidents may derange our most profound schemes of policy. Victory may be in constant to our arms. But these are triumphs which are followed by no reverse. This is an empire exempt from all natural causes of decay. Those triumphs are the pacific triumphs of reason over barbarism, that Empire is the unperishable Empire of our arts, and our morals, lierature and our laws.

—Macaulay's speech in the House of commons.

विचार लिखे। वह शिक्षा विभाग का सेक्रेटरी था। गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बेंटिक ने इन विचारों को प्रस्तुत भी नहीं होने दिया— उन्होंने कहा कि सेक्रेटरी की यह हिमाकत बर्दाश्त नहीं की जा सकती कि वह खुद ही मेमोरेंडम लिखने लग जावे। उसे केवल वही लिखना चाहिये जो कि सरकार फैसला करती है। बात यह हुई कि लार्ड मैकाले ने जब अपना मिनट लार्ड बेंटिक को दे दिया तो जॉन कालविन नामके एक जूनियर सिविलयनने अंग्रेजी के आने की खुशी में वह बात गुप्त न रखी और खोल दी। इस बात के खुल जाने से भारतीय लोगों में अफ़वाह फैल गई कि कलकत्ता-मदरसा और संस्कृत कालेज बंद होने वाले हैं। लगभग तीस हजार आदमियों ने इसके विरोध में एक दस्तखती अर्जी दी। मैकाले हैरान हुआ और उसने प्रिंसेप को यह भेद खोलने का दोषी ठहराया। भेद खोलने वाला प्रिंसेप न था, दरअसल इसका जिम्मा कालविन पर ही था। अस्तु प्रिंसेप का नोट कभी सरकार के सामने नहीं रखा गया तो भी उस पर हाशिये में मैकाले ने अपनी टिप्पणियां लिख रखी थीं। प्रिंसेप ने अपनी इस तौहीन का जिक्र अपनी डायरी में किया है।

जेम्स प्रिंसेप (१७९९–१८४०)

पूर्ववादी दल पराजित : बेंटिक का प्रस्ताव १८३५

प्रिंसेप की टिप्पणियाँ १५ फरवरी १८३५ को लिखी गईं और लार्ड विलियम बेंटिक का प्रस्ताव ७ मार्च १९३५ को प्रकाशित हो गया जिसमें मैकाले के सुझाव अधिकांशतः मान लिये गये। उस प्रस्ताव की चार धाराएं थीं।

(१) सारा सरकारी कोष केवल अंग्रेजी शिक्षा पर ही व्यय किया जावेगा। अंग्रेज सरकार का उद्देश्य तभी पूरा होगा।

(२) सरकार अभी तक की स्थापित भारतीय ज्ञान की किसी संस्था को बंद नहीं करना चाहती ताकि जो उस शिक्षा को पसंद करते हैं उन्हें वह उपलब्ध हो सके। वहाँ के तमाम अध्यापकों और विद्यार्थियों को वेतन या छात्रवृत्ति मिलती जावेगी पर आयंदा भरती होने वालों को नहीं मिलेगी।

(३) पूर्वी ग्रन्थों के प्रकाशन पर अब कोई पैसा खर्च न होगा।

(४) सारा कोष अंग्रेजी शिक्षा, और विज्ञानों को अंग्रेजी भाषा के माध्यम के द्वारा पढ़ाने में खर्च किया जावेगा।

इस तरह पूर्ववादी दल की पराजय मैकाले के माध्यम से पूर्णतः हो गई और सन् १८३५ के बाद की सारी घटनाएँ अंग्रेजी के नित्य प्रसार और संवर्धन का इतिहास हैं।

"डाउनवर्ड फिल्ट्रेशन थियरी" ऊर्ध्वमूलमधःशाखम् है और अप्राकृतिक है।

प्रिंसेप की टिप्पणियां केवल सैद्धांतिक विचार विनिमय की सामग्री रह गई हैं जिनका हम संक्षेप में उल्लेख कर देते हैं:—मैकाले ने दुभाषिया संप्रदाय खड़ा करने का जो सिद्धांत प्रतिपादित किया है और उससे सारे देश को शिक्षित बनाने का जो सिद्धांत है उसे डाउनवर्ड फिल्ट्रेशन थियरी (Downward Filtration Theory) कहते हैं। हमें स्मरण है कि लार्ड विलियम बेंटिक की प्रेरणा से एडम नाम

के स्कॉलर मिशनरी ने भारतीय शिक्षा प्रणाली का अनुशीलन किया तथा सार्वजनिक शिक्षा का समर्थन किया। उसका कहना था कि आखिर हिन्दू और मुस्लिम इतिहास ने भी तो शिक्षा दी और उत्कर्षकारी संस्थाएं कायम रखीं। उन सभी को एकदम बंद कर अपना हरएक बातों में ऋणी बनाना न तो व्यावहारिक है और न प्रियकर ही। उसने कहा कि ज्ञान की धारा के यदि अधोगामी होने का तथ्य सच है ऊर्ध्वगामी होने का नहीं तो सबसे पहले एक ब्रह्मांड विश्वविद्यालय कायम होना चाहिये जिसमें राष्ट्रीय विश्वविद्यालय फूटें, राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों से प्रांतीय कालेज बनें और प्रांतीय कालेजों से जिला-कालेजों की रचना हो, फिर परगनों की फिर गांवों की। अमल में बात यह नहीं है। सुधार व्यक्ति से प्रारम्भ होता है फिर समाज में जाता है और जो व्यक्ति समाज को प्रेरणा देते हैं वे निस्संदेह उच्च वर्ग में होते हैं, विचारशील वर्ग में, पर भारत में यह विचारशील वर्ग न तो धनी ही हैं और न मानी हो। सचमुच में किसी उच्च स्टेज की शिक्षा की परिपक्वता निम्न स्टेजों की शिक्षा के द्वारा प्रस्तुत किये गये शिक्षार्थियों पर निर्भर रहती है अतः निम्न स्टेज सबसे अधिक ध्यान देने की चीज़ है। बालक वर्णमाला सीखने के लिए कालेजों में तो नहीं भेजे जा सकते। अर्थात् अट्टालिका को सुदृढ़ बनाने के लिए नींव को गहरी और मजबूत बनाना होगा मतलब कि शिक्षा और अध्यापन की प्रत्येक सीढ़ीयां समन्वित रूप से प्रभावशाली बनाई जावे। मैकाले की नीति इस सत्य की ओर उदासीन है। एडम की उस युग में कही हुई बात सार्वभौमिक सत्य है और आज तक सत्य चली जा रही है।

सार्वजनिक-शिक्षा ही बुनियाद है,—वर्ग-शिक्षा नहीं।

† इसी तरह एडम भारतीय संस्थाओं की बुनियादी जरूरत का पूरा

---

† All schemes for the improvement of Education therefore to be efficient and permanent should be based upon

हामी था। भले ही उनकी हालत जीर्ण हो गई हो, प्रगति स्थिर हो, या पश्चात्गामी हो तो भी सच्ची बुनियाद उसी में है और उसी के आधार पर, अट्टालिका का निर्माण करना होगा। हम अट्टालिका के स्वरूप को बदलें, बदल सकते हैं, पर यह मानना होगा कि ये संस्थाएं सबकी सब सनातन से समयानुकूल रीति-रिवाजों, रहन-सहन और लोक-रीति से मिलान करती हुई आई हैं। उनमें आस्था कायम कर हमें सुधार करना व्यावहारिक जान पड़ता है।

प्रिसेप द्वारा आलोचना : एक लाख वाली सरकारी रकम ब्रिटिश की आक्सफर्ड कॅम्ब्रिज के एंडाउमेंट फंड्स की नाई है : उसमें सरकार हस्तक्षेप नहीं कर सकती।

अब हम प्रिंसेप के विरोध की रूपरेखा देखें— (१) उसका कहना है कि अंग्रेजी पार्लियामेंट ने जब 'शिक्षित भारतीयों' का उपयोग किया तो उसका मतलब भारतीय ज्ञान में शिक्षित भारतीयों से ही था। मैकाले शब्दों को प्रसंग से बाहर घसीट रहे हैं। † (२) मिस्र के पाशा का जो उदाहरण दिया उसी से स्पष्ट है कि 'साहित्य का जीर्णोद्धार और

† मैंने विशेषज्ञ सर. ई. रायन का मत ले लिया है जो प्रिंसेप के अर्थ के विपरीत है— टी० बी० एम०—

---

the existing institutions of the country; transmitted from time immemorial, familiar to the conceptions of the people and inspiring them with respect and veneration. To labour successfully for them we must labour with them; and to labour successfully with them, we must get them to labour willingly and intelligently with us, we must make them in short, instruments of their own improvement, and how can this be done but by identifying ourselves and our improvements with them and their institutions. —Adam's Report

प्रसार' --उस साहित्य से सम्बद्ध है जो कि प्रोत्साहन के अभाव में नष्ट हो रहा था, और ऐसा साहित्य अंग्रेजी साहित्य नहीं हो सकता वह तो संस्कृत और अरबी साहित्य ही है। मिस्र का पाशा भी इसी अभिप्राय से पैसा मंजूर करता, (३) सरकार की वचन-बद्धता की बात भारतीय संस्थाओं के कोष के बारे में नहीं उठती क्योंकि ये सब धर्मादि के कोष से चलती हैं जिसे वारेन हेस्टिंग्ज ने स्वयं व्यवस्थित कर दिया था। इनसे सम्बद्ध सारा कोष उसी प्रकार सरकार के हस्तक्षेप से बरी है जिस प्रकार कि ऑक्सफर्ड या केंब्रिज के एंडाउमेंट फंड्स। उसी तरह एक लाख रुपयों की भी बात है जो सरकार की ओर का दान है। सरकार ये संस्था किस प्रकार की शिक्षा देती है इस पर अपना विषपूर्ण मत नहीं दे सकती। ऐसा मत प्रदर्शन विश्वविद्यालयों के स्वत्व पर हस्तक्षेप करना है। सरकार के स्थायी कार्यों और अस्थायी कार्यों के बीच का भेद समझना चाहिये ताकि सरकार की ढुलमुलयकीनी ही लोगों के मन में स्थायी रूप से न बैठ जावे। कलकत्ता मदरसा कोई कानून नहीं जिसे चाहे जब बदल दिया जा सके, वह संस्था है। इस मदरसे का उतने ही स्थायित्व का दावा है जितना कि इंग्लैंड की संस्थाएं करती हैं। (४) संस्कृत, अरबी पढ़ने वालों को दी जाने वाली छात्रवृत्तियोंको रिश्वत नहीं कहा जा सकता क्योंकि वे सफलतापूर्वक संपन्नता लाभ करने के परिश्रम का पारिश्रमिक हैं, ताकि और भी प्रेरणा प्राप्त हो, ऐसी छात्रवृत्तियाँ सर्वत्र इंग्लैंड में भी दी जाती हैं। मदरसे में कुल ३०० विद्यार्थी पढ़ते हैं पर छात्रवृत्तियाँ केवल ८० ही हैं। अंग्रेजी पढ़ने के लिए भी तो मदरसे में छात्रवृत्तियां हैं तो क्या वे रिश्वत हुईं? मौलवी और पंडित लोग शिक्षा देने की कीमत या भाड़ा लेना पाप समझते हैं इस लिए वे कुछ पैसा नहीं वसूल करते। अंग्रेजी शाला में में जो १०३) रु० तीन महीनों में वसूल किये गये वह प्रेरणा ही दूसरी है, बल्कि ताज्जुब तो यह है कि कितना कम वसूल हुआ? (५) मैकाले ने जिस अर्जी का उल्लेख किया है उसमें किसी विद्यार्थी ने यह तो नहीं कहा कि इस शिक्षा के कारण वे भूखों मरने लगे बल्कि यही कहा है कि उनके पास ये विशेषताएं हैं उनका उपयोग किया जावे। (६) यह कि पूर्ववादी दल

और भारतीय लोग पश्चिम की साइंसों के विरोधी हैं गलत है । क्योंकि यह माना गया है कि वे पश्चिम की साइंसों का अध्ययन करने के लिए अत्यधिक लालायित हैं और जरूर उसका अर्जन कर सकते हैं । (७) हमारी किताबों का प्रकाशन और उनकी कीमत इतनी भद्दी और अधिक है कि यदि वे मुनाफा न दे सकीं तो क्या ताज्जुब ? जिस लाभ-कारी प्राइवेट व्यापारी संस्था के लाभ का उल्लेख किया गया है वह सब व्यापारिक गंदगी की चीज है । (७) कानून के अध्ययन के लिए वे भाषायें इसलिये जरूरी हैं कि वे कानून अभी तक भारत में व्यवहार में * आ रहे हैं ।

प्रिंसेप की वकालत ने फिर भी लार्ड मैकाले की अतिशयोक्तियों को उग्रता को कम किया जोकि लार्ड विलियम बैंटिक के प्रस्ताव में प्रतिलक्षित होती हैं । प्राचीन संस्थाओं को चलने देने की बात शायद इसी का परिणाम है । पूर्ववाद और पश्चिमवाद के द्वंद्व की इतिश्री यहीं होती है और भारत की शिक्षा नई करवट लेती है ।

लार्ड हार्डिंज का सरकारी नौकरी विषयक प्रस्ताव १८४४

सन्.१८३३ से लेकर सन् १८५४ के वुड के डिस्पैच के बीच इस द्वंद्व का बोलबाला रहा और अंत में वह शांत भी हो गया । हां सन् १८४४ की १० अक्टूबर को लार्ड हार्डिजके प्रस्ताव के द्वारा भारतीयोंको सरकारी नौकरी पाने की सुविधा दो गई । जिन उम्मीदवारों ने शिक्षा संस्थाओं में शिक्षा पाई है उनकी पूरी योग्यताओं का खानेवार वर्णन सरकार को दिये जाने की आज्ञा दी गई ताकि वे नौकरी में लगाये जा सकें । प्राइवेट संस्थाएं भी ऐसे ही वार्षिक रिटर्न सरकार के पास भेजें तथा प्रत्येक नियुक्ति शिक्षात्मक योग्यता के ही आधार पर हो । जहां नियुक्ति न की जा सके वहां निश्चित कारण और तर्क नोट किये जावे । इस तरह २५ अक्टूबर १८४५ को कलकत्ता-

---

* इसीलिये तो ये नहीं पढ़ाना चाहिये क्योंकि आगामी दस वर्षों में तो हमारा निश्चय है हम ये सब व्यवहार बदल देंगे— टी० बी० एम०—

विश्वविद्यालय की बुनियाद डालने की एक योजना सरकार की ओर से पेश की गई।

यों तो इस योजना का प्रस्ताव २५ अक्टूबर १८४५ को किया गया जबकि लार्ड विलियम बेंटिंक का हुक्म लार्ड मैकाले द्वारा वकालत की हुई नीति को लगभग दस वर्ष तक कार्यान्वित कर चुका था। इस सुझाव को भारत सरकार की शिक्षा समिति ने कम्पनी के डायरेक्टरों के सामने रखा, परन्तु उसके ऊपर ध्यान लगभग दस वर्ष तक और न दिया गया। सन् १८५४ में जो कम्पनी ने 'वुड का डिस्पैच' नामक पत्रक भेजा तभी उसमें उस सुझाव को कार्यान्वित करने की मंशा प्रकट की गई। तो भी भारत सरकार ने १२ दिसम्बर सन् १८५६ के दिन कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास में यूनिवर्सिटियाँ बनाने के वास्ते प्रस्ताव पास किया तथा वे बनाई भी गईं।

यूनिवर्सिटियों के प्रस्ताव सन् १८५४ : प्रमाणपत्र और सम्मानार्थ डिग्रियां देना उद्देश्य था।

उपर्युक्त सुझाव ने बंगाल प्रांत की उन्नत शिक्षा की दशा को देखा। इस प्रगति में सरकारी और प्राइवेट संस्थाओं ने समान रूप से योग दिया था। अतः निश्चय किया गया कि उनमें से पास विद्यार्थियों को उनके पांडित्य का कोई प्रमाण-पत्र सनद रूप में दिया जावे ताकि अपनी साहित्यिक और वैज्ञानिक शिक्षा से मस्तिष्क को समुन्नत बनाने के उपलक्ष में वे जीवन में प्रवेश कर सकें, विद्वतापूर्ण व्यवसाय कर सकें, नवीन पीढ़ी को शिक्षा दे सकें तथा उच्च सरकारी पदों पर भी नियुक्त हो सकें। साथ ही यूरोप प्रभृति देशों में ऐसा सम्मान प्राप्त करने वाले लोगों के साथ हमारे स्नातक भी समान सतह पर खड़े हो सकें।

आधार : लन्दन यूनिवर्सिटी

इस उद्देश्य की पूर्ति एक ऐसी केन्द्रीय यूनिवर्सिटी का निर्माण करके ही हो सकती जो आर्ट्स, साइंस, कानून, मेडिसन, इंजीनियरिंग इत्यादि की डिग्रियां देने में समर्थ हो तथा कानूनन इन तमाम सम्मानों की पात्र

बनाई जावे जो ग्रेट ब्रिटेन और आयर्लैंड की यूनिवर्सिटियों को प्राप्त हैं। इस हेतु ऑक्सफर्ड, केंब्रिज और लंदन जैसी यूनिवर्सिटियों का अनुशीलन करने पर लंदन को ही आदर्श मानना भारत की परिस्थितियों में श्रेयस्कर हुआ। लंदन यूनिवर्सिटी का निर्माण महारानी विक्टोरिया के राज्य के प्रथम वर्ष में ५ दिसम्बर को एक शाही मुहर की आज्ञा से हुआ तथा उसमें चांसलर, वाइस चांसलर, फैलो, सेनेट इत्यादि पदाधिकारियों और संघों का जन्म हुआ जो उपरोक्त डिग्रियां देते। बस इसी आधार पर कलकत्ता यूनिवर्सिटी की रचना की जावे।

लाभों की कल्पनाएं : —

इस तरीके से संस्थाओं में जिन विद्यार्थियोंने परिश्रम और ध्यान लगाकर ज्ञानार्जन किया है उन्हें तदनुकूल सामाजिक सम्मान तथा जीविका के साधन उपलब्ध हो जावेंगे। सरकारी नौकरियों के लिए भी समुचित योग्यताओं वाले उम्मीदवार प्राप्त होंगे जो चरित्र, सामर्थ्य और योग्यता में अपने पूर्वजों से बढ़कर होंगे। कलाओं और साइंसों का विकास होगा, कलाकार, इंजीनियर, शिक्षित जमींदार इत्यादि लोगों का सुरुचिपूर्ण, सुसंस्कृत ओर बुद्धिवादी समुदाय संगठित होकर पश्चिम की रीतियों को गले लगाकर अपमानजनक भारतीय पद्धतियों को अशक्त बनायेगा अथवा उन्हें नष्ट कर देगा। इस प्रकार ज्ञान, सभ्यता, संस्कृति का श्रेष्ठतम विकास होगा जो शिक्षा में सम्मान और पारितोषकों के आधार पर सर्वत्र समुन्नत होता आया है। एक फी-कोष स्थापित कर लिया जावेगा जिससे यूनिवर्सिटी का खर्च निकल सकेगा तथा सरकार के ऊपर और आर्थिक बोझ न आवेगा। ऐसी एक यूनिवर्सिटी कायम कर लेने से शिक्षा विभाग की इज्जत लोगों की तथा दुनिया की निगाह में बढ़ जावेगी और पश्चिम के देशों में उसे समान सम्मान प्राप्त होगा।

दरअसल देखा जाये तो जिस योग्यता का परिचय शिक्षा-समिति की विभिन्न परीक्षाओं में हमारे विद्यार्थियों ने दिया उससे उन्होंने सोचा

यह सिद्ध है कि ऐसी सम्मानदायिनी संस्था का हम निर्माण करें। यही समय है जब ऐसा किया जावे। यहाँ के मेडीकल कालेजों की परीक्षाओं का स्टैंडर्ड कठिनाई और विस्तार की दृष्टि से ग्रेट ब्रिटेन के कालेज आफ सर्जन से भी बहुत ऊंची कोटि का हुआ तथा वहां के मेडिकल ग्रेजुयेटों की बराबरी यहाँ के ग्रेजुयेट बखुशी कर रहे थे।

आगे जब हम १८५४ का डिस्पैच पढ़ेंगे तो देखेंगे कि दस वर्ष बाद इन तमाम मतों का समर्थन और स्वीकार कम्पनी के डायरेक्टरों ने लगभग इन्हीं शब्दों में जहां तक यूनिवर्सिटी शिक्षा का सम्बन्ध है, पूर्णतः किया है।

अभी तक के इतिहास में हमें यह क्रम स्पष्ट दिखता है (१) एडम, मनरो और एलिफिस्टन प्रभृति के प्राथमिक, देशीशिक्षा के मापजोख तथा संवर्धन के प्रयत्न। (२) १८१३ के चार्टर के एक लाख के व्यय में मनरो, वारेन, हेस्टिंग्ज इत्यादि का पूर्ववादी प्रयास, कलकत्ता मदरसा, बनारस संस्कृत कालेज इत्यादि। (३) मिशनरियों की देश-भाषाओं में कार्यवाहियां तथा मैकाले की डाउनवर्ड फिल्ट्रेशन थ्योरी का उद्गम, अर्थात् उच्च शिक्षा पर जोर (४) अन्ततः यूनिवर्सिटी कायम करने की आवश्यकता आगे वुड के डिस्पैच में शिक्षा की सभी स्टेजों और प्रणालियों का समन्वय किया गया है तथा शिक्षा विभाग का शासकीय संगठन भी सुचारु ढंग से सम्पन्न किया गया, जो इस क्रमिक विकास को समुन्नत तथा कानूनी स्वरूप प्राप्त कराता है।

युनिवर्सिटी प्रश्न

(१) मैकाले के मिनिट का समीक्षात्मक मूल्यांकन करो । (१९४९, १९४०)

(२) पाश्चात्य शिक्षा विषयक पूर्ववादियों और पश्चिमवादियों के मतभेद की मुख्य दलीलें संक्षेप में लिखो ? क्या पाश्चात्य शिक्षा टाली जा सकती थी ? सकारण उत्तर दो । (१९३९)

(३) सद्य कालीन राजनैतिक घटनाओं के प्रकाश में मैकाले के शिक्षा विषयक मिनिट का मूल्यांकन करो । (१९३५)

(४) बहस करो:—

"हमें भारतीयों को कोई विदेशी भाषा पढ़ाना चाहिये । और इसमें हमारी अपनी भाषा के दावों का स्मरण कराने की जरूरत नहीं है"—मैकाले का मिनिट (१९३८)

(५) पूर्ववादियों और पश्चिमवादियों के बीच जो मतभेद चलता रहा उसकी क्या परिस्थितियां थीं ? यदि पूर्ववादी विजयी हो जाते तो भारतीय शिक्षा का क्या रूप होता । (१९४७)

(६) राजा राममोहन राय, मैकाले और आधुनिक शिक्षा शास्त्रियों के मतों का भेद बताते हुए शिक्षा के माध्यम के प्रश्न पर लगभग ५० पंक्तियों में एक लेख लिखो ।

इस प्रश्न का संतोषजनक हल निकालने के लिये मार्ग की प्रधान कठिनाइयों का संक्षेप में वर्णन करो । (१९४२)

अध्याय ४

१८५४-डायरेक्टरों का शिक्षा-पत्रक

महत्वपूर्ण और संपूर्ण चिट्ठा : अफसरी-मिशनरी मनोमालिन्य का अन्त ।

१९ जुलाई १८५४ को एक सौ धाराओं का लम्बा किन्तु सम्पूर्ण चिट्ठा ईस्ट इंडिया कम्पनी के डायरेक्टरों ने भारत के गवर्नर जनरल के पास भेजा । इन सौ धाराओं में शिक्षा की अद्यावधि शिक्षा का पूर्ण सिंहावलोकन, उसकी समीक्षा, निंदा-स्तुति तथा भावी कार्यक्रमों की योजना एवं नीतियों का शिक्षात्मक, शासकीय और कानूनी स्पष्टीकरण है । सिस्टम की दृष्टि से यह पत्रक अभी तक वर्णन किये हुए समस्त कागजों, व्यक्तियों अथवा कार्यक्रमों से महत्वपूर्ण है । इसे भारतीय शिक्षा का चार्टर भी कहा गया है । इसकी सौ धाराओं ने सारे भारत की शिक्षा का एक सम्पूर्ण चित्र खींचा है । बात यह थी कि १८३३ से लेकर १८५४ के बीच पाठशालायें विशेषतः मिशनरियों द्वारा संचालित कालेज और स्कूल तीनों प्रांतों में खुल गये थे । इनके और कंपनी के अफसरों के बीच के आपसी सम्बन्ध भी खूब ही अच्छे थे । सन् १७९३ और १८१३ के बीच का अफसर मिशनरी मनोमालिन्य अब लगभग सौहार्द्र बन गया था, क्योंकि सन् १८३३ के चार्टर ने यूरोपीय और अमरीकी मिशनरियों को समान रूप से भारत में शिक्षा प्रसार की आजादी दे दी थी । कहा जाता है कि मशहूर मिशनरी एलेक्जेंडर डफ़, जब यह डिस्पैच लिखा जा रहा था इंग्लैंड में ही था और उसने उसके मजमून में बड़ी मदद भी की थी । आम तौर से इस पत्रक को 'वुड का पत्रक' कहते हैं क्योंकि इसके लिखे जाने में कंपनी के डायरेक्टरों के प्रेसीडेन्ट वुड की प्रेरणा पूर्णतः विद्यमान थी । इसकी सौ धाराओं का अलग अलग विवेचन अनावश्यक है अतः आपस में और भी संबंध रखने वाली धाराओ को हम मिला देंगे और कुछ काट छांट कर देंगे ताकि उसका स्पष्ट और पूरा रूप न टूटे ।

सरकारी नौकरी और अंग्रेजी माल का मार्केट रहे ।

डायरेक्टर लोग चाहते थे कि भारत की प्रजा का बौद्धिक और नैतिक स्तर इतना उच्च हो जावे कि उन्हें विश्वास के कामों के लिए सुयोग्य कर्मचारी काफी परिमाण में मिल सकें । उनकी सचाई और सुयोग्यता पर ही सरकार के विभिन्न मुहकमों का सुचारु संचालन निर्भर रहता है । वैसे तो अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव और प्रसार के फलस्वरूप उनके अपराधी और निम्न तत्वों का शेष होना शुरू हो गया है तो भी प्रस्तुत शिक्षा की कमियों को पूरा कर उन्हें व्यवसाय और संपन्नताजन्य समस्त लाभ उपलब्ध कराये जावें । उसी तरह अंग्रेजी कल कारखानों द्वारा बनाये हुए समस्त पदार्थ निरन्तर उन्हें प्राप्त हों जिनसे अंग्रेजी मजदूरी से बने हुए सामान का मार्केट कभी कम न हो पावे ।

अन्ततः देश-भाषाओं को पुष्ट बनाने में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीय ही समर्थ होंगे :

कहना न होगा कि शिक्षा का उद्देश्य यूरोपीय ज्ञान का प्रसार है । पत्रक कहता है कि एशियाई ज्ञान कितना ही प्रसृत क्यों न हो हमारी उद्देश्य पूर्ति न कर सकेगा । यों हम संस्कृत, अरबी की शिक्षा की विशिष्ट संस्थाओं में प्राप्त अवसरों की संख्या का परिमाण न्यून न करना चाहेंगे । उनका ऐतिहासिक और पुरातत्व की दृष्टि से महत्व है तथा हिन्दू मुस्लिम कानून के अध्ययन के भी वे साधन हैं । उन्हीं के ज़रिये इधर भारत की लोक-भाषाओं का सुधार एवं आलोचनात्मक विकास हो सकेगा । पौर्वात्य अन्वेषण की खोजों का आदर करते हुए उन्होंने चाहा है कि हिन्दू दर्शन में अधिक तर्क-संगत सदाचार एवं उन्नत साइंस की कलमें भी लगाई जावें । भारतीयों ने यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में निस्संदेह बड़ी कुशलता प्राप्त की है तो भी उनकी संख्या बहुत कम है इसलिये उसका और भी विस्तार होना चाहिये । एतदर्थ ऐसे सभी व्यक्तियों के लिये अंग्रेजी भाषा का माध्यम अनिवार्य हो । पत्रक ने कहा कि ऐसे

प्रेसीडेंसी नगरों में जहाँ साधारण अंग्रेजी बोलने और लिखने की योग्यता नौकरी-प्राप्ति में साधक हुई है, लोगों ने देश-भाषाओं के साथ लापरवाही का व्यवहार किया है। "देश-भाषाओं के स्थान पर अंग्रेजी को स्थापित कर देना हमारी इच्छा नहीं है क्योंकि अधिकांश जन-समुदाय तो इन्हीं देश-भाषाओं को समझता तथा उनके जरिये ही यूरोपीय ज्ञान प्राप्त कर सकता है।" अतः इन देश-भाषाओं को भी सार्वजनिक शिक्षा का माध्यम बनाना उचित कहा गया। यह बात अलग है कि श्रेष्ठ शिक्षा का सर्वोत्कृष्ट माध्यम अभी भी अंग्रेजी चलती जावे। बाद में इन देश-भाषाओं के साहित्य का संवर्धन और विकास मौलिक यूरोपियन पुस्तकों के अनुवादों द्वारा होवे जिन्हें पश्चिमी ज्ञान और अंग्रेजी भाषा में दक्ष भारतीय ही लिखें।

शिक्षा की विशुद्ध सरकारी मशीनरी स्थापित होना आवश्यक !

शिक्षा के संचालन और निरीक्षण के हेतु आवश्यक मशीनरी बनाना उचित है। बंगाल, मद्रास और बंबई में यह काम शिक्षा-समिति या बोर्ड करते थे। अंग्रेज और भारतीय सदस्य केवल शिक्षा, संस्कृति प्रसार और सुधार मात्र की भावना से कार्य करते। परन्तु अब इसके अतिरिक्त भी कुछ वेतन जैसा पारितोषक उपलब्ध होना चाहिये और अधिक सिस्टम पूर्वक। कहा गया कि शिक्षा का एक ऐसा शासकीय विभाग संगठित किया जावे जो अन्य विभागों जैसा ही हो। "अतः प्रत्येक प्रान्त में एक शिक्षा-अफसर नियुक्त किया जावे जो शिक्षा सम्बन्धी व्यवस्था के लिए सीधा सरकार के प्रति उत्तरदायी हो।" निरीक्षण की प्रणाली में भी सुधार किया जावे तथा उसके निरीक्षकों की संख्या बढ़े। इनकी नियुक्ति में उच्च चरित्र और न्यायप्रिय व्यक्तियों को ही चुना जावे। वे सरकारी अथवा प्राइवेट संस्थाओं के ऊपर समय समय पर रिपोर्ट सरकार के सामने पेश करें। कालेजों और स्कूलों की व्यवस्था में वे हाथ बंटाकर परीक्षाओं का भी संचालन करें। उपयुक्त बाबू लोग भी भर्ती किये जावें तथा आंकड़ों में रिटर्न आदि बाकायदा तैयार किये जावें। शिक्षा विभाग के उच्चाधि-

कारियों, इंस्पेक्टरों तथा अन्य अफसरों की नियुक्ति अच्छे वेतन–मान पर की जावे ताकि उनके महत्वपूर्ण कर्तव्यों का सही सही मूल्यांकन हो। निजी योग्यता के सिवाय ये व्यक्ति भारतीयों में लोकप्रिय भी होवें । प्रारम्भ में भले अपनी सिविल सर्विस के ही कुछ व्यक्तियों को इन पदों पर रखा जावे पर यह कोई नियम नहीं बनना चाहिये ।

विश्वविद्यालय संगठित करने की स्वीकृति और रूपरेखा प्रस्तुत हुई । वे परीक्षक-मात्र होंगे ।

इसके बाद डिस्पैच ने भावी कार्यवाहियों का सामान्य खाका खींचा है कि जिससे विभिन्न प्रांतों में चलने वाली शिक्षाओं तथा पद्धतियों में सापेक्षत: अधिक एकरूपता का संचार हो सके। परन्तु एकरूपता स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार बहु-रूपिणी होकर स्थानीय अधिकारियों के हाथ रहेगी । अर्थात् स्थानीय भावनाओं और वातावरण का पूर्ण समादर किया जावेगा। एतदर्थ सन् १८४५ में भेजी हुई कलकत्ता यूनिवर्सिटी योजना के सुझाव को डायरेक्टरों ने पूर्णत: स्वीकार कर लिया। उसके लिए लंदन यूनिवर्सिटी को ही अपना आदर्श मान स्थानीय हेरफेर करना भले जरूरी होगा । ये यूनिवर्सिटियां प्रांत की राजधानियों में गठी जावें । वे नियम–विहित संबद्ध समस्त संस्थाओं द्वारा भेजे हुए उम्मीदवार परीक्षार्थियों को प्रमाण-पत्र तथा डिग्री देंगी। संबद्ध संस्थायें प्रत्येक उम्मीदवार को सुचरित्र का तथा पाठ्य-क्रम के अध्यापन में नियमित उपस्थिति का जब प्रमाण पत्र देंगी तब वे परीक्षाओं में बैठ सकेंगे। यूनिवर्सिटियों में उपस्थिति को वैकल्पिक बनाने की भी योजना निकाली जावेगी। डिग्री की परीक्षाओं में यूनिवर्सिटियां धर्म-शिक्षा की ओर कोई ध्यान न देंगी और समान रूप से ईसाई, हिन्दू, मुस्लिम, पारसी, सिख, बौद्ध और जैनों द्वारा संचालित शाला संस्थाओं को मान्यता तथा संबद्धता प्रदान करेंगी। परीक्षाओं के बारीक नियम उप-नियम सभी संबद्ध संस्थाओं की कोटियों को ध्यान में रखकर बनाये जावें तथा डिग्री का

स्टैंडर्ड विवेकपूर्वक निर्धारित होगा। वह स्टैंडर्ड सम्माननीय और सामान्यतः सुलभ तो हो परन्तु उच्च बुद्धि वाले विद्यार्थियों को किसी प्रकार निरुत्साहित न करें। अर्थात् उसे इतना कठिन और ऊंचा न बना दिया जावे कि सहज-साधारण परीक्षार्थी पास न करे और न इतना सरल हीं हो कि उसकी समाज तथा देश विदेश में कोई कद्र न रहे। कानून, इंजीनियरिंग, संस्कृत, फारसी इत्यादि विषयों में विशिष्ट प्रोफेसरी कायम की जावें ताकि ऊंची रिसर्च और खोजों के वे साधन उपलब्ध हो सकें जो अब के भारतवर्ष में मौजूद नहीं हैं। संस्कृत इत्यादि में खोज करने वाले प्रोफेसरों का ध्यान उनकी व्याकरण इत्यादि के उन नियमों की ओर खास तौर से दिलाया जावे जो कि बोल-चाल की भाषा में देश में व्यवहृत होते हैं। अतः कम्पनी की धार्मिक तटस्थता की नीति को ध्यान में रखते हुए इन पंडितों को बताया गया कि हिन्दू-मुस्लिम धर्म के अतिरिक्त भी कार्य-क्षेत्र है कि जिसके अध्ययन और अध्यापन को कंपनी प्रोत्साहित कर सकेगी। कलकत्ता और बम्बई में जो शिक्षा समितियां हैं अस्थायी रूप से यूनिवर्सिटियों की सीनेट इत्यादि वे ही बना दी जावें तथा शिक्षा की विभिन्न प्रणालियों के प्रतिनिधियों को भी लेकर उसमें सदस्यों की संख्या बढ़ा दी जावेगी। इसके लिए भारत की धारा सभाएं स्वयं अपने अपने कानून बनावेंगी। इस तरह यूनिवर्सिटियों का अभी प्रधान कार्य-क्षेत्र अन्यत्र दी हुई शिक्षाओं का मूल्यांकन मात्र होगा।

सरकारी संस्थाएं केवल मार्ग-प्रदर्शन का हेतु रखेंगी।

अब रही यूनिवर्सिटियों से संबद्ध विभिन्न संस्थाओं, स्कूलों और कालेजों की बात कि जो इनके लिए परीक्षार्थी प्रस्तुत करेंगे। इन संबद्ध संस्थाओं का निरीक्षण समय समय पर यूनिवर्सिटी इंस्पेक्टर किया करेंगे। सम्माननीय प्रतिद्वंद्वता की भावना तथा सुसम्पन्न कर्तृत्वशीलता को इससे प्रोत्साहन मिलेगा, साथ ही यूनिवर्सिटियों के उच्च पारितोषकों के लिए श्रेष्ठतम परीक्षार्थियों में भी स्वस्थ चढ़ाबढ़ी की प्रेरणा बनी

रहेगी। नीचेदर्जे के स्कूलों में उत्तमोत्तम छात्रों के वास्ते छात्रवृत्तियां रखी जावेंगी। एंग्लो वर्नाक्यूलर कालेजों में देश–भाषाओं के हेतु तथा भारतीय कालेजों में अंग्रेजी एवं देश-भाषाओं के हेतु अध्ययन की पर्याप्त सुविधाएं प्रस्तुत रहेंगी। इस तरह भारत की शिक्षा का जो प्रधान उद्देश्य यूरोपीय ज्ञान का प्रसार है वह अंग्रेजी और देश भाषाओं के अध्ययन के साधन से सम्पन्न हो सकेगा। असल में सारे देश का बौद्धिक और शैक्ष–णिक धरातल हमें ऊंचा करना है ऐसा पत्रक ने स्पष्टतः कहा–अभी तक उच्च शिक्षा की संस्थाओं को इस हेतु ही अपने कोष से मदद देकर संचा-लित और व्यवस्थित किया गया था। परन्तु इन संस्थाओं का संचालन तथा उदार शिक्षा-दान की व्यवस्था के तरीकों का यह मार्ग प्रदर्शन मात्र था कि जो सार्वजनिक कोषों से व्यवस्थित हो सकते हैं। डायरेक्टरों ने आश्वासन दिया कि वे इस दिशा में अधिक से अधिक जाना भी चाहेंगे। इसके अतिरिक्त उन्होंने कहा कि अब इस उपयोगी शिक्षा को जन-साधारण में भी पहुँचाना होगा : सुचारु और उत्तम ढंग से। इसकी अभी तक उपेक्षा थी इसलिए जन-साधारण की उस असहाय असमर्थता को जिसके कारण वे इस उपयोगी ज्ञान से वंचित थे सरकारी व्यय से और सहायता से दूर करने का पत्रक ने वचन दिया।

प्रत्येक जिले में उपयोगी शिक्षा के प्रसारार्थ शालाएं खुलें। देश–भाषाओं की और एंग्लो वर्नाक्युलर शालाओं को समान सम्मान और प्रोत्साहन दिया जावे।

अतः भारत के प्रत्येक जिले में ऐसे स्कूलों की स्थापना के अधिक से अधिक अवसर प्रदान किये जावें जो इस उपयोगी शिक्षा का प्रसार कर सकें। वे संस्थायें कुछ चुनिन्दा नवयुवकों के बजाय सामान्य युवक-समाज को उपयोगी शिक्षा देंगी। इन स्कूलों का मुआइना बड़ी सावधानी से और पुनः पुनः किया जावेगा तथा वहां के शिक्षार्थियों की इम्दाद के लिए छात्रवृत्तियां कायम की जावेंगी। मतलब यह कि अंततोगत्वा

उच्च से उच्च शिक्षा भी भारतीय देश–भाषाओं के जरिये और वर्तमान देशी शालाओं में दी जा सकती चाहिये । देश–भाषाओं तथा एंग्लोवर्नाकुलर स्कूलों के बीच का जो गहरा भेद है वह शीघ्र दूर होना चाहिये और यह देश–भाषाओं के साहित्य की क्रमिक संवर्धनशीलता एवं संपन्नता से दूर हो भी सकेगा । अतः इन दोनों स्कूलों के वास्ते मास्टरों को अंग्रेजी का ज्ञान भी देश भाषाओं के साथ होना चाहिये । देशी शालाओं के विद्यार्थियों को उच्च विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने के लिए छात्र-वृत्तियों की संख्या बढ़ाई जावेगी । इस तरह पश्चिमी ज्ञान के लाभ शनैः- शनैः सब प्रकार के लोगों में प्रस्तुत हो जावेंगे ।

देशी संस्थाओं को आत्मनिर्भरता का आदर्श : सरकारी मुखापेक्षा का निष्कासन होना चाहिये ।

इस सबको सफल करने के लिए केवल सरकारी कंधे काफी न होंगे । अतः शिक्षित, धनीमानी और दानशील व्यक्तियों की उदारता, दान और धन का सहयोग सरकारी चेष्टाओं के साथ उपलब्ध करना आवश्यक है । दोनों की एजेंसियों को समवेत करना होगा । इस हेतु कम्पनी ने ग्रांट-इन-एड–'सहायक दान' की प्रणाली स्वीकार कर ली । इसका सबसे बड़ा फायदा होगा स्थानीय परिश्रमों, आवश्यकताओं और उद्देश्यों का सरकारी चेष्टा के साथ उपयोग । जनता में यह आत्म-निर्भरता की भावना को उद्‌बुद्ध कर देगा । किसी भी राष्ट्र के उत्कर्ष के हेतु ऐसी भावना, आत्म-निर्भरता की भावना–अप्रतिम होती है । सहायक–दान-प्रणाली में ऐसी कोई भी संस्था जो स्वस्थ धर्म-निरपेक्ष शिक्षा दे सके, जो स्थानीय व्यवस्थापकों के हाथों में हो, जिसका मुआइना सरकारी इन्स्पेक्टर कर सकें, तथा जो समय समय पर नियमों की, तमाम शर्तों की पूर्ति कर सके, सहायक दान प्राप्त करने की अधिकारिणी होगी । हाँ, उस संस्था को अपने परीक्षार्थियों से थोड़ी बहुत फीस लेनी होगी क्योंकि फीस लेने से शिक्षार्थियों की उपस्थिति अधिक नियमित, अधिक गंभीर

और शिक्षा अधिक संगठित ढंग से चल सकती है। सहायक दान खास कार्यों के लिए भी दिया जा सकेगा, यथा हेड मास्टरों का वेतन, छात्र-वृत्तियां, पाठ्य-पुस्तकें इत्यादि। दान का मिलना इंस्पेक्टरों की सामयिक रिपोर्टों पर निर्भर रहेगा। इस प्रणाली का पूर्णतः प्रचार हो तथा जहां कहीं भी स्थानीय शक्ति और धन उपलब्ध हो सकते हैं, अथवा जहां पहले से ही ऐसी संस्थाएं हों, सरकार अपनी शालाएं नहीं खोलेगी। यदि किसी भाग विशेष में अस्थायी मदद और आधार की आवश्यकता हो तो वह दिया जा सकेगा। आदर्श यही हो कि सरकार पर पूर्णतः निर्भर संस्थाएं समाप्त हो जावें और सहायक-दान प्रणाली का क्रमिक विकास पूर्ण हो जावे। इसे सामने तो रखा जावे पर अनावश्यक चहल-पहल न की जावे।

छात्रवृत्तियां और मास्टरों की ट्रेनिंग की व्यवस्था

छोटी किस्म के स्कूलों के अच्छे विद्यार्थियों को बड़े स्कूलों में पढ़ने के वास्ते छात्रवृत्तियां दिलाई जावेंगी। ऐसे जिन व्यक्तियों में पढ़ाने का माद्दा है और जो शिक्षक होने को उत्सुक हैं नार्मल स्कूलों में भर्ती होकर पढ़ने के लिए मासिक छात्रवृत्तियां भी दी जावेंगी। इंजीनियरी और मेडिकल कालेजों में भी श्रमशील और सुयोग्य विद्यार्थियों को ऐसी छात्र वृत्तियां दी जावेंगी। अतः यह आवश्यक है कि प्रत्येक प्रेसीडेन्सी में मास्टरों के ट्रेनिंग स्कूल और ट्रेनिंग कक्षाएं शीघ्राति-शीघ्र स्थापित की जावें। साथ ही ट्रेनिंग समाप्त होने पर उपयुक्त वेतन की नौकरियां दिलाने में उन्हें मदद की जावे। मतलब कि मास्टरों को भी अन्य विभागों की नौकरी के आकर्षण प्रदान हो सकें। अतः देशी स्कूलों के मास्टरों को हमें सबसे पहले इस बात की सुविधा, और अवसर प्रदान करना चाहिये।

पाठ्य-पुस्तकें

अब रहा पाठ्य पुस्तकों का प्रश्न—वह केवल अनुवादों से काम नहीं चलेगा। यूरोपीय ज्ञान के तत्वों को भारतीय विचार और भाव शैली के

माध्यम से आकर्षक और उपयोगी बनाया जावे। कक्षा की पुस्तकों में जनता की भावनाओं, रुचि, इतिहास इत्यादि का समुचित समादर हो।

कृषि–शिक्षा

यह तो निर्विवाद है कि भारत का सुख-ऐश्वर्य उसके अफसर-संप्रदाय की सच्चाई पर निर्भर है। उदार शिक्षा के द्वारा जब ऐसे व्यावहारिक और उपयोगी लाभ के द्वार खुल जावेंगे तो शिक्षार्थी स्वयमेव उस ओर आकृष्ट होंगे। व्यावहारिक लाभों के हितार्थ इंजीनियरिंग, मेडिकल तथा कृषि कालेजों की स्थापना सभी प्रेसीडेन्सी नगरों में की जावेगी। सरकार इनमें मदद करेगी। वास्तव में बंगाल के प्रत्येक जिला स्कूल में व्यावहारिक कृषि सिखाने का सुझाव बड़े काम की चीज़ है।

स्त्री-शिक्षा और धर्म–शिक्षा

स्त्री-शिक्षा को सरकार अपना पूरा समर्थन देगी क्योंकि इससे समाज के शैक्षणिक और सदाचार धरातल का अधिक उत्कर्ष होगा। परन्तु धर्म-शिक्षा के विषय में सरकार पूर्णतः तटस्थ रहेगी और उसके इंस्पेक्टर इस ओर बिलकुल ध्यान न देंगे। हाँ, इस पर कोई स्कूल जोर जबर न कर सकेगा।

मिस्टर टॉमसन की निरीक्षण-प्रणाली की सिफारिश

इसके बाद डिस्पैच ने विभिन्न प्रांतों की शिक्षात्मक गतिविधियों की सूक्ष्म समीक्षा की है। अंग्रेजी-माध्यम द्वारा दी जाने वाली शिक्षा की प्रगति बंगाल में सर्वाधिक हुई जो एक साधारणतः उच्च वर्ग तक ही सीमित रह सकती थी। सार्वजनिक शिक्षा के क्षेत्र में उस प्रेसीडेन्सी ने प्रायः कुछ भी ध्यान नहीं दिया है, और देश-भाषाओं की तो तरक्की ही नहीं हुई। इस सम्बन्ध में डिस्पैच ने उत्तर प्रदेश (तत्कालीन पश्चिमोत्तर प्रांत) में किये हुए मिस्टर टॉमसन तथा उनके सहायक मिस्टर रेड के सफल प्रयत्नों, देशी स्कूलों की व्यवस्था, और निरीक्षण के तरीकों

का बड़ा प्रशंसापूर्ण उल्लेख किया है। उन्होंने इन्हें सर्वत्र अपनाने की सिफारिश भी की। मिस्टर टॉमसन ने खोज की कि निरक्षरता के कारण सरकारी कागजों में जो जमीन का दाखिल खारिज होता है वह जनता के लिये कितना हानिकारक होता है। उन्होंने यह स्पष्ट कराया कि साक्षरता से किसानों का ही निजी लाभ होगा। अतः देशी शालाओं में सभी सरकारी अफसर वक्तन-फवक्तन पहुँचा करें ऐसी प्रथा उन्होंने चलाई।

बंबई और मद्रास

बंगाल से विभिन्न हालत बम्बई की थी। देश-भाषाओं के जरिये शिक्षा देने की प्रथा को यहां खूब इम्दाद दी गई थी। सहायक-दान के आधार पर चलने वाली संस्था का नमूना एलफिंस्टन इंस्टीट्यूशन हुआ। यह बात अलग है कि एंग्लो वर्नाक्युलर कालेजों की अंग्रेजी में प्रगति यहां बंगाल की सीमा तक नहीं हुई। मद्रास में ईसाई मिशनरी ही सफल हुई, सरकार की ओर से कोई चेष्टाएं नहीं की गई। वहां मिस्टर थामसन की योजना का अवलंबन करना एकदम आवश्यक बताया गया। इस प्रकार विस्तारपूर्वक अंग्रेज कम्पनी के इस संपूर्ण (Comprehensive) दस्तावेज ने भारत की शिक्षा की पूरी रूपरेखा निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत प्रस्तुत कर दी:—(१) यूरोपीय ज्ञान का प्रसार उनका उद्देश्य है। (२) सरकारी शिक्षा विभाग का निर्माण तथा सामान्य काम निरीक्षण इत्यादि रहेगा। (३) यूनिवर्सिटियां स्थापित की जावेंगी। (४) उच्च शिक्षा तथा उच्च-वर्ग आत्म निर्भर हों तथा मध्य और निम्न वर्गों की शिक्षा पर सरकार स्वयं ध्यान देगी। (५) सहायक-दान की प्रणाली स्वीकार की गई तथा स्कूलों का विकास होने की सिफारिश की गई।

सबसे महत्व की बात यह हुई कि कम्पनी ने अपने समस्त प्रधान अधिकारियों को जन-सम्पर्क कायम करने की आज्ञा दी तथा अपने प्रभाव

और सामाजिक मेल-मिलाप से भारतीयों का सहयोग, धन और चेष्टाओं को उद्‌बुद्ध कर अपनी सारी शक्ति भर शिक्षा-प्रसार करने की हिदायत भी भेजी। कंपनी ने इसे दैवी विधान का एक कर्तव्य कहा और घोषित किया कि भारतवासियों में ज्ञान की पिपासा जागृत कर, उनमें शिक्षा-प्रसार कर, शिक्षा के साधनों को जुटाकर संपन्न होने का धर्म-कार्य यद्यपि एक दिन का काम नहीं तो भी उसे कराना परम आवश्यक है। एतदर्थ चाहे जो खर्च हो जाये वह सुव्यय ही होगा। डिस्पैच मद्रास के सर टामस मनरो के निम्न लिखित उद्धरण से अंत होता है:—ये उद्‌गार वास्तव में पवित्र हैं:— †

"इस हेतु किये गये किसी भी खर्च का पर्याप्त पलटा देश के सुधार में मिलेगा। ज्ञान का सामान्य विस्तार स्वयं नियमित आदतों में प्रतिफलित होता है; उद्योग की वृद्धि होती है, जीवन की सुविधाओं में सुरुचि जागती है, उन्हें प्राप्त करने के लिए श्रमशीलता बढ़ती है और जन-साधारण के सुख और ऐश्वर्य का प्रसार होता है।"

इस युग में भले शिक्षा ने अपेक्षित उन्नति न की हो तो भी उसकी युगांतरकारिणी बुनियाद पड़ गई थी। भारतीय और यूरोपीय ज्ञान, देश-भाषाओं और अंग्रेजी भाषा का माध्यम, और सरकारी स्कूल तथा प्राइवेट स्कूलों के बीच के द्वंद्व का निबटारा हो चुका था। अंग्रेजों का उद्देश्य जो भी रहा हो वर्ग विशेषों की शिक्षा तथा सार्वजनिक शिक्षा दोनों पर ही जोर दिया जाना शुरू हो गया, एक दूसरे की पूरक मानी जाने लगी;

---

† Any expense which may be incurred on this object will be amply repaid by the improvement of the country, for the general diffusion of knowledge is inseparably followed by more orderly habits, by increasing industry, by a taste for the comforts of life, by exertion to acquire them and by the growing prosperity of the people.

—Sir T. Munroe.

यद्यपि हाई स्कूलों की शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही बन बैठी । असल में सार्वजनिक शिक्षा की कम प्रगति का कारण आर्थिक दुरवस्था अधिक थी सरकारी उपेक्षा कम । वर्ग विशेष की शिक्षा पर जोर देने से नुकसान यह ही हुआ कि ऐसे लोगों ने भारतीय संस्कृति और विचार धारा के प्रति सहानुभूति खो दी ।

यूनिवर्सिटी प्रश्न

(१) १८५४ शिक्षा-डिस्पैच की सहायक दान प्रणाली को समझाओ और बताओ कि सन् १९०४ तक माध्यमिक शिक्षा की उन्नति में उसने कितना प्रभाव डाला । (१९४८)

(२) सन १८५७ से लेकर १९१७ तक भारत में यूनिवर्सिटी शिक्षा के विकास का चित्रण करो (१९३८)

(३) सन् १८५४ के डिस्पैच की मुख्य सिफारिशें संक्षेप में लिखो । उत्तरकालीन शिक्षा के विकास को उन्होंने किस तरह प्रभावित किया ? (१९३७-१९३८)

(४) सन् १८५४ के डिस्पैच और १८८२ के कमीशन द्वारा शिक्षा-क्षेत्र में प्राइवेट प्रयासों को जो प्रोत्साहन मिला उसके क्या कारण थे ? उस प्रोत्साहन का सन् १९०४ तक क्या प्रभाव पड़ा । (१९३९)

(५) सन् १८५४ के शिक्षा-डिस्पैच को बहुधा भारतीय शिक्षा का मेगनाचार्टा कहा जाता है :—

(अ) वे कौनसी विशेष धाराएं हैं कि जिससे डिस्पैच को यह संज्ञा दी जा सके ।

(ब) क्या अभी भी उसे ऐसा कह सकते हैं ?

(स) यदि नहीं तो उसे यही संज्ञा पाने के हेतु कौनसी बातें रखना आवश्यक होंगी । (४२)

(६) " १८५४ का डिस्पैच भारतीय शिक्षा का मेगना चार्टा है" उत्तरकालीन भारतीय शिक्षा के विकास के प्रकाश में यह कथन किस सीमा तक सच है ? (१९४०)

अध्याय ५

भारत की पहली यूनिवर्सिटियाँ

(सन् १८५६ से शती के अन्त तक)

प्रांतीय सरकारों को यूनिर्वसिटी-कानून बनाने का अधिकार मिला

वुड के पत्रक ने प्रेसीडेन्सी के नगरों में शिक्षा क्षेत्र में एकरूपता लाने के उद्देश्य से यूनिवर्सिटियों की स्थापना की योजना प्रस्तुत की। २६ जनवरी सन् १८५५ में तदनुसार भारत सरकार ने एतदर्थ एक समिति का संगठन किया जिसने कलकत्ता, बंबई और मद्रास में इनकी स्थापना की योजना बनाई। सबसे पहले भारत सरकार ने प्रांतों की सरकारों को अपने निजी कानून बनाने की हिदायत दी कि यद्यपि मौलिक ढाँचा तीनों यूनिवर्सिटियों का एक ही हो तो भी अन्य बारीकियों, नियमों, उप-नियमों का आधार स्थानीय परिस्थितियां हों। इन सबकी मंजूरी इत्यादि के लिए भारत सरकार की अनुमति इत्यादि जरूरी नहीं। उपरोक्त समिति ने यूनिवर्सिटियों के विधानों को प्रस्तुत नहीं किया और न उनकी सिनेट इत्यादि की कार्यवाहियों इत्यादि पर कुछ कहा बल्कि प्रवेश, डिग्री, आनर्स इत्यादि की परीक्षाओं की प्रणाली के ऊपर विचार किया। उनकी दृष्टि में आर्ट्‌स, मेडिसन, कानून और इंजीनियरिंग भर की शाखाएं थीं।

विषयों और परीक्षार्थियों का स्टैंडर्ड

परीक्षार्थियों के ज्ञान के स्टैंडर्ड के बारे में गवर्नर जनरल ने प्रवेश–परीक्षा–विषयक सुझाव मान लिये यद्यपि डिग्री-परीक्षा के विषय में यह सुझाव कि सिनेट की हिदायतों के अनुसार परीक्षक गण स्वयं परीक्षार्थियों का न्यूनतम स्टैंडर्ड निश्चित करें नहीं माना। उन्होंने कहा कि गणित-शास्त्र तथा तर्क-शास्त्र जैसे विषय जिनसे विद्यार्थियों का

ज्ञान सख्ती से और पूरी तरह जांचा जा सके, आवश्यक हैं। उनका अध्यापन भले मामूली सीमा तक हो पर संपूर्ण होना चाहिये। यों तो ज्ञान का क्षेत्र विस्तृत रहे ही, पर कुछ ऐसी प्रेरणाएं भी मौजूद हों कि निकट गंभीर और बारीक अध्ययन भी शिक्षार्थी किया करें। डिग्री की परीक्षा में धार्मिक विश्वास वाले कोई भी विषय कदापि न हों। कानून की डिग्री के वास्ते परीक्षार्थी कम से कम आर्ट्स की डिग्री प्राप्त कर चुका हो, यह कोई बड़ी कठिन चीज नहीं मानी गई।

सब कानून गवर्नर जनरल की स्वीकृति प्राप्त करें ताकि केन्द्रीय अधिकारी एकरूपता ला सकें।

सिनेट की कार्यवाहियों का नियंत्रण किसी केन्द्रीय अधिकारी के जिम्मे में रहे ताकि एक सामान्य एकरूपता कायम रह सके। प्रत्येक यूनिवर्सिटी की डिग्री समान योग्यता पर ही दी जावे यह बात गवर्नर जनरल जैसे केन्द्रीय अधिकारी के जिम्मे रहने से बन जावेगी। अर्थात् प्रायः एक-सा ही पाठ्यक्रम वे लोग नियत करें। एतदर्थ सिनेट की तमाम कार्यवाहियाँ और नियम उप-नियम गवर्नर जनरल की स्वीकृति के लिए पेश किये जाया करें। कानून बन जाने की आशा में गवर्नर जनरल ने घोषणा की कि कलकत्ता यूनिवर्सिटी के चांसलर वे स्वयं होंगे तथा बम्बई और मद्रास के चांसलर वहाँ के गवर्नर लोग स्वयं। कलकत्ता यूनिवर्सिटी के पहले वाइस चांसलर सर जेम्स विलियम कॉलविल जो कलकत्ता के तत्कालीन हाईकोर्ट के प्रधान न्यायाधीश थे, नियत किये गये। इसके बाद और भी जो शासकीय कार्रवाइयां आवश्यक होती हैं इस प्रस्ताव के जरिये आदिष्ट की गईं। अध्यापन के विषयों के निस्बत वही बातें कही गईं जो आज प्रत्येक यूनिवर्सिटी के विधान में मामूली चीजें बन गईं हैं। यथा बी० ए० में कितने विषय हों, एम०ए० कैसे और किस वक्त दे दी जाय, पास होने के लिए कितने फी सदी नम्बर होने चाहिये इत्यादि इत्यादि जिनका प्रस्तुत पुस्तक में विशेष महत्व नहीं हो सकता और जो विशेष अध्ययन अथवा खोज का विषय हों तो हों।

बंगाल, उत्तर प्रदेश मद्रास और बंबई में कालेजों की स्थापना

कलकत्ता यूनिवर्सिटी की पहली प्रवेश परीक्षा मार्च १८५७ में हुई जिसमें १६२ लड़के पास हुए। ११३ लड़के सरकारी स्कूल और कालेजों के उम्मीदवार थे और ४५ प्राइवेट संस्थाओं से तथा ४ सरकारी स्कूलों के मास्टर थे। अप्रेल १८५८ की डिग्री परीक्षा में १३३ उम्मीदवार थे पर डिग्री केवल दो को दी जा सकी। उस वर्ष ४६४ विद्यार्थी एंट्रेस यानी प्रवेश परीक्षा में पास हुए और १११ ने यूनिवर्सिटी में दाखिला कराया। डिग्री परीक्षा की सख्ती देखकर यूनिवर्सिटी ने स्टैंडर्ड कुछ कम किये ताकि अधिक परीक्षार्थी पास हो सकें। मेडीकल और सिविल इंजीनियरिंग के कालेजों के सिवा सन् १८५४ के हुक्म के मुताबिक निम्न-लिखित कालेज स्थापित हुए:—प्रेसीडेंसी कालेज कलकत्ता, संस्कृत अथवा हिंदू कालेज तथा कलकत्ता मदरसा। इसके सिवा बरहामपुर, ढाका, हुगली और कृष्णानगर में भी कालेज स्थापित किये गये। संस्कृत कालेज और कलकत्ता मदरसा संस्कृत फारसी के अध्ययन के केन्द्र थे बाकी सामान्य शिक्षा के जो अंग्रेजी भाषा के ज़रिये दी जाती थी। पश्चिमोत्तर प्रांत में (उत्तर प्रदेश) अंग्रेजी भाषा के जरिये शिक्षा देने के लिये आगरा, दिल्ली, काशी और बरेली में कालेज खोले गये। संस्कृत का केन्द्र काशी रहा परन्तु देश-भाषाएं सभी कालेजों के कोर्स में रहीं। मद्रास में केवल एक सरकारी हाई स्कूल भर यूनिवर्सिटी के नाम पर खुल सका। परन्तु बम्बई में बंबई का एर्लफिस्टन इंस्टीट्यूशन और पूना के कालेजों के ज़रिये उच्च शिक्षा दी गई। सन् १८५७ में कितने कालेज थे इसका एक आभास निम्नलिखित टेबल से मिलेगा।

प्रांत		सामान्य ज्ञान	मेडिकल	इंजीनियरिंग
बंगाल	सरकारी	७	१	–
	मिशनरी	७	–	–
		१४	१	–

प्रांत		सामान्य ज्ञान	मेडिकल	इंजीनियरिंग
बंबई	सरकारी	२	१	–
	मिशनरी	–	–	–
		२	१	–
पश्चिमोत्तर	सरकारी	४	–	१
	मिशनरी	–	–	–
		४	–	१
मद्रास	सरकारी	१	१	–
	मिशनरी	२	–	–
		३	१	–
कुल		२३	३	१

कैनिंग कालेज लखनऊ, अलीगढ़ कालेज, लाहौर ओरियंटल और पंचयप्पा कालेज की स्थापना।

सन् १८५७ के बाद निम्नलिखित कालेजों की और भी स्थापना हुई। पहिला था सन् १८६४ में अवध के ताल्लुकेदारों द्वारा स्थापित लखनऊ का कैनिंग कालेज। इसी के आधार पर आज की लखनऊ यूनिवर्सिटी की रचना हुई है। सन् १८७५ में सर सैयद अहमदखां के परिश्रम से अलीगढ़ में मुस्लिम एंग्लो-ओरियंटल कालेज बना कि जिसका उद्देश्य मुस्लिम मात्र को शिक्षा देना था। बाद में इसी का विकसित स्वरूप अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी हुआ। तीसरा महत्वपूर्ण कालेज था लाहौर का ओरियंटल कालेज जिसकी स्थापना सन् १८७० में हुई। यह कालेज संस्कृत अथवा फारसी अरबी के अन्य कालेजों से भिन्न था। इनका अध्ययन

तो यहाँ होता ही था परंतु साथ में साइन्सों का ज्ञान उर्दू और हिन्दी जैसी वर्तमान देश–भाषाओं के जरिये दिया जाता था। इस हेतु बीजगणित, यूक्लिड, ज्योतिष, इतिहास, केमिस्ट्री, फ़िजिक्स इत्यादि की पश्चिमी किताबें हिन्दी, उर्दू में अनूदित की गईं। पर देशी भाषा के माध्यम से पढ़ाने वाली यूनिवर्सिटी पंजाब में न बनकर बाद में हैदराबाद (दक्षिण) में

सर सैय्यद अहमद खान

बनी। इधर मद्रास प्रांत में भी प्राइवेट कालेज खुल गये। पंचैयप्पा कालेज का बीजारोपण सन् १८४२ में पंचैयप्पा की दानशीलता से निर्मित हाई स्कूल में हुआ। सन् १८५७ में विजयानगरम् के महाराजा ने विजगापट्टम का कालेज बनवाया तथा उन्होंने १८६१ में तिन्नवेली कालेज निर्माण किया। यह बात अलग है कि इन तमाम कालेजों के प्रिंसपल अंग्रेज ही नियुक्त किये गये थे।

उत्तर प्रदेश की 'हल्का बन्दी प्रणाली' और शिक्षा-प्रसार

इसके बाद फिर ७ अप्रेल १८५९ को भारत–मंत्री ने दूसरा शिक्षा-पत्रक भेजा जिसमें संपूर्ण भारत की शिक्षात्मक गतिविधियों का विस्तृत वर्णन है। वह केवल एक सरकारी रिपोर्ट मात्र जान पड़ती है जिसका शिक्षात्मक प्रयोजन विशेष नहीं। वास्तव में उत्तर प्रदेश में

एक 'हल्काबंदी' प्रणाली सार्वजनिक शिक्षा के क्षेत्र में आई जिसमें कि अनकानेक गांव जो पास पास बसे होते थे इकट्ठे होकर एक केन्द्रीय गांव में स्कूल खोल लेते जिससे कि वह स्कूल हर गांव से दो मील से अधिक दूर न होता। उसके चलाने के लिए लगान का एक छोटा अंश जमींदारों की सहमति से लिया जाता। आधा खर्च तो जमींदार देते और आधा सरकार देती। इस योजना को कम्पनी की सरकार ने सार्वजनिक शिक्षा के प्रसारार्थ मान लिया था। इसके अतिरिक्त सहायक-दान-प्रणाली के अन्य नियमों उप-नियमों में संशोधन होते गये। यह युग वास्तव में हमारी अंग्रेजी मॉडल पर बनी हुई प्राचीनतम यूनिवर्सिटियों के कारण ही विख्यात हुआ है।

पंजाब यूनिवर्सिटी द्वारा पूर्वी विद्याओं की डिग्रियां।

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में जर्मनी जैसी अध्यापनकारणी प्रणाली प्रारंभ हुई।

उन्नीसवीं सदी के अन्त होते होते सारे भारतवर्ष में सब मिलाकर पाँच यूनिवर्सिटियाँ खुल गईं जिनमें पंजाब और इलाहाबाद भी है। पंजाब यूनिवर्सिटी सन् १८८२ में एक खास कानून के जरिये निर्मित की गई। यों तो सन् १८८७ के कानूनों से वह कानून भिन्न नहीं था तो भी पौर्वात्य विद्याओं में भी जिनकी शिक्षा अंग्रेजी माध्यम से नहीं दी जाती थी इस यूनिवर्सिटी ने अंग्रेजी डिग्रियों की नाईं डिग्रियां देना शुरू किया। सन् १८८७ में इलाहाबाद यूनिवर्सिटी उत्तर-प्रदेश के तत्कालीन लेफ्टिनेंट गवर्नर सर विलियम म्योर की प्रेरणा और प्रयत्नों से बनी। वैसे इसके बनने का प्रस्ताव सन् १८६९–७० में उठा पर सूत्रपात सन् १८७२ में हुआ जब कि सर विलियम ने राजा महाराजाओं के सहयोग से पहली जुलाई से एक भाड़े की इमारत में वह कालेज खुलवा दिया—जिसका नाम म्योर सेंट्रल कालेज रखा गया। सन् १८७३ में लार्ड नॉर्थब्रुक ने म्योर-कालेज की नींव डाली और सन् १८८६ में लार्ड डफ़रिन ने उसका

उद्घाटन किया। सन् १८८७ में गवर्नर जनरल ने इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का कानून पास कर दिया। प्रांतीय सरकार ने उसके पूरे स्वरूप के ऊपर स्वतंत्रता पूर्वक विचार किया तथा जर्मनी की यूनिवर्सिटियों के मॉडल पर अपने स्टाफ में प्रोफेसरों, प्राइवेट अध्यापकों की नियुक्ति का सिद्धान्त भी स्वीकार किया। इस तरह केवल परीक्षा-क्षेत्र से अध्यापन-क्षेत्र की ओर जाने का यूनिवर्सिटियों में यह पहला प्रयास था जो आगामी काल में बल पकड़ता आया है।

सन् १९०२ तक भारत, बर्मा और लंका में सब मिलाकर १७९ कालेजों ने यूनिवर्सिटियों मे संबद्धता प्राप्त की थी इनमें १३६ कालेज ब्रिटिश भारत में थे ३२ देशी रियासतों में, ९ लंका में तथा दो बर्मा में। भारत के १३६ कालेजों का संचालन इस प्रकार था:—

२३ सरकारी

६ अर्ध सरकारी समितियों के हाथ

५ म्युनिसपैल्टियों के

३७ ईसाई मिशनों के

४२ प्राइवेट भारतीयों के

१२ स्त्री—शिक्षा के

११ अंग्रेजी शिक्षा के।

१३६ कुल योग

सन् १८८२ तक तो इन कालेजों की संख्या केवल ४९ ही थी; पर १८९१ तक ६१ और बढ़ गये तथा १९०२ तक १७९ हो गये।

यूनिवर्सिटीवार इनका लेखा इस प्रकार है:—

१. कलकता यूनिवर्सिटी--

नगर	संख्या
कलकत्ता	२०
प्रांत	२६
उत्तरप्रांत	४
मध्यप्रांत	३
बर्मा	२
लंका	९
राजपूताना	१
मध्यभारत	४
आसाम	२
योग	७१

२. मद्रास यूनिवर्सिटी--

नगर	संख्या
मद्रास	१०
मद्रास प्रांत	३२
त्रावणकोर	५
मैसूर	४
हैदराबाद	२
पुडूकोटाई	१
कोचीन	१
योग	५५

३. बंबई यूनिवर्सिटी--

बंबई	३
पूना	२
अहमदाबाद	१
सिन्ध	१
कोल्हापुर	१
बड़ोदा	१

भावनगर...............१
जूनागढ़.................१

योग ११

४. पंजाब यूनिवर्सिटी

लाहौर..................५
पंजाब प्रांत..........४
दिल्ली...................२
पेशावर..................१
पटियाला................१
बहावलपुर..............१
कपूरथला...............१

योग १५

५. इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

नगर संख्या

इलाहाबाद............३
लखनऊ................४
आगरा.... ....३
उत्तरप्रदेश...........१६
राजपूताना............३
मध्यभारत............२
मध्यप्रदेश.............१

योग ३२

अध्याय ६

हंटर कमीशन १८८२

मिशनरियों और सरकार के बीच मत भेद : सरकारी स्कूल वुड के पत्रक के प्रतिकूल खुलते ही गये । मिशनरियों में क्षोभ अतः कमीशन का निर्माण: प्राइवेट एजेंसियों का स्थाननिर्धारण

वास्तव में सन् १८८२ के शिक्षा-कमीशन की स्थापना का कारण ईसाई मिशनरियों का भारतीय एवं इंग्लैंड में आंदोलन था। सन् १८५४ तक शिक्षा के क्षेत्र में भारत में इनका बोलबाला रहा। उनका उद्देश्य सच पूछो तो धर्म परिवर्तन ही था कि जिसके लिए शिक्षा को उन्होंने एक साधन मात्र माना था। पर जिस संख्या में शिक्षा पाने पर धर्म परिवर्तन की उन्होंने आशा की थी वह पूरी न हुई और इसलिए वे गैर ईसाइयों के लिए अपनी शिक्षा संस्थाओं में कुछ उद्योग करना नापसन्द करते थे। इधर सरकार भी आर्थिक कठिनाइयों के कारण बहुत कुछ न कर पा रही थी। रहा प्राइवेट भारतीय व्यवस्थापकों का काम तो वही एकमात्र महत्वपूर्ण क्षेत्र बच रहा था। सन् १८५४ के डिस्पैच का यह अंदाज था कि सरकार गैर-सरकारी संस्थाओं के जिम्मे सब काम करके स्वयं अलग हो जायगी पर वह भी सच्चा न निकला। इंग्लैंड में उधर धार्मिक तटस्थता को अक्षुण्ण रखने के हेतु भी एक आंदोलन चल निकला। पर मिशनरियाँ चुप न थीं, सन् १८५८ में चर्च मिशनरी सोसाइटी ने महारानी विक्टोरिया के समक्ष एक अर्जी पेश की परन्तु राजनैतिक कारणों से उसकी सुनवाई न हो सकी। मिशनरियों का कहना यह था कि भारत सरकार की नीति सन् १८५४ के शिक्षा-पत्रक के अनुकूल नहीं चल रही है। उसका वचन था था कि सरकार शिक्षा-क्षेत्र में गैर सरकारी एजेंसियों को इम्दाद देती हुई, स्वयं शनैः शनैः शिक्षा-क्षेत्र से अलग हो जावेगी। परन्तु यहाँ उन्होंने खुद

इतने अधिक सरकारी स्कूल खोल दिये हैं जो कि मिशनरियों से ही कॉम्पीटीशन करने का स्पष्ट लक्षण है। मिशनरियों की शालाओं के सामने तो जीवन-मरण की ही समस्या आ गई है तथा सरकार की धर्म-निरपेक्ष संस्थायें विशुद्ध नास्तिक एवं अधार्मिक संस्थाएं हैं। अतः सन् १८८२ में सरकार ने सर डब्ल्यू, डब्ल्यू हंटर की अध्यक्षता में एक कमीशन का निर्माण किया। इसमें सरकारी प्रतिनिधि थे पर अंग्रेजी युग की शिक्षाके इतिहास में पहिली दफा* भारतीय प्रतिनिधि भी शामिल किये गये। इस कमीशन के जिम्मे सरकारी संस्थाओं, तथा सरकार और गैर सरकारी संस्थाओं के बीच के संबंध, और मिशनरी प्रयत्नों का स्पष्ट स्थान निर्धारित करना सौंपा गया।

जिन विषयों पर कमीशन ने विचार किया:—प्रायमरी शिक्षा स्थानीय संस्थाओं के जिम्मे हों परन्तु सुचारु संचालन के हित में सरकार अपना हाथ न खींचे; गैर सरकारी सहयोग प्राप्त किया जावे।

इस कमीशन की सिफारिशें छै भागों में बंटी हुई हैं। साथ ही कुछ एक विभिन्न मत रखने वाले सदस्यों ने जिनका विशेष प्रश्नों पर मतभेद था अपने अलग-अलग मिनिट लिखे। ऐसा सबसे महत्वपूर्ण मिनिट है भारतीय प्रतिनिधि पं. काशीनाथ त्र्यंबक तैलंग का। स्पष्ट है कि शिक्षित भारतीयों ने भारतीय शिक्षा विषयक प्रश्नों पर स्वतंत्र दृष्टिकोण से विचार करना और विचार प्रकट करना शुरू कर दिया था। इस कमीशन की

---

*सदस्यों के नाम इस प्रकार हैं:—(१) डी० एम० बारबूर, (२) डब्ल्यू आर० ब्लैकेट, (३) सी० ए० आर० ब्राउनिंग, (४) के० डेटन, (५) हाजी गुलाम हसन, (६) एच० पी० जेकब, (७) डब्ल्यू० ली वार्नर, (८) डब्ल्यू मिलर, (९) पी० रंगनाथ मुदालियर, (१०) काशीनाथ त्र्यंबक तैलंग, (११) आनंद मोहन बोस, (१२) ए० डब्ल्यू क्रॉफ्ट, (१३) जे० टी० फाउलर, (१४) ए० पी० हॉवेल, (१५) ए० जीन, (१५) सैयद महमूद, (१६) भूदेव मुकर्जी, (१८) जी० पीयरसन, (१९) ज्योतीन्द्रमोहन ठाकुर, (२०) जी० ई० वार्ड।

सिफारिशें भारत के अन्य सरकारी दस्तावेजों की नाईं अध्यापन-विधियों पद्धतियों और शासकीय प्रबन्धों तथा व्यवस्थापकोंका एक सम्मिश्रण-सा है। मुख्यतः कमीशन ने भारतीय देशी शिक्षा, प्रायमरी शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा, कालेजी शिक्षा, शिक्षा विभाग के आंतरिक शासन-प्रबन्ध तथा विशिष्ट व्यवहार की अपेक्षा रखने वाले संप्रदायों की शिक्षा पर अपनी सिफारिशें प्रस्तुत की हैं। संक्षेप में उन्होंने सरकार को शिक्षा की व्यवस्था से समयानुकूल अलग हो जाने की सिफारिश की है, हां, इसके पहले उपर्युक्त सार्वजनिक, वैयक्तिक एजेंसी उस काम को करने के लिए आगे आ जाना चाहिये। प्रायमरी स्कूल तो एकदम ही स्थानीय शासन संस्थाओं, म्युनिसपैलिटियों, लोकल बोर्डों के हाथ में दे दिये जावें, परन्तु माध्यमिक शालाएं और कालेज म्युनिसपैल्टियों के बजाय प्राइवेट एजेंसियों को दिये जावें। अन्तरिम काल के लिए भले यह कार्य टाला जा सके। परन्तु ऐसी प्रत्येक प्राइवेट एजेंसी अथवा म्युनिसिपैल्टी को संस्था की सुचारू कार्यवाही और स्थायित्व की गैरंटी देनी होगी। ऐसी संस्थाओं से कि जिनके ऊपर देश की उच्च शिक्षा का प्रधान बोझ अभी है तथा और भी बहुत काल तक रहने वाला है सरकार अपनी व्यवस्था का हाथ न खींचे। इसके विपरीत यदि कोई संस्था अपने खर्चे के अनुपात में उपयोगी साबित नहीं हो रही है तो उसे बाकायदा एक नोटिस देकर बंद करा दिया जावे। कमीशन ने यह भी सिफारिश की कि गैर सरकारी संस्थाओं के व्यवस्थापकों से भी सामान्य शैक्षणिक महत्व के प्रश्नों पर सहयोग लिया जावे तथा वहां के शिक्षार्थियों के साथ प्रमाण-पत्रों, छात्रवृत्तियों, और अन्य सार्वजनिक सुपात्रताओं के मामले में समानता का व्यवहार प्रदान किया जावे। सहायक-दानों की ग्रांटें बाकायदा दी जावें और यदि कभी वे बंद की जावें तो उनके स्पष्ट कारण दिये जावें। शालाओं की बढ़ती आवश्यकताओं, नवीन और विविध विषयों के अध्यापनार्थ अतिरिक्त ग्रांटें भी मंजूर की जावें परन्तु शिक्षा-क्रम और माध्यम का निश्चय करने में उन्हें सापेक्षतः अधिक स्वतंत्रता दी जावे।

मिशनरी–प्रयास प्राइवेट होते हुए भी स्थानीय नहीं; तो भी प्राइवेट व्यवस्था के सामर्थ्य का आदर्श प्रस्तुत करेगा।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि कमीशन के जिम्मे मिशनरियों का शिक्षा-क्षेत्र मे उपयुक्त स्थान निश्चित करना भी था। उस सम्बन्ध में राष्ट्रीय शिक्षा की किसी भी प्रणाली में उन्हें अप्रधान ही स्थान दिया जा सकेगा; यह कमीशन ने निश्चित कर दिया। परन्तु उस विषय पर उनके और भी उद्गार थे। आशंका यह थी कि सरकारी एजेंसी यदि उच्च शिक्षा के क्षेत्रों से अलग हो गई तो यह सब शिक्षा मिशनरियों के हाथ में आ जावेगी। परन्तु कमीशन ने भारत की विविध और विशाल आवश्यकताओं के प्रसंग की इस कल्पना को अनुदार और अनुचित समझा। फिर मिशनरी प्रवक्ताओं ने भी शिक्षा पर ऐसी कुछ सत्ता जमा लेने की न तो इच्छा ही जाहिर की और न सामर्थ्य ही। आपत्ति यह थी कि प्राइवेट होकर भी मिशनरियाँ स्थानीय प्रयत्न नहीं थे। इधर सहायक-दान की प्रणाली का उद्देश्य भारतीयों में स्थानीयता का गौरव, आत्म–विश्वास तथा सार्वजनिक हितार्थ आत्म–सहयोग की समेवत भावना का सृजन करना था जो मिशनरियों को खास प्रोत्साहन देकर संपन्न न हो सका। वास्तव में उत्तर यह हुआ कि मिशनरियां प्राइवेट प्रयत्नों, प्रयासों की आंतरिक योग्यता तथा सामर्थ्य का आदर्श पेश करेंगी। वे क्षेत्र में आकर अन्य समान एजेंसियों को अपनी कारगुजारी दिखाने की प्रेरणा भी देंगी। अतः मिशनरियों को मामूली सरकारी देखरेख के भीतर अपनी स्वतन्त्र गतिविधि करने के लिये मुक्त रखा जावेगा। इस तरह मिशनरियों और सहायक-दान की प्रणाली का स्पष्ट चित्रण और स्थान कमीशन ने सामने रखा।

अब संक्षेप में कमीशन की विभिन्न विषयों की सिफारिशों पर ध्यान दिया जावे :—

भारतीय देशी शिक्षा

सहायक दान की निधि का दान।

जहाँ कहीं भी धर्म-निरपेक्ष-शिक्षा का प्रयोजन सिद्ध होता हो हर देशी शिक्षा का स्कूल प्रोत्साहन पाये तथा उसे रिकगनीशन (मान्यता) भी दे दी जाये। उसे दी जाने वाली सहायक-दान की निधि का निबटारा परीक्षाओं के फल के आधार पर करना अधिक अच्छा होगा। देशी स्कूलों के पाठ्य-क्रम तथा कार्यकर्त्ताओं से सरकार कमसे कम बोले परन्तु उनकी ट्रेनिंग को यथा-संभव सभी प्रोत्साहन देवें। ऐसी शालाओं का प्रबन्ध जहाँ कहीं म्युनिसिपल या लोकल बोर्ड हों उनके जिम्मे कर दिया जावे। पर यदि कोई शाला सहायक-दान नहीं लेना चाहती तो उसमें हस्तक्षेप करने की जरूरत नहीं। देशी शालाओं के स्वतंत्र विकास को पूरा प्रोत्साहन दिया जावे और जहां अन्य किस्म की शाला स्थापित कर सकना संभव न हो वहाँ ये ही कायम की जावें। इन शालाओं को ग्रांट देने की ड्यूटी म्युनिसिपैलिटियों की होगी। शिक्षा-विभाग के अफसरों के पास देशी शालाओं की एक सूची रहेगी ताकि सभी किस्म के लोगों के लिए वे समुचित शिक्षा-प्राप्ति की व्यवस्था में योग दान कर सकें।

प्रायमरी शिक्षा

प्रायमरी शिक्षा का स्थानीय कोषों पर एकांत अधिकार। आय-व्यय संबंधी सिफारिशें।

प्रायमरी शिक्षा का सार्वजनिक और उच्चतम विकास संपादित कराने की ड्यूटी कानूनन सरकार के ऊपर रहेगी। वहाँ भी परीक्षाफलों के आधार पर ग्रांट का अनुपात निश्चित करना श्रेयस्कर होगा। वे तमाम सिफारिशें जो देशी शिक्षा वाली शालाओं के निस्बत की गई हैं वे इन शालाओं में भी लागू होती हैं। परन्तु यदि म्युनिसिपल या लोकल बोर्डों द्वारा वे चलाई जा रही हैं तो वहां के शिक्षार्थी फीस देने से छूट नहीं पा सकेंगे महज इसलिए कि वे पहिले से ही टैक्स देते आ रहे हैं। यह बात अलग है कुछ विद्यार्थी उनकी निर्धनता के कारण भले ही फीस से छूट पा जावें पर सामान्यत: नकद या जिंस के रूप में फीस देना अनिवार्य होगा। ग्रामों के

कर्मचारियों जैसे पटेल नंबरदार को मुस्तकिल करने के पूर्व कुछ शिक्षात्मक योग्यता का होना किन्हीं अंशों तक अनिवार्य किया जाना उचित होगा। जहां कहीं बन सकें रात्रि-शालाएं भी खोली जावें। जो पिछड़े हुए जिले हैं वहां समय की पाबंदी की, मौसम इत्यादि को ध्यान में रखकर सख्ती कम की जावे तथा शालाएं खोली जावें। मूल निवासियों वाले प्रदेशों में सरकारी विभाग स्वयं स्कूल खोले जब तक कि वहाँ खुद ही सहायक-दान से चल सकने वाली संस्थाएं कायम न हो जावें। इन ग्रांटों में उदारता की नीति बरती जावे। प्रायमरी शिक्षा समस्त सार्वजनिक शिक्षा का वह महत्वपूर्ण अंग है जिसका हक़ स्थानीय कोषों पर प्रायः एकांत है तथा प्रांतीय कोषों के सापेक्षतः अधिकांश पर। अतः प्रत्येक म्युनिसपैल्टी या लोकल बोर्ड अपने स्कूल फंड में अपनी पूरी जमा का सरकार द्वारा निश्चित खासा भाग, फीसों की आय, प्राविडेंट फंड तथा और कोई दान या पिछली साल की बची जमा एकत्रित करे। अध्यापन का माध्यम कमेटी स्वयं निश्चित करे पर यदि किसी भिन्न मत अल्प-संख्यक संप्रदाय की अपनी निजी मांग हो और उनकी संख्या विशेषाधिकार के लिये काफी हो तो एक अलग क्लास या स्कूल खोला जावे।

माध्यमिक शिक्षा

स्थानीय-प्रयास और सहयोग के ही बल पर सरकार इसे चलाने को बाध्य होगी

हाई स्कूलों को दो खंडों में बांट लिया जावे। एक खंड तो एंट्रेंस परीक्षा तक ले जाया जावे जिससे परीक्षार्थी यूनिवर्सिटी में भरती होवें तथा दूसरा अधिक व्यवहारिक ढंग का हो कि जिसे पास करके बालक व्यापार अथवा असाहित्यिक कार्यों में लग सकें। इन दो में से किसी भी एक में पास होकर प्रमाण-पत्र पा लेने से सरकारी नौकरी की योग्यता हासिल समझी जानी चाहिये। इन स्कूलों में पुस्तकालय बनाने के लिए छोटी रकमें ग्रांट के रूप में दी जावें। मास्टरी धंधे में घुसने के इच्छुक

विद्यार्थियों के लिए अध्यापन के सिद्धांत तथा अभ्यास की भी एक परीक्षा चलाई जावे । ग्रेजुएट विद्यार्थियों के वास्ते ऐसी ट्रेनिंग की अवधि अल्प-कालीन होगी । डी० पी० आई० व्यवस्थापकों के परामर्श लेकर फीस-मान निश्चित करेंगे, गैर-सरकारी स्कूलों को सरकारी स्कूलों के बराबर ऊंची फीस चार्ज करने पर मजबूर नहीं किया जा सकेगा । इनकी वैभागिक परीक्षाओं में सरकारी—गैर–सरकारी सहयोग पूर्णतः प्राप्त रहे और परीक्षकों को फीस की आय में से पारिश्रमिक भी दिया जावेगा । यदि रकम कुछ कम पड़े तो सरकार स्वयं अलग से ग्रांट देवे । स्कूल में तीन. घंटे से ज्यादा लगातार पढ़ाई नहीं होनी चाहिये । शिक्षार्थियों की कक्षा–बार तरक्की स्कूली अधिकारियों के ही हाथ रहे । माध्यमिक शालाओं, प्रायमरी शालाओं से भिन्न हैं अर्थात् उन्हें बिना स्थानीय प्रयास और सहयोग के सरकार चलाने के लिये मजबूर नहीं है परन्तु प्रायमरी शालाएं तो किसी भी हालत में सरकार को चलानी ही होंगी । इसलिये अंग्रेजी पढ़ाने वाली संस्थाएं सरकार सहायक-दान की प्रणाली पर कायम करें ।

कालेजी शिक्षा

ग्रांट देने के सिद्धान्त ।

सिंध, अहमदाबाद, भागलपुर, जबलपुर और दिल्ली में भारतीय व्यवस्था के अंतर्गत कालेजी शिक्षा की संस्थाओं की स्थापना के जो सुझाव हैं उन पर स्थानीय सरकारें ध्यान दें । उन्हें ग्रांट देने की दर उनके कर्म-चारियों, खर्चों, योग्यताओं तथा स्थानीय आवश्यकताओं के आधार पर निश्चित होगी । इमारतों, पुस्तकालयों, फर्नीचर और अन्य साधनों के लिए खास ग्रांटें दी जावेंगी । यूरोपीय यूनिवर्सिटियों में शिक्षा प्राप्त भारतीय ग्रेजुएटों को अब अधिक संख्या में यहाँ नियुक्त किया जावे । संस्कृति के वैविध्य को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से यूनिवर्सिटियों द्वारा निर्दिष्ट से अधिक वैकल्पिक पाठ्य-क्रमों के अध्यापन की सुविधा दी जावे । फीस का वही हाल रहे जो माध्यमिक शालाओं के बारे में कहा

गया है परन्तु नियमित हाजिरी संभव बनाने के लिए पूरी टर्म की फीस चार्ज कर ली जावे। एम० ए० का अध्ययन बढ़ाने के लिए कुछ रकम ग्रेजुएटों को छात्रवृत्ति देने के लिये अलग निश्चित रखी जाय। इसी तरह विशेष योग्यता वाले ग्रेजुएटों के लिए कला तथा कलात्मक उद्योगों के अध्ययनार्थ यूरोप जाने के वास्ते भी छात्रवृत्तियां रहें।

विभागीय शासन

शिक्षार्थी के स्थानांतर पर भर्ती के नियम। प्रोफेसरों, इंस्पेक्टर्सों की नियुक्ति:

सरकारी अफसरों तथा सहायक-दान पाने वाली संस्थाओं के पदाधिकारियों की कान्फ्रेंसें समय समय पर भराई जावें जिनका अध्यक्ष डी० पी० आई० रहा करे। इसी तरह सरकारी निरीक्षक अपने मातहत शिक्षकों की सभाएं भराकर व्यवस्था के सामान्य प्रश्नों पर विचार-विनिमय किया करें। प्रांत के किसी केन्द्र स्थान में एक पुस्तकालय और विचित्रालय बनाये जावें तथा देश-भाषा की स्कूली पत्रिकाओं को प्रोत्साहन दिया जावे। काम्पीटीशन करने वाली शालाओं के बीच कुछ ऐसे नियम रहें कि एक दूसरे की शाला के शिक्षार्थी को बिना उपयुक्त प्रमाण-पत्र के, चाहे जब भर्ती न किया जावे। साथ ही पिछली शाला की उसे सारी फीस दे देनी होगी। और उसे उसी कक्षा में भर्ती किया जावेगा। फीस धीरे-धीरे अपनी उच्चतम सीमा तक ऐसे ले जाई जावे कि शिक्षा-प्रसार को धक्का न पहुंचे। शालाओं के परीक्षा-फल सरकारी इंस्पेक्टर जांचें। कालेजों के प्रोफेसरों का इंस्पेक्टरी पद पर सामान्यत: तबादला नहीं किया जावे और न इसके विपरीत ही होवे तथा भारतीयों को इन पदों पर नियुक्त किया जावे। इंस्पेक्ट्रेसों की नियुक्ति भी कन्या शालाओं के निरीक्षणार्थ आवश्यक है। माल मुहकमे के अफसरों की यह ड्यूटी रहेगी कि वे अपने क्षेत्र की शालाओं में आया करें प्रायमरी स्कूलों की परीक्षा का जिम्मा डिप्टी इंस्पेक्टरों के ऊपर रहेगा।

माध्यमिक शालाओं के शिक्षकों की ट्रेनिंग के वास्ते नार्मल स्कूलों को प्रोत्साहन दिया जावे । पाठ्य पुस्तकों की रचना कराने के लिए प्रत्येक प्रांत में एक एक कमेटी नियुक्त की जावे । कालेजों में विशिष्ट विषय पाने के वास्ते अलग से ग्रांट दी जावें पर उनकी ग्रांट उनके परीक्षा-फलों के आधार पर देना उचित न होगा । स्त्री-शिक्षा के हेतु पुत्रीशालाओं को उच्चतम ग्रांटें दी जाना चाहिये । सरकारी नौकरियों में भी भर्ती इस तरह हो कि उच्च शिक्षा को अधिकाधिक प्रोत्साहन प्राप्त हो ।

विशेष वर्गों की शिक्षा

राजा–रईस : मूल–नीच जातियां । मुस्लिम: विधवाओं और मास्टर–पत्नियों को प्रोत्साहन ।

राजाओं और रईसों के बच्चों की शिक्षा के लिए प्रांतीय सरकारें विशेष प्रकार की संस्थाओं की स्थापना के सुझाव पर ध्यान दें । इसी तरह मुस्लिमों के लिए भी सभी प्रकार की व्यवस्थापक संस्थाएं कोष निर्धारित रखें तथा सभी स्कूलों में उनके लिये फीस-माफों की कुछ संख्या सुरक्षित रहे । मुस्लिम मास्टर, इंस्पेक्टर इत्यादि भी नियुक्त किये जावें । मूल निवासियों तथा नीच जातियों के लिए तथा स्त्रियों के लिए विशेष खर्च और ध्यान लगाकर संस्थाएं कायम की जावें । किसी भी व्यक्ति को केवल जाति के आधार पर भर्ती नामंजूर नहीं की जा सकेगी । पुत्रीशालाओं में स्त्रियों के अध्यापन का स्टेंडर्ड कुछ सरल ही रहे और उनके विषय भी गृहस्थी में काम आने लायक होवें । लड़कियों की बोर्डिंगों के लिए विशेष ग्रांटें दी जावें । सहशिक्षा इस देश के लिए उपयुक्त नहीं है इसलिये लड़के लड़कियों के स्कूल प्रायमरी स्टेज छोड़कर अलग अलग ही रखे जावें । साथ ही मास्टरों की पत्नियों को, विधवाओंको मास्टरी का पेशा स्वीकार करने तथा ट्रेनिंग लेने के लिए उदारता पूर्वक प्रोत्साहन दिया जावे । जहाँ वे सर्विस करें वहां उन्हें पूरी तरह सुरक्षा की गैरंटी भी दी जावे । एतदर्थ इंस्पेक्ट्रैसों की नियुक्ति अनिवार्य होगी ।

स्कूलों के शिक्षकों की नियुक्ति, वेतन, और निर्वासन यों तो बोर्डों म्युनिसपैल्टियों या व्यवस्थापकों के हाथों में रहे परन्तु बोर्ड स्वयं सरकार द्वारा बनाये हुए नियमों का पालन करें। इस पर भी दुखित व्यक्ति का सरकार से अपील कर सकने का अधिकार अक्षुण्ण रहेगा।

इन सिफारिशों पर श्री काशीनाथ त्र्यंबक तैलंग महाशय ने यद्यपि दस्तखत तो किये परन्तु फिर भी उनका मतभेद कुछ बातों में रहा। अत: उन्होंने एक निजी मिनिट लिखा जिसकी रूपरेखा इस प्रकार है:—

श्री काशीनाथ त्र्यंबक तैलंग का मिनिट २५-९-१८८३

न्यूनतम फीस का निश्चय और सहायक—दान की रकम का निश्चय डी.पी. आई. के अधिकार में क्यों हो ? भारत की शिक्षा—परंपरा में फीस को कोई स्थान नहीं।

तैलंग महाशय ने अपनी असहमति सबसे पहले इस सिफारिश से जाहिर की कि सहायक-दान का अथवा किसी भी प्राइवेट संस्था में ली जाने वाली न्यूनतम फीस का निश्चय डी० पी० आई० करें। कमीशन ने जो कारण दिया था वह यह था कि इससे संस्था को आत्म-निर्भर बनने को कुछ गैरंटी प्राप्त रहेगी। परन्तु इसका तो मतलब यह हुआ कि कोई व्यवस्थापक यदि डी० पी० आई० से सहमत न होवें तो उन्हें सरकारी सहायक—दान की निधि-प्राप्ति से वंचित रहना पड़ेगा। असल में भारत की परंपरा में शिक्षार्थियों से फीस चार्ज करने की बात कभी नहीं आई और अभी भी ऐसे ही अनेकों महानुभावों ने शालाएं सिर्फ इसी उद्देश्य से प्रारम्भ की हैं कि जनता में शिक्षा—दान सस्ते से सस्ते दामों में हो सके। इस पर कमीशन में जवाब दिया गया कि यदि संस्था के व्यवस्थापक ऐसी दानशीलता के हामी हैं तो फिर उन्हें सरकारी सहायक-दान की भी आवश्यकता नहीं होनी चाहिये। पर यह तो प्रश्न ही अलग है।

और ऐसी बात कहना कम से कम उन लोगों के मुंह में शोभा नहीं देता कि जो धर्म-परिवर्तन का ध्येय लेकर चलने वाले स्कूलों को ग्रांट देने का समर्थन करते हैं और उसे शिक्षा–दान की संज्ञा देते हैं। इधर व्यावहारिकता के ख्याल से भी "किसी संस्था को इसलिये मदद दी जावे कि वह अपने शिक्षार्थियों से ऊंची फीस चार्ज करे" उचित नहीं जान पड़ता, क्योंकि जिस शिक्षा को शिक्षार्थी सस्ते में ही पा सकते हैं और जिसे सस्ते में ही दे सकने वाली संस्थाएं भी मौजूद हैं उन पर मंहगी शिक्षा का बोझ यह सरकारी सहायक-दान प्रणाली छा दे यह उचित नहीं। फिर मैनेजरों की बेईमानी को भी कैसे रोका जा सकेगा। मैनेजर अपनी खाता–बहियों में बस कुछ रकमें दोनों तरफ बढ़ा देवेंगे और उससे सरकार और उसके नियम का तकाजा पूरा हो जावेगा। मैनेजर इस प्रकार आपके नियम को चुनौती देकर आपसे ज्यादा रकम नोच सकेगा। और जो आत्म–निर्भरता आपका नियम उत्पन्न करना चाहता है वह गायब ही रहेगी।

उच्च–शिक्षा और सार्वजनिक शिक्षा का अन्योन्याश्रय संबंध।
५ फी सदी फीस–माफ विद्यार्थी कम हैं।

दूसरी बात है उच्च शिक्षा को अकेला छोड़ सार्वजनिक शिक्षा मात्र पर सरकारी ध्यान देना—इस पर यद्यपि मैं सहमत हूँ तथापि मैं नहीं समझता कि हम इनके अन्योन्याश्रय संबंध को किसी तरह कम महत्व दें। प्राइवेट संस्थाओं में फीस–माफ वाले विद्यार्थियों की संख्या कमीशन की सिफारिश के मुताबिक ५ फी सदी से ज्यादा नहीं होना चाहिये; पर यह संख्या बहुत ही कम है और प्रत्येक संस्था को इससे ज्यादा संख्या में भर्ती करने का अधिकार होना चाहिये पर ख्याल यह रहे कि किसी वर्ग विशेष को हम से बहुत ज्यादा लाभ नहीं मिल रहा है।

नीति की शिक्षा शिक्षात्मक जीवन से ही होती है, कुछ लेक्चरों मात्र से नहीं होगी।

नीति-शिक्षा के सम्बन्ध में कमीशन ने 'मानव और नागरिक के

कर्तव्यों पर एक भाषणों का कोर्स स्कूल तथा कालेजों में दिये जाने की सिफारिश की है। मैं मानता हूँ कि प्रायमरी स्कूलों में वे लाभकारी होंगे माध्यमिक शालाओं में उनसे कोई नुकसान नहीं होगा परन्तु कालेजों में तो उनसे हानि ही होगी। प्रारम्भिक जीवन में उचित कार्यों का ज्ञान देना सुकार्यों की प्रेरणा दे सकता है परन्तु माध्यमिक स्टेज में शिक्षार्थी कीअज्ञानता का स्थान ज्ञान ले लेता है परत्तु विश्लेषण और आलोचना की आदत नहीं पड़ पाती इसलिए उपरोक्त शिक्षा चलेगी। परन्तु यदि कालेजी शिक्षा का उद्देश्य बुद्धि का विकास समुत्पन्न कर उनमें पक्ष और विपक्षों की बातों को तौलकर निर्णय कर सकने की योग्यता संपादन करना है तो उनकी बुद्धि को उपदेश न देकर उनकी इच्छा-शक्ति का परिमार्जन और भावना की जागृति आवश्यक होंगे। और यह उद्देश्य शिक्षात्मक जीवन की बहुरंगी बारीकियों, सहपाठियों और प्रोफेसरों के उत्कर्ष-कारी सम्पर्क, इतिहास , विज्ञान और दर्शन के उच्च अध्ययन अध्यापन से ही प्राप्त हो सकेगा। उन्हें कुछ लेक्चरों के पीरियडों की सीमा में बांध लेना बिलकुल काम का नहीं।

सरकारी विचारों के सामने समर्पण अथवा विद्रोह : दोनों की ही नीति-शिक्षा से आशंका है।

धर्मशिक्षा में सभी धर्मों के सामान्य सिद्धांतों या शिक्षार्थियों के धर्मसिद्धान्तों की शिक्षा दी जावे ?

जहाँ तक नागरिकों के कर्तव्यों की बात है तो उनकी शिक्षा उपयोगी सिद्ध तो हो सकती है परन्तु अधिक से अधिक वह शिक्षा मस्तिष्क की भावना-शून्य आज्ञाएं ही होंगी, उनमें किशोरावस्था की गर्मागर्मी को तरल बनानेकी योग्यता न होगी। मतलब यहहै कि ड्यूटीकी सीख एक ढांचे में ढली हुई शिक्षा से नहीं मिलती, वह मिलती है जीवन की समस्त कार्यवाहियों में सदाशयता के निरन्तर व्यवहार से। और इस शिक्षा के देने में दोनों ओर कठिनाइयां हैं। यदि प्रोफेसर के भाषणों का जोर

सरकारी विचारों के सामने पूर्ण संतोष के साथ आत्म-समर्पण की ड्यूटी पर अधिक है तो एक ऐसे उदारमना अतृप्तों का संप्रदाय जागृत हो जावेगा जो यह शिकायत करेगा कि सरकार राष्ट्र की बुद्धि को दासत्व की जंजीर में जकड़ देना चाहती है। और यदि प्रोफेसर के भाषण विपरीत दिशा में जा रहे हैं तो कुछ ऐसे दकियानूस अतृप्त जीव खड़े हो जावेंगे जो यही शोर मचावेंगे कि सरकारी धन से चलने वाले ये कालेज विद्रोह के गरम बाज़ार हैं। इस परिस्थिति से बचना प्रायः असंभव है। कहने का मतलब यह है कि हमारी सारी की सारी शिक्षा जब तक पूर्णरूपेण नैतिकता और सामाजिकता के उपदेश, भावनाएं और आदर्श पेश नहीं करती तब तक कतिपय भाषणों और नीति के पाठ्य-ग्रंथों से यह प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। लगभग यही बात धार्मिक शिक्षा के बारे में लागू है—इसके भी दो मार्ग हैं। या तो आप 'स्वाभाविक धर्म' के तत्वावधान में सभी धर्मों के सामान्य सिद्धांत पढ़ावें अथवा उन सभी धर्मों के सभी सिद्धांत पढ़ावें कि जिन धर्मावलम्बियों की संतान अपनी संस्थाओं में पढ़ने के लिए आया करती हैं। दोनों मार्ग अत्यन्त कठिन हैं। इसलिये मेरा यह स्पष्ट मत है कि धार्मिक-शिक्षा में हस्तक्षेप करने की बात को हम अभी कोई भी महत्व न देवें क्योंकि धार्मिक दृष्टि से उससे कोई संतुष्ट होगा नहीं और धर्म-निरपेक्षता की दृष्टि से वह बड़ी दकियानूस मानी जावेगी।

भारतीयों की इंस्पेक्टरी पर नियुक्ति : प्रत्येक शाला की व्यवस्था आदर्श हो जिससे इंस्पेक्टरी ही अनावश्यक हो जावे।

भारतीयों को इंस्पेक्टरों के पदों पर नियुक्त करने की कमीशन ने सिफारिश की है। मैं सरकारी नौकरी में भर्ती होने की मांग का कोई कट्टर समर्थक तो नहीं तो भी इतना कहूँगा कि भारतीयों को उस क्षेत्र में उपयुक्त प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हुआ। मिसाल है कि हमारे भोज में मांस तो कम था, टेबल-क्लाथ अधिक; इंस्पेक्टरों की आधी जगहें भारतीयों के वास्ते सुरक्षित रखने का सख्त सिद्धांत कुछ जंचता नहीं, मैं उस सुदिन

के आगमन के लिये उत्सुक हूँ कि जिस दिन प्रत्येक पाठशाला में स्वायत्त-शासन इतना काफी विकसित हो सकेगा कि वहाँ परीक्षा और मामूली देखभाल से ज्यादा निरीक्षण की आवश्यकता ही न पड़ेगी। हम उस दिशा में उद्योग करने के उद्देश्य से योग्यता प्राप्त अफसरों की नियुक्तियों को ही अधिक इम्दाद देवें। माल मुहकमे के अफसरों द्वारा निरीक्षण से बम्बई प्रांत में तो अक्सर लाभ ही हुआ है यद्यपि बंगाल में उन अफसरों ने इसे बेकार का बोझा करार दिया है। मेरा सुझाव है कि शिक्षा विभाग के अच्छे से अच्छे भारतीय अफसर अन्य–विभागों की सलाह ले लें तो उचित ही होगा। इसी तरह सहायक–दान देने के सम्बन्ध में निधि की रकम का निर्णय केवल परीक्षाफलों के आधर मात्र पर न होकर शिक्षकों के वेतन इत्यादि के समान अन्य आधारों पर ही होना चाहिये।

बम्बई विषयक आपति का उत्तर।

कुछ मिशनरियों ने यह आपत्ति उठाई है कि बंबई विश्वविद्यालय के अंतर्गत सरकारी कालेजों के प्रोफेसर परीक्षकों की नियुक्ति में प्राइवेट प्रोफेसरों को कोई स्थान नहीं देते। यद्यपि यह प्रश्न सार्वदेशिक नहीं है तो मै इतना कहना चाहूँगा कि बात ऐसी नहीं है। यह कोई व्यक्तिगत अयोग्यता, अपराध अथवा अन्य कारण होना चाहिये क्योंकि इस विषय में बम्बई विश्वविद्यालय में यह नीति नहीं पाली जाती।

कहना न होगा कि इन तमाम रिपोर्टों, कमीशनों की बातों, वाद-विवादों, मत-मतांतरों से ही जान पड़ता है कि कांट्रोवर्सियां वही थीं जो कि आज हैं। ऐसी कोई नई समस्या नहीं उठी कि जो इतिहास में अभूतपूर्व रही हों और जिन्हें हल करना हमने न चाहा हो। अर्थात समस्या रहेंगी, उन्हें सुलझाने के लिए चरित्रवान अफसर और देश होगा तो बुराइयों से बचकर अच्छाइयों को ही अपनावेगा। और इस पर भी यदि गलतफ़हमी पैदा होगी तो समय और सद्भावना उसका निराकरण भी अंततोगत्वा कर देंगी।

प्रायमरी शिक्षा स्वायत्त संस्थाओं के जिम्मे : मिशनरियों ने अपनी व्यवस्था का स्टेंडर्ड तो बढ़ाया पर सरकारी नीति और आज्ञाओं का घोर विरोध शुरू किया :

कमीशन की सिफारिशों को सरकार ने एकदम मंजूर कर लिया और प्रायमरी स्कूलों को म्युनिसपैल्टियों और लोकलबोर्डों के अधिकार में दे दिया। उस जमाने को म्युनिसपैल्टियों में भी सरकार द्वारा नामजद अफसर ही ज्यादा होते थे इसलिए उसे अफसरी सता से मुक्त नहीं समझा जा सकता। बात यह थी कि उस समय अफसरों के मन में कुछ ऐसी धारणा बन गयी थी कि प्राइवेट हाथों में शालाओं की व्यवस्था यदि सौंपी जायेगी तो उनका स्टेंडर्ड गिर जायगा तथा पिछड़े हुए संप्रदायों की शिक्षा की ओर काफी ध्यान भी न दिया जावेगा। इधर मिशनरियों ने भी अपनी कार्यवाहियां कुछ अल्पसंख्यक संस्थाओं तक सीमित रखीं। हां, उनकी कार्य-कुशलता को खूब समृद्ध बनाया। फिर उनमें भी दो दल पैदा हो गये। सांसारिक इंस्पेक्टरों द्वारा मिशन स्कूलों के निरीक्षण, मिशनरी स्टेंडर्ड से कहीं नीची पाठ्य पुस्तकों, इमारत, घंटों आदि के निस्बत सरकारी नियमों को लेकर यह घोषित किया कि हमारी मिशनें तो अब हमारे दुश्मनों की मेहरबानी पर ही निर्भर या जीवित रह सकती हैं। फिर धर्म-शिक्षा के बारे में जो सरकारी खब्तों से भरे हुकुम निकला करते है उनकी भी कोई तुक नहीं। कहा जाता है पहले पांच घंटों में परीक्षा के विषय पढ़ाये जावें फिर जब छठे घंटे में सब विद्यार्थी थके-मांदे हों तो उन्हें धर्म-शिक्षा दी जावे ? शिक्षा के क्षेत्र में परीक्षा के विषयों मात्र पर ऐसी तोता-रटंत तथा परिश्रम, विशुद्ध धोखा और जाल है। अकेले अंग्रेजी गिटपिट कर लेने की योग्यता के ईसाई ज्ञान का प्रसार नहीं हो सकेगा। विद्यार्थी परीक्षाओं में आसानी से पास हो जाने के वास्ते श्रेष्ठ काम वाले मिशन स्कूलों में भर्ती होकर धर्म-शिक्षा के घंटों में हाज़िर महज इसी लाभ के लोभ में ही जाया करते हैं। इसलिये मिशनों को ऐसे धर्म-निरपेक्ष विषयों के अध्यापन में कोई दिलचस्पी नहीं हो सकती। फिर कभी-कभी

तो एक युग में एक आध धर्म परिवर्तन भर देखने में आया यह चीज भी मिशनों को पसंद न हुई ।

दूसरा दल : शिक्षा का उद्देश्य धर्म परिवर्तन न होकर ईसाई धर्म-उपदेश प्रचार है ।

इस धर्म परिवर्तन के अभाव को ईसाई शिक्षा की सर्वोत्कृष्ट विजय समझने वाली मिशनरियां भी थीं । उनका कहना था कि भले भारतीय लोग सीधे ईसाई न बनें परन्तु ईसाई धर्म तथा ईसा के उपदेशों का प्रसार शिक्षित भारतीयों में बड़ी सुचारुता से होना ही चाहिये । एतदर्थ कुछ उच्च कोटि के स्कूलों की व्यवस्था मात्र से संतुष्ट हो उनमें ज्ञान-प्रसार करना उचित है । सन् १८८२ के बाद मिशनरियों ने अभी तक के अछूते क्षेत्रों में , पहाड़ी जातियों, पिछड़ी जातियों और मूलनिवासियों में अपनी कार्यवाहियां शुरू कर दी हैं ।

प्राइवेट भारतीय शालाओं की स्थापना में देश भक्ति की प्रेरणा प्रधान है और इसका प्रसार प्रायः सभी प्रांतों में हुआ । पूना की डेकन एजूकेशन सोसाइटी और अलीगढ़ का एंग्लो ओरियंटल कालेज भले ही अंग्रेज प्रिंसपलों की अध्यक्षता में खोले गये हों पर उनकी प्रेरणा देश-भक्ति ही थी ।

माध्यमिक प्राइवेट स्कूल ।

१८५४ से लेकर १८८२ के बीच में माध्यमिक पाठशालाओं की संख्या में बहुत वृद्धि हुई । पहले छै वर्षों में तो सरकारी स्कूल बढ़े परन्तु बाद में जब सरकार का प्रधान ध्यान प्रायमरी शिक्षा के प्रसार की ओर चला गया तो इस ओर अधिक परिश्रम न हुआ । तो भी जो संख्या १६९, सन् १८५४ में थी वह १८८२ में १३६३ हो गई । विद्यार्थी भी १८,३३५ से ४४६०५ हो गये । ये तो हुए सरकारी स्कूल परन्तु प्राइवेट स्कल भी सन १८८१—८२ में इस प्रकार रहे :—

प्रांत	भारतीय व्यवस्था		गैर भारतीय	
	अंग्रेजी स्कूल	ग्रांट की रकम	अंग्रेजी स्कूल	ग्रांट की रकम
मद्रास	६९८	८८२८४)	४१८	८५२८९)
बम्बई	१३	१४६५३)	४०	३७३४३)
बंगाल	५८२	१९८६११)	२३	१६४२०)
पश्चिमी बंगाल	१७	१८६४३)	१०४	७८५७१)
पंजाब	२	१५२२)	११८	५१४७१)
मध्यप्रदेश	४	४०५३)	९	१११२६)
आसाम	२५	१०७७१)	४५	६६५०)
योग	१३४१	३,३६८३७)	७५७	२८६८७७)

शिक्षा का ध्येय केवल अंग्रेजी की योग्यतामात्र रहा।

कहना न होगा कि उस युग की माध्यमिक शालाओं में अंग्रेजी के अध्ययन पर बड़ा जोर रहा। इधर ट्रेन्ड शिक्षकों की कमी रही। व्यावसायिक पाठ्य-क्रम की भी कमी रही यद्यपि सन् १८५४ के डिस्पैच ने इसकी ओर ध्यान बराबर आकृष्ट किया था। १८८२ के लगभग बंबई में किसानों के बच्चों को हाई स्कूल में कृषि पढ़ने के वास्ते ४) रु० मासिक की कुछ छात्रवृत्तियां दी गईं। साधारणतः माध्यमिक शालाएं या तो यूनिवर्सिटियों के वास्ते विद्यार्थी तैयार करतीं या सरकारी नौकरियों के। अर्थात् परीक्षा और नौकरी इनके दो मुख्य उद्देश्य बन बैठे हैं। मातृभाषा की

शिक्षा और माध्यम घपले में पड़े रहे, फिर यूरोपीय ज्ञान का प्रसार भी अप्रधान हो गया; केवल अंग्रेजी की योग्यता का ध्येय प्रधान रहा। शिक्षकों को ट्रेनिंग के वास्ते केवल दो संस्थाएं बन पाईं। पहली मद्रास में १८५६ में और दूसरी लाहौर में १८८२ में। पर दोनों में ही कोई प्रेक्टिसिंग स्कूल न थे।

सहायक दान की तीन प्रणालियां :—वेतन अवधि, परीक्षाफल।

जब हंटर कमीशन ने सरकार को माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र से क्रमशः अलग होने को सिफारिश की तो भी प्रत्येक जिले में कम से कम उच्च कोटि का हाई स्कूल संचालित रखने की ड्यूटी पर जोर दिया। कमीशन ने सहायक-दान प्रणाली की तीन विधियां निश्चित की थीं:—(१) वेतन-ग्रांट प्रणाली, (२) निश्चित अवधि प्रणाली और (३) परीक्षा-फल प्रणाली। प्रत्येक प्रणालीके गुण दोषों का विवेचन कमीशन ने किया भी। पहली प्रणाली के योग्य शिक्षकों के हाथ शिक्षा का कार्य तरक्की पावे यह उद्देश्य था; पर साथ ही यह भी भय था कि स्कूल कहीं साधारण फलों मात्र से ही संतुष्ट न होने लगें जो शिक्षा की प्रगति के हक में अभीप्सित नहीं। निश्चित अवधि प्रणाली सरकार के लिये सीधी-सीधी और सुलझी हुई है; पर यही सुलझापन उसका दोष भी है क्योंकि सब ग्रांटें शासकों के ऊपर निर्भर हो जावेंगी, शालाओं की योग्यता पर नहीं। उसी तरह तीसरी प्रणाली शिक्षकों और व्यवस्थापकों को समुचित प्रोत्साहन दे परीक्षा की ओर ध्यान देने को बाध्य करेगी पर कहीं उनका उद्देश्य परीक्षाएं मात्र ही न बन जावे।

प्रायमरी शिक्षाः आत्म-निर्भरता का सिद्धांत कार्य क्षेत्र में। फीस वसूली की कठिनाइयां।

प्रायमरी शिक्षा के क्षेत्र में सन् १८५४ से १८८२ का युग बहुत महत्व-पूर्ण रहा क्योंकि पहली दफा सरकार स्वयं अपने कंधों पर भार लेने के लिए तैयार हुई। यह बात अलग है कि अपने निजी स्कूलों की स्थापना के

बजाय देशी स्कूलों का ही सुधार इस योजना का उद्देश्य माना गया हो। तो भी सरकारी शिक्षा विभागोंने मैकाले की "डाउनवर्ड फिल्ट्रेशन थ्योरी" पर काम किया और देशी स्कूलों की ओर आवश्यक ध्यान न दिया। डिस्पैच ने विद्यार्थियों पर फीस लगाने का सुझाव भी रख दिया था पर भारतीय देशी-शालाओं की प्रणाली और परम्पराओं के यह विरुद्ध था। इसलिए लोगों को भी मासिक फीस नगद देने में असुविधा होती थी। सन् १८५५ में बम्बई ने आंशिक आत्म-निर्भरता की एक प्रणाली के अंतर्गत प्रत्येक गांवय। कस्बोंमें प्रायमरी स्कूलों की स्थापना की पद्धति कायम की। उन्होंने पांच शर्तें पूरी करने पर गांव वालों के लिये स्कूल खोलने का काम शुरू किया :-(१) मास्टरकी आधी तनख्वाह,(२) स्कूली इमारत की हिफाज़त और मरम्मत, (३) आकस्मिक सभी खर्चे, (४) प्रत्येक बालक से एक आना फीस,(५) हर बालक अपनी निजी पाठ्य पुस्तकें रखे। बात यह थी कि सहायक-दान प्रणाली का तकाज़ा था कि स्थानीय सहयोग अथवा प्रयास के बिना ग्रांट न दी जा सकेगी जो कि खास रजामन्दी से उपलब्ध थे ही नहीं। तो बम्बई की प्रथा जो कि बालकों को काम काज की 'गांवती विद्या' देती, सरकारी विद्या की अपेक्षा ज्यादा पसंद आई। मध्य वर्ग के जो लोग प्रयास कर सकते रहे उन्हें अपने बच्चों को अंग्रेजी स्कूलों में भेजना ज्यादा पसंद था। सन् १८५७-५८ की रिपोर्ट में बम्बई के डी० पी० आई० ने बड़ी मजेदार बात लिखी है:—

"कैरा जिले में 'उतुर सुन्दा' नाम का एक समृद्ध धनी गांव है। ३॥ तीन हजार की आबादी सरकारी लगान सालाना ९०००)रु० है। आंशिक आत्म-निर्भर शाला के लिए गाँव को १५०) सालाना देना चाहिये। लोग मास्टर से खुश हैं, परन्तु १५०)रु.देने की विधि पर भिन्न मत हैं। कोई कहते हैं घर-टैक्स बढ़ा दिया जाय, कुछ लगान बढ़ाने को और कुछ कतिपय पदार्थों पर ड्यूटी लगाने को। मैं इसी का निबटारा करने बुलाया गया था। हर ग्रामीण के ऊपर लगभग ।) आने साल का खर्च पड़ता, पर उन्हें पकड़ सकना बड़ा कठिन था। सबको अपना काम छोड़

कर आना पड़ता और आधा दिन व्यर्थ जाता। ब्राम्हण लोगों ने देनेसे इन्कार कर दिया। क्योंकि वे ऊँचे वर्ग के हैं। आखिर झगड़ा तीन दिन तक चला फिर मगनौती (Lots) उठाकर निबटारा करना पड़ा। किस्मत की बात ब्राम्हणों को सबसे कम देने की लॉट निकली और बाकी गांव को ४/५ देना पड़ा। कहना न होगा मामलातदार, डिपुटी कलेक्टर और मुझे कितनी मेहनत करनी पड़ी, इधर किसानों को अलग अपने काम की चिन्ता थी—इससे तो आसान यही होगा कि सब गांव वाले मिलकर स्कूल बन्द करने की एक अर्जी पर दस्तखत ही कर देते।"

मध्यप्रदेश में प्रायमरी शिक्षा।

मध्यप्रदेश ने बंगाल की नाईं देशी शालाओं को विकसित करने तथा नार्मल स्कूलों में उनके शिक्षकों को ट्रेनिंग और छात्र-वृत्ति देकर निश्चित वेतन की गैरन्टी देने की प्रणाली को अपनाया। परन्तु यहां देशी स्कूलों की संख्या थी ही बहुत कम इसलिए सरकारी स्कूल ही खोलने पड़े। १८८१–८२ में मध्यप्रदेश में ४९४ सरकारी स्कूलों में लगभग ५६ हजार विद्यार्थी पढ़ते थे। सहायक-दान वाले स्कूलों की संख्या ३६८ थी जिनमें करीब १९ हजार विद्यार्थी पढ़ते थे। बरार में बम्बई की प्रणाली पर सरकारी स्कूल खोले गये पर देशी शालाओं को भी प्रोत्साहन दिया गया। इस युग में वहां ४६७ सरकारी स्कूलों में लगभग २८ हजार विद्यार्थी और सहायक दान वाले २०९ स्कूलों में ४॥ हजार विद्यार्थी थे। कुछ स्कूल पूर्णतः स्वतंत्र थे। इनकी संख्या २०७ थी और लगभग २॥ हजार विद्यार्थी वहां पढ़ते थे।

सरकारी दान सब सूत्रों की आय का आधा या व्यय का तिहाई होगा।

इस युग में सरकार की आर्थिक कठिनाइयों ने बड़ी अन्तराय उपस्थित की। सन् १८६०–६१ में भारत के रास्तों, पुलिस और स्कूलों के बजट पर बहस करते हुए गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी के अर्थ सदस्य ने अपनी बड़ी असमर्थता प्रकट की। स्थानीय टैक्स ही स्कूलों का खर्च

चलाने के लिए अनिवार्य साधन समझे गये क्योंकि उनसे स्थायी आय प्राप्त हो सकती थी। मध्यप्रदेश की म्युनिसिपैल्टियों ने अपनी आय का ३.०१ प्रतिशत अंश शिक्षा पर खर्च करने के लिए निश्चित किया। सन् १८७१ की फरवरी में यह तय किया गया कि प्रांतीय अथवा केन्द्रीय सरकारों का दान अन्य सभी सूत्रों की आय का आधा अथवा पाठशालाओं के खर्च का तिहाई रहा करेगा। १८८१-८२ में मध्यप्रदेश ने तथा अन्य प्रांतों ने स्कूली खर्चों का विभाजन इस प्रकार किया:—

प्रान्त	प्रान्तीय कोष	म्यु० फंड	फीस	अन्य सूत्र	योग
	ला.हजा.	ला. हजा.	ला. हजा	ला.हजा.	ला.हजा
मद्रास	१,६८	५०,२	३,६८	२,८७	१३,२५
बम्बई	३,४६	७,८७	१,५४	६३	१३,५०
बंगाल	५,६७	१३	१०,७७	४,४५	२१,३२
पश्चिमोत्तर अवध	२,१६	५,४४	५५	८४	४,६६
पंजाब	९७	३,४५	६२	८४	५,८८
मध्यप्रदेश	१	१.४५	२२	३३	३,००
आसाम	२४	५७	१७	२०	१,१८
कुर्ग	४	७	१	—	१२
बरार	१,२५	८८	२६	१	२,४०
	१६,७७	२४,८८	१७,८२	१०,१७	६९६४

इसी तरह भारत की प्रायमरी शिक्षा और स्कूलों के आंकड़े भी हंटर कमीशन ने प्रस्तुत किये जो इस प्रकार हैं:—

प्रान्त	जन संख्या	प्रायमरी स्कूलों के शिक्षार्थियों की संख्या (भारतीय देशी शालाओं को छोड़कर)
मद्रास	३०८,३५,७७५	३६०६४३
बम्बई	१६४६०६६८	३३२६८८
बंगाल	६८१२११६०	८९८३८९
पश्चमोत्तर अवध	४४०७३५३०	२१३२३८
पंजाब	१८८२०८४०	१०२८६७
मध्यप्रदेश	९८३३६५५	७७७३७
आसाम	४८७९७९५	३८१८२
कुर्ग	१७७७८७	३०६९
बरार	२६७१९१७	३४७२८
	१९,५८,७५,१२७	२०६१५४१

कमीशन ने तत्कालीन शिक्षात्मक परिस्थितियों के प्रति आंकड़े इस प्रकार प्रस्तुत किये जिनसे उनके पिछड़ेपन का स्पष्ट आभास मिलता है। इन आंकड़ों में यूरोपियन स्कूलों और शिक्षार्थियों की संख्या सम्मिलित नहीं की गई है।

प्रान्त	बालक प्रतिशत	बालिकाएँ प्रतिशत
मद्रास	१७.७८	१.४८
बम्बई अंग्रेजी	२४.९६	१.८५
देशी	१७.८५	.९३
बंगाल	२०.८२	.८०
पश्चिमोत्तर अवध	८.२५	.२८
पंजाब	१२.११	.७२
मध्यप्रदेश	१०.४९	.४४
आसाम	१४.६१	.४६
कुर्ग	२२.४४	२.८६
हैदराबाद	१७.१०	.२२
	१६.२८	.८४

प्रश्न

(१) सन् १८८२ के कमीशन की माध्यमिक शिक्षा विषयक सिफारिशों को संक्षेप में लिखो। सन् १९०२ के यूनिवर्सिटी कमीशन की नियुक्ति में उन सिफारिशों की क्रियान्विति का किस सीमा तक हाथ है ? (१९३६)

(२) हंटर कमीशन की प्रायमरी शिक्षा विषयक सिफारिशें बताओ। १८८२–१९०४ के बीच उनका क्या प्रभाव पड़ा ? (१९४९)

(३) सन् १८८२ की प्रायमरी शिक्षा विषयक सिफारिशों का सारांश लिखो (१९४८, ३७)

(४) सन् १८८२ के शिक्षा कमीशन की किन्हीं दो मुख्य सिफारिशों का उल्लेख करते हुए बतलाओ कि तुम्हारे प्रान्त में वे कहां तक लागू की गईं (१९४२)

अध्याय ७

व्यावसायिक शिक्षा

(उन्नीसवीं शती)

सन् १८३२ में पहली मेडीकल शिक्षा संस्था । १८३५ में कलकत्ते का मेडीकल कालेज; १८४५ में बंबई का ग्रांट मेडिकल कालेज

भारत में व्यावसायिक शिक्षा का प्रारम्भ औषधि-विज्ञान से हुआ। सन् १८१३ के चार्टर के बाद पहली मेडीकल शिक्षा संस्था सन् १८२२ में कलकत्ते में स्थापित हुई थी। इसकी कक्षायें वास्तव में हिन्दू और मुस्लिम औषधि-पद्धतियों की शिक्षा देने के लिये खोली गई थी। कलकत्ता संस्कृत कालेज और मदरसे में वे कानून की कक्षाओं के समान ही लगाई जाती थीं। जब मैकाले ने पूर्ववाद और पश्चिमवाद की कशमकश में विजय पाई तो इन दोनों ही पद्धतियों को तलाक मिल गया। पूर्ववादियों के दल में इन कक्षाओं के प्रधान भी शामिल थे, परन्तु सरकारी आज्ञा के सामने उनकी एक न चली और लार्ड विलियम बैंटिक ने अंग्रेजी औषधि-विज्ञान के लिए ही आज्ञा दी। इस प्रकार सन् १८३५ की जून में भारत का पहिला मेडीकल कालेज कलकत्ते में कायम हुआ। इसी वर्ष इससे नीची श्रेणी की मेडीकल शिक्षा देने के हेतु मद्रास में भी एक स्कूल खोला गया जहां शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी था। बम्बई प्रांत में तत्कालीन गवर्नर सर रॉबर्ट ग्रांट ने सन् १८३७ में पहली दफा एक मेडिकल कालेज खोलने का विचार सामने रखा, परन्तु इसके बाद शीघ्र ही वे चल बसे। बम्बई की जनता ने चन्दा इकट्ठा किया और सन् १८४५ में उनकी स्मृति में 'ग्रांट मेडीकल कालेज' की स्थापना की।

१८५४ से शती का अंत

सन् १८५४ के वुड-पत्रक के निकलने के साथ ही साथ इन तीनों प्रांतों की मेडीकल संस्थाओं को इंग्लैंड के रॉयल कालेज ऑफ सर्जन्स के

हाथों मान्यता प्राप्त हो गई । बंगाल के कालेज ने सन् १८४४ में चार भारतीय विद्यार्थियों को यूरोप अपनी मेडिकल शिक्षार्थ भेजने का भी अवसर प्राप्त किया गया । 'वुड के पत्रक' के बाद लगभग छः साल बीत गये कोई नया व्यावसायिक कालेज न खुल पाया। वुड के पत्रक ने मेडिकल, इंजीनियरिंग और कानून भर को व्यावसायिक विषय माना है। शायद तत्कालीन युग की यही विचार धारा रही है। सन् १८६० में लाहोर में एक मेडिकल कालेज खुला। इसके सिवा उन्नीसवीं शती के अंत-अंत तक इस क्षेत्र में और कोई प्रगति न हुई क्योंकि भारतीय जनता की पश्चिमी औषधि-विज्ञान में श्रद्धा न थी।अतः उन्हें न तो कोई पढ़ना चाहता था और न उसकी कुछ ऐसी मांग ही थी। कुछ प्रांतों ने लगभग एक-एक मेडीकल स्कूल खोल लिये ; कुछ उपरोक्त चार कालेजों में अपनी छात्रवृत्ति देकर विद्यार्थी भेजते थे। विद्यार्थी अधिकांशतः अंग्रेज और ईसाई हुआ करते। लड़कियां तो और भी कम मेडीकल में जाया करती थीं।

सबसे पहला इंजीनियरिंग कालेज भी लार्ड डैलहोजी के शासन काल में बारिक मास्टरी के नये खुले हुए मुहकमे की तरक्की के ख्याल से सन् १८५६ में खुला। बंबई की नेटिव एजूकेशन सोसाइटी १८२४ से इंजीनियरी की कुछ शिक्षा देना शुरू कर चुकी थी; सन् १८४४ में एल्फिस्टन इंस्टीट्यूट में उसने इसकी कक्षाएं खोल दी थीं। सरकार का जब बारिक मास्टरी का नया मुहकमा खुल गया तब मातहत कर्मचारी ट्रेन करने के लिए सन् १८५४ में एक इंजीनियरिंग और मिकेनिकल स्कूल पूना में खोला गया। इसी तरह रुड़की का टामसन इंजीनियरिंग कालेज सन् १८५४ में उत्तरप्रदेश के स्वर्गवासी लेफ्टिनेन्ट गवर्नर की स्मृति में बनाया गया। इसे खोलने की आवश्यकता गंगा की नहरें बनाने की योजना से ही बढ़ी थी। नहरें बनाने की शिक्षा का सूत्रपात सहारनपुर

सरकारी—मद्रास में १, बंबई में ३, बंगाल में ४, उत्तर प्रदेश में १, पंजाब में १, आसाम में १ ।

प्राइवेट—आसाम में १, सिन्ध में १, पंजाब में ४ ।

में सन् १८४५ में ही हो चुका था। मद्रास का कालेज १८५८–६२ के बीच चला ।

बारिक मास्टरी के मुहकमे के खुलने से लोकप्रियता

इसके बाद जब बारिक-मास्टरी का मुहकमा खुल गया तो सड़कों, रेलों, पुलों, इमारतों इत्यादि की रक्षा के लिये कर्मचारी आवश्यक हुए तथा सरकार ने इनकी विभिन्न श्रेणियाँ भी निश्चित कीं। इन कालेजों से निकलने वालों को जब सरकारी नौकरियों की गैरन्टी मिली तो वे लोक-प्रिय हो गये । अतः लगभग प्रत्येक प्रांत में इंजीनियरिंग और सर्वे शालाएं खोली गईं । कहने का तात्पर्य यह कि उन्नीसवीं शती के अन्त तक इस शिक्षा का महत्व भारत के समक्ष आ गया ।

लॉ कोर्स लोकप्रिय रहा : शिक्षा-विभाग, यूनिवर्सिटी और हाईकोर्टों का सम्मिलित नियंत्रण : स्वतंत्र लॉ कालेज

रही कानून की शिक्षा की बात—तो स्पष्ट है कि उसी के लिये ही कलकत्ता मदरसा और बनारस संस्कृत कालेज खोले गये थे। कलकत्ते के हिन्दू विद्यालय में सन् १८४२ में एक कानून के प्रोफेसर की नियुक्ति हुई और सर्व प्रथम प्रोफेसर हुए 'लयाल' जो एडवोकेट जनरल भी थे। उन्नीसवीं शती में कानून की शिक्षा खूब लोकप्रिय हुई क्योंकि न्यायाधीशों तथा वकीलों के पदों के वास्ते बहुत सारे कानून-दक्षों की आवश्यकता हुई थी । उसमें काफी आमदनी भी थी। शती के अंत तक कानून की शिक्षा का नियंत्रण शिक्षा-विभाग, यूनिवर्सिटी और हाईकोर्टों के सम्मिलित शासन में रहा। सरकारी शिक्षा–विभाग सामान्यतः लॉ कालेज चलाते, यूनिवर्सिटियाँ उनका कोर्स निर्धारित कर परीक्षा लेतीं और हाईकोर्ट कानूनी धंधों में प्रवेश पाने की शर्तें निश्चित करते। अनेक प्रांतों में शिक्षा विभागों और यूनिवर्सिटियों ने अलग से ही लॉ कालेज खोले। हां बंगाल, मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश में आर्ट्स और साइंस कालेजों में अतिरिक्त प्रोफेसरों की नियुक्ति कर एक अतिरिक्त कक्षा जोड़ दी गई।

परन्तु इसके विरुद्ध आंदोलन चल पड़ा, क्योंकि न तो विद्यार्थी कानून को ध्यान से सीखते और न विशेषज्ञ अध्यापक ही उन्हें उपलब्ध हो पाते। अतः स्वतन्त्र ला कालेजों की स्थापना अनिवार्य समझी गई।

कृषि, पशुपालन और वन–विज्ञान :

इन तीन विषयों के अतिरिक्त कृषि-विज्ञान, पशुपालन, वन-विज्ञान, ललित कला और वाणिज्य भी व्यावसायिक विषयों की सीमा में जब आये तो उनके अध्यापन की ओर जनता तथा सरकार दोनों का ही ध्यान गया। मद्रास के सइदापेट स्थान में सरकार एक प्रयोगात्मक खेत चलाती थी; सबसे पहला कृषि कालेज इसी खेत के अंतर्गत सन् १८६४ में खोला गया जिसमें तीन वर्ष का कोर्स पढ़ाया जाता था। सन् १८७९ में पूना कालेज में भी एक कृषि शाखा खोली गई। सन् १८९७-१९०२ की सरकारी पंचवर्षीय रिपोर्ट में कृषि की शिक्षा के ऊपर कुछ पैराग्राफ लिखे गये हैं। ब्रिटिश सरकार ने १८८९ में डाक्टर वोलकर नाम के कृषि विशेषज्ञ को इस विषय पर सलाह देने के लिये भारत भेजा। उन्होंने वर्तमान कोर्स से कृषि शिक्षा को संयुक्त कर देने की सिफारिश की ताकि उसके लिये कोई विशेष सँस्थायें खोलना जरूरी न होवे। इसी तरह यूनिवर्सिटियां भी इस विषय को फिर से ठीक तरह संगठित करें। प्राथमिक शालाओं में कृषि की व्यावहारिक क्रियाओं के अध्यापन पर जोर हो, नार्मल स्कूलों में मास्टरों को इस विषय की ट्रेनिंग देकर उपर्युक्त कार्य के योग्य बनाया जावे और कृषि विभाग के उच्च पदों के योग्य अफसर उत्पन्न करने के लिये यूनिवर्सिटियां प्रबन्ध करें। ऐसी जब सिफारशें हुईं तब सन् १८९४-९७ में सरकार ने कृषि की डिग्रियों, डिप्लोमाओं और प्रमाण-पत्रों को सरकारी नौकरी पाने के लिये उसी कोटि में रखा जिसमें सामान्य बी.ए. और बी. एससी. लोगों को रखा जाता था। तदनुकूल नागपुर में तीन वर्गों वाला कृषि कालेज स्थापित हुआ। एक में मातहत सरकारी नौकरियों के लायक अंग्रेजी भाषा के माध्यम से दो

वर्ष तक विद्यार्थी शिक्षा पाते, दूसरे में नार्मल स्कूल के मास्टर छै महीने की ट्रेनिंग और तीसरे में मालगुजारों, किसानों के लड़के; जिन्हें एक वर्ष तक मातृ-भाषा के जरिये व्यावहारिक ट्रेनिंग दी जाती। लगभग १८६६-१८९९ के बीच पशु-पालन कालेज भी बम्बई, बेलगाचिया और लाहौर में बन गये जिनमें लाहौर का कालेज तो मातृ-भाषा के जरिये शिक्षा देता था। कृषि और पशु-पालन से संबंध रखने वाला तीसरा महत्वपूर्ण विषय वन-विज्ञान भी है। यहां भी सरकारी वन-विभाग के वास्ते मातहत कर्मचारी पाने का सवाल था। इसलिये सरकार ने १८७८ में देहरादून में फॉरेस्ट स्कूल खुलवाया। उधर बम्बई में पूना कालेज में वन-विज्ञान की शाखा और खोली गई। धीरे-धीरे वनों की उपयोगिता का अर्थ समझ में आने लगा। ढोरों के गोबर का खाद यदि खेतों में उपयुक्त हो तो ग्रामीणों को जलाऊ लकड़ी पर्याप्त परिमाण में उपलब्ध हो। जमीन में नमी कायम रखने के लिये जंगलों को बनाये रखना जरूरी है इसलिये वन-विभाग का रखना अनिवार्य हुआ। इस हेतु वन-विज्ञान की संस्थाओं का सगठन जरूरी था।

ललितकला : बंबई का जे. जे. स्कूल : टाटा की उदारता।

ललित कला की शिक्षा का प्रारम्भ सन् १८५६ में बम्बई में सरजमशेदजी जीजीभाई टाटा की उदार दानशीलता के कारण संभव हुआ। जे. जे. आर्ट स्कूल उन्हीं का स्मारक है। अजमेर का आर्ट स्कूल सन् १८७५ में बनाया गया और कलकत्ते का आर्ट स्कूल सन् १८९६ से काम कर रहा है। इन स्कूलों में चित्रकारी, शिल्प, डिजाइनिंग इत्यादि विषयों की ललित कला और उद्योग कला की दृष्टि से शिक्षा दी जाती कि जिससे चतुर-शिक्षक, ड्राफ्टमैन, आर्टिजन इत्यादि पैदा हो सकें। कहना न होगा कि इस दिशा में सरकार का रुख यदि विशुद्ध दुश्मनी का नहीं तो घोर उपेक्षा का अवश्य ही था; क्योंकि एक तो वे व्ययकारी थे दूसरे शासन की दृष्टि से विशेष लाभकारी भी न थे। इस प्रकार की थी व्यावसायिक शिक्षा की हालत शती के अंत में।

अध्याय ८

लार्ड कर्जन की तेजी : बीसवीं शती का प्रारम्भ

(१९००-१९२०)

लार्ड कर्जन की तेजी से सारी नौकरशाही चौकन्ना हो गई

बीसवीं शती के प्रारम्भ में भारत में लार्ड कर्जन ने वाइसराय का पद ग्रहण किया। लार्ड कर्जन की दूरदर्शिता, चतुराई, प्रगतिशीलता और गम्भीरता भारतीय इतिहास में अभूतपूर्व देन थी। जिस सजगता और तेजी के साथ लार्ड कर्ज़न ने शासन-सूत्र संचालित किया, उसी सजगता, बुद्धि जन्य गम्भीरता एवं तेजी से शिक्षा क्षेत्र में भी हाथ डाला। भारतीय जीवन का कोई अंग उसके विद्युततुल्य व्यक्तित्व के प्रभाव से बच न पाया। सरकारी अफसरों की भी बिना सक्रिय हुए खैरियत नहीं रही। ऐसी कोई चीज न थी जिसकी ओर लार्ड कर्जन का ध्यान न जा सकता, ऐसी कोई चालाकी या कमजोरी न थी जिसे कर्ज़न खोज न लेता और ऐसा कोई हुकुम न था कि जिसका यथर-मथर पालन वह बर्दाश्त कर सकता। एक बार शासन और भारतीय जीवन में सजगता की जो लहर कर्ज़न ने फैला दी, उसका सही ही अर्थ लगाया गया हो सो बात नहीं, परन्तु उसके अध्यवसाय, लगन प्रतिभा तथा कुशाग्रता के शासक संसार के इतिहास में बहुत कम होते हैं। कर्ज़न का बड़े से बड़ा दुश्मन भी उसकी इन विशेषताओं का लोहा मानता है। अंग्रेजों की प्रजातंत्री राजनीति में शायद कर्ज़न ही एक ऐसा लार्ड था जिसे वे अपना प्राइम-मिनिस्टर बनाना चाहते थे। कर्ज़न ने भारत के समस्त भाग का दौरा किया; बारीकियों को, बदमाशियों को खुद अपनी आंखों और अक्ल से देखा तथा समझा। नौकरशाहों को अपने एक-छत्र क्षेत्रों में इस प्रकार का हस्तक्षेप बड़ा नागवार गुजरता है, सो वे भी सब चौकन्ना हो गये। मध्यप्रदेश के जबलपुर नगर में जो माडलहाई स्कूल

का परीक्षा-भवन है वह लार्ड कर्ज़न की बारीकी-पसंद प्रकृति का नमूना है। परीक्षा-भवन नगर और मध्यप्रदेश की जरूरत थी, पर प्रांतीय बारिक मास्टरी का मुहकमा हीले-हवालों और ढील-ढाल में आसरा ढूंढ़ रहा था। उन्हें अन्दाज न था कि लार्ड कर्ज़न एक दफा आज्ञा देने के बाद इतनी छोटी सी बात की फिर भी जांच या पूंछतांछ कर सकता है। इसलिए उसके निर्माण में उन्होंने ढील डाल दी, परन्तु कर्जन ऐसा-वैसा न था। उसने इन सब के कान उमेठे और काम संपन्न कराया। शिक्षा के क्षेत्र और कार्यों में कर्ज़न को ऐसे हीले-हवाले और ढीले-पोले शासन से घृणा हुई। उसने अपनी अध्यक्षता में सारे प्रान्तों के डी.पी. आई. लोगों की एक कान्फ्रेंस भराई जिसमें उसने ऐसे पैने और गम्भीर सवालात किये कि अकर्मण्य और कामचोर डी. पी. आई. लोगों की सारी पोलें खुल गईं। उनकी नालायकी खुले आम साबित हुई। एक दफा ही सही; लार्ड कर्ज़न ने भारत की शिक्षा में ईमानदारी, दूरदर्शिता, कर्तव्यशीलता तथा तेजी का संचार कर दिया। उसने संख्या-संवर्धन के स्थान पर क्वालिटी के सुधार पर जोर दिया।

१८८२ के बाद फीस कमाऊ–यूनिवर्सिटियों की बाढ़। शिक्षा-सुधार के बदले शिक्षा-प्रसार, लंदन यूनिवर्सिटी का विधान बदला (१८९८)

१८८२ के बाद सारे देश में ऐसे कालेजों की भरमार शुरू हो गई जो फीसों के बल पर अपना सारा खर्चा चला लेते और विद्यार्थियों को परीक्षायें पास करा देते। उन्होंने, ज्ञान का केन्द्र बनाने की जिन भावनाओं को महत्व सदा से दिया जा रहा था, उन्हें दूर फेंक दिया। लार्ड कर्ज़न ने इसका विरोध किया। तत्कालीन युग के भारतीय नेताओं को यह चीज़ नापसंद थी। गोपाल कृष्ण गोखले ने अपने भाषणों में इसका विरोध किया। उन्होंने लाट साहब के सामने यही मत रखा कि इस समय भारत में ज्ञान के प्रोत्साहन की उतनी जरूरत नहीं है जितनी कि भारतीय मस्तिष्क को दकियानूस, बाबा आदम-वाली विचार-धाराओं से मुक्त कराने की।

पश्चिमी शिक्षा का उद्देश्य पश्चिम के चरित्र, विचारों और जीवन में जो कुछ भी सर्वोत्कृष्ट है उसको पचवा सकना होना चाहिये । एतदर्थ उच्चतम शिक्षा, जरूरी नहीं है बल्कि सभी पश्चिमी शिक्षा । देश की प्रगति और विकास के प्रारम्भिक युग में सुधार की अपेक्षा शिक्षा-विस्तार अधिक जरूरी होता है । जो भी हो पर जिस लंदन यूनिवर्सिटी के माडल पर भारत में सारी यूनिवर्सिटियों की रचना हुई थी उसमें भी परिवर्तन करने और सुझाने के लिए रायल कमीशन मुकर्रर किये गये थे । १८८८ और १८९४ के कमीशनों के श्रम के फलस्वरूप लंदन यूनिवर्सिटी का रूपान्तर १८९८ के एक्ट ने किया । शायद इसी से प्रभावित हो भारत सरकार ने भी २७ जनवरी १९०२ को भारतीय यूनिवर्सिटी-कमीशन नियुक्त किया । यूनिवर्सिटियों मात्र से सम्बन्ध रखने वाले सुझावों को पेश करने वाला यह पहला कमीशन था । इस कमीशन की सिफारिशों का समावेश सन् १९०४ के इंडियन यूनिवर्सिटी एक्ट में है ।

शिक्षा का स्टेजों में विभाजन केवल सुविधा हेतु है : वे परस्पर संबद्ध और आश्रित हैं : कमीशनों के संगठन में यह तत्व भुलाया गया

बात यह है कि शिक्षा का स्टेजों में एकांतिक विभाजन करने से उसमें एकदेशीयपन आ जाता है और समवेत स्वरूप घपले में पड़ जाता है । प्राथमिक, माध्यमिक और उच्चक्षेत्रों का विभाजन सुविधा मात्र का एक अस्थायी तरीका है । हर स्टेज एक दूसरे से सम्बद्ध है, आश्रित है । राजनीतिज्ञों का दृष्टिकोण कभी किसी स्टेज पर और कभी किसी स्टेज पर अधिक महत्व देने का रहता है; वह भी केवल सामयिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही । उस समय आवेश में भले अन्य स्टेजों के साथ सौतिया-व्यवहार हो जावे परन्तु अंततोगत्वा सारी शिक्षा को एक ही मानने से कल्याण होता है । कालेजी शिक्षा के प्रति मात्र आप उदासीन हो जाइये, हाई स्कूलों का बिगाड़ होने लगा; हाई स्कूल को छोड़ दीजिये कालेजों की हालत गिरने लगेगी, और इन दोनों

के प्रति उदासीन हो जाइये, प्रायमरी शिक्षा को हानि पहुँचे बिना रह नहीं सकती। बस यही शासकीय गलती इस यूनिवर्सिटी कमीशन के मामले में हुई। जिस तरह १८८२ के कमीशन को यूनिवर्सिटी स्टेज की शिक्षा से कोई ताल्लुक न रखने को कहा गया उसी तरह इस कमीशन को माध्यमिक शिक्षा पर कोई मत-प्रकाशन की जिम्मेवारी नहीं दी गई। इसलिए इसकी सिफारिशें भी एकदेशीय रहीं और उन्होंने वर्तमान दशा में सुधार के लिए सुझाव पेश किये। कमीशन ने यूनिवर्सिटी–शासन, कालेजों के निरीक्षण तथा संबद्धता पाने के नियमों में सख्ती, विद्यार्थियों के निवास, अध्यापन की जिम्मेवारी, परीक्षा तथा पाठ्य-क्रम में परिवर्तनों के विषय में अपनी सिफारिशें दीं जो कि सन् १९०४ के एक्ट में समाविष्ट हैं।

१९०२ का विश्वविद्यालय कमीशन

अब हम भारत के सन् १९०२ के विश्वविद्यालय कमीशन की सिफारिशों का अवलोकन करें और देखें कि किस सीमा तक उन्होंने शिक्षा के समवेत स्वरूप को अपने दृष्टिकोण में रखा है। कमीशनने कहा है कि :—

भारत की शिक्षा-परंपरा का प्रधान लक्षण यह है कि छात्र अपने अध्यापक के घर में ही रहकर विद्या प्राप्त करते हैं और अध्यापक से पितृवत् स्नेह-अधिकार भी पाते है। हिन्दू पंडित अपने शिष्यों को व्याकरण, तर्क, मीमांसा दर्शन और विधिकी निःशुल्क शिक्षा देते तथा हिन्दू अथवा मुस्लिम शासकों द्वारा प्रदत्त दान से शिक्षा-संचालन करते। यह व्यवस्था यद्यपि अभी उपलब्ध है पर उन्नतिशील नहीं। देशी ज्ञान एवं अंग्रेजी–पद्धति के विद्यालयों के बीच कोई आदान-प्रदान नहीं है। संतोष की बात है कि अब पाश्चात्य विज्ञानों के प्रति जिज्ञासा और उत्साह जागृत हो रहे हैं।

कलकत्ता मदरसा (१७८२) हिन्दू कालेज (१८१७)

अंग्रेजी राज्य के पहले कालेज हिन्दू और मुस्लिम ज्ञान के हेतु खोले गये। सन् १७७२ में वारेन हेस्टिंग्ज ने कलकत्ता मदरसा खोला जिसमें अध्यापक राजा नवकृष्ण ने दान दिया था। राजा राममोहन राय के आंदोलन के फलस्वरूप सन् १८१७ में हिन्दू कालेज खुला जो आर्थिक कठिनाइयों की संक्रांति से गुजरकर सरकारी मदद पा प्रेसी-डेंसी कालेज बना। हिंदू कालेजका उद्देश्य पाश्चात्य ज्ञान था। इसके अतिरिक्त अन्य चर्चों ने भी कालेज खुलवाये।

बम्बई और मद्रास

बम्बई प्रदेश में १८२१ में प्राचीन साहित्य और विज्ञान के अध्ययन-अध्यापनार्थ पूना में एक कालेज खुला जिसे अब डेकन कालेज कहते हैं। एल्फिस्टन कालेज के लिए सन् १८२७ में फंड इकट्ठा किया गया और विल्सन कालेज का प्रारंभ सन् १८३४ में हाईस्कूल के रूप में हुआ था। मद्रास में प्रारंभ से ही अंग्रेजी पद्धति अपनाई गई। सन् १८३७ में क्रिश्चियन कालेज, १८४१ में प्रेसीडेंसी कालेज हाईस्कूल के रूप में, और सन् १८४६ में सेंट जोज़ेफ कालेज स्थापित हुए।

उत्तरप्रदेश-इलाहाबाद यूनिवर्सिटी (१८८७)

उत्तरप्रदेश में काशी का संस्कृत कालेज अंग्रेज जजों के कानूनी सहायकों के उत्पादनार्थ सन् १७९१ में स्थापित हुआ। सन् १८२३ में आगरा में, १८२५ में दिल्ली में (भारतीय कालेज के रूप में) और बरेली में सन् १८५० में (हाईस्कूल सन् १८३६ में) स्थापित हुए। सन् १८४५ में बंगाल की शिक्षा-समिति ने एक यूनिवर्सिटी की स्थापना का सुझाव रखा पर उस पर अमल १८४५ में हुआ। १२ दिसम्बर १८५६ के भारत सरकार के प्रस्ताव के मुताबिक १८५७ में एक्ट पास हुआ और कलकत्ता, बबंई तथा मद्रास की यूनिवर्सिटियां बनी। पंजाब यूनिवर्सिटी सन १८८२ में बनी और

१८८७ में इलाहाबाद यूनिवर्सिटी बनी। प्रत्येक यूनिवर्सिटी के कालेजों की संख्या अब इस प्रकार हुई :—

प्रांत	प्रथम श्रेणी	द्वितीय श्रेणी
कलकत्ता	४६	३२
मद्रास	१५	३९
बंबई	१०	१
इलाहाबाद	१७	१३
पंजाब	८	७

अध्यापनकारिणी यूनिवर्सिटियां

अभी तक तो यूनिवर्सिटियां केवल परीक्षक तथा डिग्री-प्रदाता संस्थाएं रही थीं। अब उनके कार्य क्षेत्र को विस्तृत कर अध्यापन भी उनके जिम्मे किया जावे। यों परीक्षा के जरिये घुमा-फिराकर उनका नियंत्रण अध्यापन के ऊपर है ही, और अन्य कालेज डिग्री की स्टेज तक अध्यापन की सुविधाएं देते ही हैं। सो यदि यूनिवर्सिटी अध्यापन-कार्य अपने ऊपर ले लेगी तो उनके पास उपयुक्त कोष न होगा, क्योंकि प्रोफेसरों आदि की नियुक्तियों का सवाल उठेगा। अतः यूनिवर्सिटियां केवल उच्च कोर्सों के अध्यापन मात्र का ही काम लेवें। अन्य कालेज एक केन्द्रीय स्कूल के रूप में सब कालेजों के प्रोफेसरों तथा उत्तमोत्तम विद्यार्थियों को समवेत कर शिक्षा दिलावें। इसमें प्रोफेसरों को अपने उत्तमोत्तम विद्यार्थी भी एकाएक छोड़ना न पड़ेंगे और यूनिवर्सिटी भी

एक पूरी अध्यापनकारिणी संस्था बनाने के खर्च से बच जावेगी।

अंग्रेजी बोलने-लिखने की क्षमता बहुत असंतोषजनक

भारतीय विश्वविद्यालयों की स्थापना का ध्येय अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पश्चिमी ज्ञान का प्रचार था। इस हेतु अंग्रेजी के अध्यापन को यद्यपि महत्व तो खूब दिया गया पर परिणाम बड़े असंतोषजनक रहे। लड़के डिग्री ले लेते हैं पर अंग्रेजी की एक चिट्ठी तक सही और मुहावरेदार भाषा में नहीं लिख पाते। बोलने में उच्चारण पूर्णत: सदोष रहते हैं। बात यह है कि अभिभावक लोग स्कूल व्यवस्थापकों पर दबाव डालकर बालकों को अगली कक्षा में चढ़ा देने के लिये मजबूर करते हैं, फिर चाहे वे योग्य होवें चाहे न होवें। नीची क्लासों में कम वेतन वाले अयोग्य शिक्षकों से अंग्रेजी माध्यम द्वारा पढ़ाई कराई जाती है, जिसका ऐसा ही प्रतिकूल परिणाम होगा। इसलिये कमीशनने सिफारिश की कि अंग्रेजी का अध्यापन उस स्टेज तक प्रारम्भ न किया जावे जब तक बालक उस भाषा में पढ़ाई जाने वाली हर चीज को समझने लायक न हो जावे। दूसरे ऐसे शिक्षकों को जिनकी मातृ-भाषा अंग्रेजी नहीं है ट्रेनिंग कालेजों में भेजा जावे। वहां अंग्रेजी भाषा और व्यक्तीकरण की उनकी योग्यता की परीक्षा अंग्रेजों द्वारा ली जाकर प्रमाण-पत्र दिये जावें।

एंट्रेंस परीक्षा के लिये नियोजित अंग्रेजी पाठ्य-पुस्तकों का भी सवाल था। कुछ विश्वविद्यालयों ने तो पुस्तकें नियत की थीं पर कुछने नहीं कीं।, पहली श्रेणी का ख्याल था कि बिना पाठ्य पुस्तकों के बालक सिवा शब्द और मुहावरा रटने के और कुछ भाषा नहीं सीख पाते। दूसरे कहते कि किताबें नियत कर देने से बालक, सिवा उन्हें रट लेने के और कुछ नहीं सीखते। पर दोनों के अतिरिक्त सही मत तीसरा ही है। कमीशनने कहा कि किताबों की एक सूची ही नियत कर दी जावे। सूची वैकल्पिक हो परन्तु उसमें वर्णनात्मक, ऐतिहासिक कथावस्तु हो। साथ ही वह उनकी भाषात्मक योग्यता को

संपन्न कर तोता-रटंत मात्रकी आदत को ही तरक्की न देवें। ऊंची कक्षाओं की किताबें भाषा और शैली के उत्कृष्ट नमूने हों। एम. ए. कक्षाओं का अंग्रेजी का कोर्स बहुत सरल था इसलिये उसके साथ कोई भारतीय देशभाषा या क्लासिक भी पढ़ाई जावे। बी. एससी. में अंग्रेजी का विषय अनावश्यक है इसलिये उसके लिये अलग से परीक्षा लेने की जरूरत नहीं।

भारत की अभिजात भाषाएं

अभिजात भाषाओं को देश भाषाओं की अपेक्षा पढ़ाने की अधिक सुविधाएं देना कमीशन की समझ में ठीक नहीं। प्रत्युत यदि देश भाषा और अंग्रेजी साथ-साथ पढ़ाई जावे तो अधिक उत्तम होगा। अभिजात भाषाओं के अध्ययन पर जोर न देने से देश भाषाएं ही लड़के ले लेंगे। परन्तु देशभाषाओं का ज्ञान और मानसिक ट्रेनिंग अभिजात भाषाओं के अध्ययन में सहज ही प्राप्त हो सकती है। संस्कृत, अरबी, फ़ारसी, यूनिवर्सिटियों में मान्य अभिजात भाषाएं हैं। अवेस्ता और पाली को भी मान्यता प्राप्त है।

संस्कृत के अध्यापक चाहे वे अंग्रेज हों चाहे भारतीय, पश्चिम की अध्यापन विधिओं से परिचित हों। इसलिये उन्हें दूसरे विषयों के प्रोफेसरों से किसी भी प्रकार छोटा और नीचा नहीं माना जाना चाहिये। संस्कृत देवनागरी लिपि में हीं लिखी जावे; बंगला अथवा तेलगू लिपि में नहीं। वे लोग अरबी फारसी के अध्यापन के स्तर से संतुष्ट नहीं हुए। रही इन विषयों की भारतीय उपाधियों की बात। वैसे ये अभी प्रचलित तो हैं पर उन्हें यह उचित नहीं लगा कि हमारी यूनिवर्सिटियां ही इसका बोझ ले लेवें क्योंकि उनके पास अभी पर्याप्त निधि नहीं है।

भारत की देश भाषाएं

एम. ए. की परीक्षाओं में अंग्रेजी के साथ देश भाषाओं को

संयुक्त कर देने से उनका गम्भीर अध्ययन प्रोत्साहन पायेगा। यह योग्यता अनुवादों के लिये लाभकारी होगी। इसके लिये अलग से छात्रवृत्तियों की व्यवस्था भी की जावे। देश–भाषाओं के अध्यापन का स्तर जब तक स्कूलों में ऊँचा नहीं होता तब तक यूनिवर्सिटियों का प्रयास विशेष सफलता नहीं प्राप्त कर सकेगा। अतः अंग्रेजी की ही नांई देश भाषाओं के भी सापेक्षत: उच्च कोटि के शिक्षकों की आवश्यकता अनिवार्य कही गई।

देश-भाषाओं के अध्यापकों में उच्च योग्यता अपेक्षित है: लाहौर की बी. ओ. एल. डिग्री-शिक्षा असन्तोषजनक है; अतः सुधार आवश्यक: अंग्रेजी सर्वत्र अनिवार्य हो

इस प्रसंग में पश्चिमी शिक्षा को देश भाषाओं (हिन्दी और उर्दू) के माध्यम से पढ़ाने तथा तदनुकूल पाठ्य-ग्रंथों को अनूदित अथवा प्रकाशित करने की पंजाब यूनिवर्सिटी की प्रणाली थी। उपलक्ष में वह बी. ओ. एल. को डिग्रियां भी देती थी, पर कमीशन इससे संतुष्ट नहीं हुई। विश्वविद्यालय के संस्थापन की शर्तों के अनुकूल भले इसे बंद न किया जावे तो भी कुछ सुझाव अवश्य रखे गये। बात यह है कि साइंस इत्यादि विषयों की अंग्रेज़ी किताबें ही इतनी काफी कठिन है कि उन्हें अंग्रेजी में भी समझा नहीं जा सकता। अतः प्रत्येक स्टेज पर अंग्रेजी अनिवार्य विषय बनाया जावे; प्रोफेसर लोगों की नियुक्ति में उनकी अंग्रेजीविषयक उच्च योग्यता भी देखी जावे। उनके ऐसे भाषणों के प्रकाशनार्थ प्रति वर्ष कुछ कोष नियत किया जावे, परन्तु इस प्रयोग को और यूनिवर्सिटियां भी अपनावें यह सिफारिश नहीं की गई।

यूनिवर्सिटी परीक्षाएं

कालेज की परीक्षाएं सिर्फ इस जाँच के लिये होती हैं कि विद्यार्थी

अपने समय का सदुपयोग कर रहे हैं। परन्तु यह देखना जरूरी है कि यूनिवर्सिटी उनके ज्ञान का मूल्यांकन करती है। इसमें तो शक नहीं कि परीक्षा को महत्व देने से सारी शिक्षा परीक्षा–केंद्रित हो जाती है, परन्तु यदि हम यूनिवर्सिटियों की परीक्षा समाप्त कर देंगे तो भी कोई लाभ व्यावहारिक दृष्टि से नहीं दिखता। मैट्रिक की परीक्षा का स्टेंडर्ड बढ़ा देने के पक्ष में तो वे थे, परन्तु बी. ए. की अध्यापन–अवधि को चार के स्थान पर तीन वर्ष कर देना उन्हें स्वीकार्य नहीं क्योंकि इससे शिक्षा का स्तर गिरता ही। अतः मैट्रिक, इंटर तथा बी. ए. या बी. एस. सी. ये तीनों परीक्षाएं रहनी चाहिये। मैट्रीकुलेशन परीक्षा के स्टेंडर्ड के विषयमें शिकायतें हैं, परन्तु इतनी अधिक संख्या में उम्मीदवार रहते हैं कि मूल सुधार संभव नहीं।

प्राइवेट उम्मीदवार

इंटर और बी. ए. में कमीशनने कहा कि प्राइवेट उम्मीदवारों को अनुमति दी जावे; मैट्रिक में नियंत्रण रहे; नौकरी और यूनिवर्सिटी प्रवेश के हेतु केवल एक ही परीक्षा हो।

इंटर और बी. ए., बी. एस. सी, की परीक्षाओं में प्राइवेट उम्मीदवारों को बैठने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिये। मैट्रिकुलेशन परीक्षा में भी इंस्पैक्टरों अथवा हेडमास्टरों के प्रमाण पत्र पर प्राइवेट विद्यार्थियों को परीक्षामें बैठने देने की प्रणाली कभी भी दुरुपयोग में आ सकती है, इसलिये इस पर पर्याप्त नियंत्रण की आवश्यकता है।

अभी तक सरकारी नौकरियों में प्रवेश पाने की न्यूनतम योग्यता मैट्रिक पास न होकर मैट्रिक में बैठने मात्र का प्रमाणपत्र है। अतः मैट्रिक पास का उद्देश्य केवल कालेजके लिये ही हैं। शिक्षा प्रसार की दृष्टि से हम मैट्रिक पास या बैठना मात्र नौकरी–प्रवेश के लिए

उपयुक्त प्रमाण नहीं मानते । बल्कि दो परीक्षाओं के बजाय केवल एक ही परीक्षा रखी जावे जो यूनिवर्सिटियों और नौकरियों की मांग को पूरी कर सके ।

भारतीय विश्वविद्यालय एक्ट १९०४ : कार्य क्षेत्र व्यापक; भौगोलिक क्षेत्र सीमित, अध्यापकों का हाथ : चुनाव अंश :

एक्ट के अनुसार संक्षेप में यूनिवर्सिटी केवल परीक्षक संस्था मात्र न रहीं । इनके जिम्मे अध्यापन, प्रोफेसरों की नियुक्तियां, यूनिवर्सिटी दानों की व्यवस्था, इमारतों का निर्माण, प्रयोग शालाओं, चित्रालयों, पुस्तकालयों, छात्रावासों की रचना तथा अध्ययन और रिसर्च की सुविधाओं की तरक्की सभी चीजें आगई । सिनेट के फैलो लोगों की संख्या का भी नियमन किया गया ताकि व्यवस्था सुधर सके । सबसे महत्व की बात यह हुई कि उनकी संख्या ५० से कम न होगी और न १०० से अधिक ही । फैलो का कार्य–काल सारे जीवन पर्यन्त न होकर केवल पाँच वर्षों की अवधि तक रहेगा । चुनाव का तत्व युनिवर्सिटियों में डाला गया । पहले नियम था कि नगरों की सीमाओं में रहनेवाले एम. ए. अथवा दस वर्षों बीस वर्षों के ग्रजुएट लोग मिलमिला कर आपस में पदाधिकारी बन लेते थे । इनकी संख्या बहुत कम होती थी । इस एक्ट ने उस संख्या तथा चुनाव के तत्व को बढ़ाया, यूनिवर्सिटी के अध्यापकों को भी सिंडीकेट में प्रतिनिधित्व दिया गया तथा यूनिवर्सिटी का शासन सिंडीकेट के हाथों आया । सिंडीकेट का अध्यक्ष वाइस चान्सलर होता था । डी. पी. आई. लोग राजधानियों में सदस्य होते परन्तु इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में मध्यप्रदेश तथा उत्तरप्रदेश के डी. पी. आई. भी सदस्य बनाये गये । संबद्धता के नियमों में कुछ सख्ती की गई तथा सरकार को सिनेट के ऊपर स्वयं भी कुछ नियम उपनियम बनाने का अधिकार दिया गया । प्रत्येक यूनिवर्सिटी का भौगोलिक क्षेत्र गवर्नर

जनरल द्वारा निश्चित किया जाने लगा जिससे एक ही कालेज दो यूनिवर्सिटियों से संबद्ध न हो; अर्थात् रहे एक भौगोलिक क्षेत्र में पर संबद्ध हो दूसरी यूनिवर्सिटी से, ऐसा न हो सके।

श्री गोपालकृष्ण गोखले इस समय इंपीरियल कौंसिल के सदस्य थे और उन्होंने इस एक्ट की बड़ी गहरी और कदम कदम पर आलोचना की। भारतीय जनमत कई कारणों से इस एक्ट के विरुद्ध हो गया।

गोखले कमीशन की सारी कार्रवाई के विरुद्ध हो गये: भारतीय प्रयासों का कोई प्रतिनिधि नहीं लिया गया था

समझा यह गया कि सरकार अंग्रेज शिक्षाविदों के-अर्थात् सरकारी और मिशनरी कालेजों के अंग्रेज प्रोफेसरों के हाथ में बहुत अधिक सत्ता देकर भारतीय शिक्षा-प्रयासों को उलटा देना चाह रही है। गोखले जी ने कहा कि यदि सरकार केवल अपने अफसरों से परामर्श करती तो हम यह मान लेते कि उसमें अंग्रेजियत आना स्वाभाविक है, पर डा. मिलर को इसमें सम्मिलित करने से उसका अफसरी स्वरूप खत्म होकर विशुद्ध अंग्रेजी स्वरूप हो गया, तथा सारी कारवाईयां गुप्त रखी गईं। भले लार्ड कर्ज़न ने अचानक आखिरी घड़ी पर कमीशन में जस्टिस गुरुदास बैनर्जी को नियुक्त कर लिया, पर जहां मिशनरियों के प्रतिनिधि बाकायदा वहां थे भारतीय प्रयासों का प्रतिनिधित्व करने वाला कोई न था। जिस जल्दबाजी से कमीशन ने देश का दौरा कर अपनी रिपोर्ट दे दी उसमें भी सार्वजनिक अश्रृद्धा जागृत होती है। सारे सुबूतों और बयानों को प्रकाशित न करके समय की कमी तथा अपव्यय की दलील पेश की गई वह थोथी हुई।

भारतीय विरोध की भूमिका राजनैतिक और शासकीय है

सारे बहस-मुबाहसे, वादविवाद तथा वाग्युद्ध की भूमिका

राजनैतिक है और उद्देश्य शासकीय; दोनों की अंतर्धाराएं भारतीयों तथा अंग्रेजों का पारस्परिक अविश्वास, अश्रद्धा और आशंकाएं थीं। शिक्षा के विशेष दृष्टिकोण से उनका कोई महत्व नहीं दिख पड़ता। भारतीय राजनीतिज्ञ यूरोपीयकरणकी धज्जियां उड़ाने में लगे थे, उसे कूप-मंडूक विशेषज्ञों का शिक्षा में शासन घोषित करते थे। जो यूनिवर्सिटियों के अध्यापन-कर्त्तव्यों की बात का नया फतवा था उसमें असल कमी थी धन की; योग्यता इत्यादि तो सब इसीके वशीभूत रहने वाली बातें हैं। सरकारी नामजदगियों के विषय में भारतीय आशंकाएं निर्मूल निकलीं क्योंकि उपयुक्त भारतीय भी नामजद किये गये और यूनिवर्सिटी शासनों का स्तर बाकायदा उन्नतिशील हुआ। बेकार के कालेज भी अन्त हो गये। भले इस एक्ट से यूनिवर्सिटी-शिक्षा प्रणाली का जीर्णोद्धार न हुआ हो पर विद्यार्थियों की संख्या वृद्धि होने के कारण फीसों से आय बढ़ी। उसी प्रमाण में सरकारी सहायक-दान भी बढ़ा। नयी यूनिवर्सिटियां तो नहीं बनी पर सरकारी हाथ उनके संचालन में अवश्य अधिक हो गया। शिक्षार्थियों की संख्या वृद्धि यों किसी प्रयोजन विशेषसे नहीं थीं तथा बेकारी बढ़ने के लक्षण भी दिखने लगे थे। सन् १९०२ में कालेजों की फीस लगभग ४।।।) रु० मासिक थी ; वह भी बाद के वर्षों में बढ़कर लगभग ७) रु० मासिक हो गई :

यूनिटरी और फेडरल यूनिवर्सिटियों का भेद (१९१३ का सरकारी प्रस्ताव)

इस कमीशन और एक्ट के बाद दूसरा महत्वपूर्ण सरकारी कागज २१ फरवरी सन् १९१३ का है जिसमें फेडरल यूनिवर्सिटी और यूनिटरी

यूनिवर्सिटी का भेद साफ-साफ दिखाया गया। पहली श्रेणी में एक भौगोलिक विभाग में फैले हुए अनेकानेक कालेज एक केन्द्रीय यूनिवर्सिटी से सम्बद्ध होते और दूसरी में एक ही स्थान में परीक्षा और अध्यापन साथ-साथ होता। भारत सरकार ने ढाका, अलीगढ़ और बनारस में यूनिटरी तथा रेसीडेंशल यूनिवर्सिटियों की स्थापना मंजूर की। उसी तरह रंगून, पटना और नागपुर में वे तैयार हो गये। मैट्रीकुलेशन विद्यार्थियों की परीक्षा तथा उन स्कूलों को मान्यता देने का अधिकार सरकारी शिक्षा बोर्डों को दिये जाने की मंजूरी दी गई। इन बोर्डों का संगठन प्रांतीय शिक्षा विभाग की अध्यक्षता में होना निश्चित हुआ।

१९१६ के बाद ही नयी यूनिवर्सिटियाँ लगभग हर प्रांत में बनने लगीं।

सरकारी ग्रांटों और यूनिवर्सिटी के कार्यों में वृद्धि।

सन् १८८७ और १९१६ के बीच कोई नई यूनिवर्सिटी न बनी। अंतिम यूनिवर्सिटी इलाहाबाद ही की थी। पर सन् १९१६ के बाद पाँच ही वर्ष में उपर्युक्त प्रस्ताव के अनुकूल सात और विश्वविद्यालय बन गये। मैसूर रियासत के लिए मैसूर विश्वविद्यालय सन् १९१६ में, बिहार उड़ीसा के वास्ते पटना विश्वविद्यालय सन् १९१७ में, बनारस (अध्यापन और निवासार्थ) सन् १९१५ के एक्ट के मुताबिक सन् १९१७ में, उस्मानिया १९१८ में, अलीगढ़, ढाका और लखनऊ सन् १९२० में। केवल उस्मानिया भर में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी न होकर उर्दू हुआ। १९०४-०५ से लेकर १९११-१२ के बीच सरकारी ग्रांटें भी खूब बढ़ा दी गई। लगभग २५ लाख अस्थायी ग्रांट ही हुई, फिर वार्षिक ग्रांट लगभग ४ लाख के होती रही। इसके अतिरिक्त और भी विशेष ग्रांटें देने की नीति को कार्यान्वित किया जाता रहा। यूनिवर्सिटियों ने भी दिग्गज पंडितों की नियुक्ति, विशेष भाषणों, विषयों और ग्रेजुयेटोत्तर कक्षाओं की योजनाएँ चलाईं। इस तरह निवास-योग्य और अध्ययन करने वाली यूनिवर्सिटियों की अच्छी प्रणाली भारत में चल निकली कि जिनके विषय में सन् १९१७ में 'सैडलर कमीशन' की नियुक्ति हुई। माध्यमिक और कालेजी शिक्षा

के क्षेत्र में इस कमीशन की रिपोर्ट का अंतर्प्रांतीय महत्व है। उसकी रिपोर्ट पर विचार करने के पूर्व इस युग की माध्यमिक शिक्षा की दशा का अवलोकन करना उचित होगा।

माध्यमिक शालाओं को दो से मान्यता लेना पड़ती : शिक्षा विभाग और यूनिवर्सिटी से।

मान्यता–प्राप्ति की बहुतेरी शर्तें : शिक्षक, वेतनमान, विषय इत्यादि। मास्टरों की ट्रेनिंग की व्यवस्था में सुधार।

बीसवीं शती के प्रारम्भ में माध्यमिक शालाओं की मान्यता और सम्बद्धता इत्यादि के प्रश्न अपने नये स्वरूप में आये। क्योंकि यहाँ भी संख्या–संवर्धन की अपेक्षा क्वालिटी का सुधार लक्ष्य बना। इस तरह प्रत्येक माध्यमिक शाला को दो प्रकार की मान्यताएं प्राप्त करना होती थीं; पहली मान्यता सरकार से मिले जिससे उन्हें सहायक-दान की निधि मिलने लगे और दूसरी यूनिवर्सिटी से ताकि उनके विद्यार्थी परीक्षाओं में प्रवेश पा सकें। सन् १९०५ में यह हालत हुई कि जिस स्कूल को मान्यता प्राप्त नहीं थी उसका ट्रांसफर सार्टिफिकेट भी मान्यता–प्राप्त स्कूल में अस्वीकार किये जाने का नियम बना। इस तरह मान्यता अब स्कूलों के जीवनमरण का ही प्रश्न था। माध्यमिक शालाओं पर किया गया यह नियंत्रण स्वभावतः उनकी स्वतंत्रता को अपहरण करने वाला सिद्ध हुआ। इस नियंत्रण की शर्तों में ग्रेजुयेट अथवा ट्रेंड शिक्षकों की भर्ती आवश्यक करार दी गई। उनका वेतन मान कमसे कम ४०) रु० मासिक किया गया। बालकों के लिए छात्रावास रखना भी जरूरी हुआ और विज्ञान, मैन्युअल-ट्रेनिंग, इत्यादि जैसे वैज्ञानिक विषयों का अध्ययन एवं सुधार किया जाना आवश्यक कहा गया। इसके साथ-साथ ट्रेनिंग कालेजों की संख्या बढ़ाने तथा उनमें सुधार करने की योजनाएं पेश की गई। जिले में केवल एक सरकारी हाई स्कूल आदर्श रूप में रखने की सरकारी नीति पर भारतीय जनमत कुछ असंतुष्ट था क्योंकि वे प्राइवेट स्कूलों को अधिक ग्रांट दिलाने

के हामी थे जो इन मॉडल स्कूलों को बंद करके आसानी से दी जा सकती थी क्योंकि उनकी कमजोरी का प्रधान कारण द्रव्याभाव ही था। इस युग में मास्टरों की ट्रेनिंग के उपलक्ष में यूनिवर्सिटी डिग्री अथवा डिप्लोमा देना ट्रेनिंग के सुधार का साधन माना गया। प्रत्येक ट्रेनिंग कालेज में उपयुक्त पुस्तकालय, विचित्रालय, तथा प्रान्त के विविध चित्र, रिकार्ड और अध्यापन की अन्य सामग्रियां एकत्रित की जावें। प्रत्येक ट्रेनिंग कालेज में अध्यापनार्थ स्कूलों का रहना भी आवश्यक हुआ। साथ ही अन्ट्रेन्डों तथा पुराने ट्रेन्ड शिक्षकों के लिए रिफ्रेशर कोर्सों की व्यवस्था की ओर संकेत किया गया। सन् १९२१–२२ तक मध्यप्रदेश में ट्रेन्ड शिक्षकों की २६.५ से लेकर ६७.५ प्रतिशत वृद्धि हुई। सरकारी स्कूलों के १९० शिक्षकों में से १६७ शिक्षक ग्रेजुयेट थे।

मिडिल स्कूलों में मातृभाषा शिक्षा का माध्यम होने लगी।

उत्तर प्रदेश और मद्रास प्रांतों में मैट्रिकुलेशन परीक्षाओं के लिए वैकल्पिक विषयों की विविधता प्रस्तुत की गई। इसमें चार विषय तो अनिवार्य होते पर एक वैकल्पिक जो लगभग ११ विषयों की लिस्ट में से चुना जाता। मौखिक परीक्षाएं संस्कृत तथा मातृ-भाषाओं में रखी तो गईं पर बाद में असुविधा-जनक होनेके कारण तोड़ दीं गई। सन् १९०२ के कमीशन ने मास्टरों को अंग्रेजी भाषा में दक्षता प्राप्त करने पर जोर दिया तथा ट्रेनिंग कालेजों में इस विषय के संभाषण इत्यादि की ट्रेनिंग आवश्यक बताई। परन्तु शायद यह जोर देने की बात सापेक्षतः अधिक ही हो गई। शिक्षा का माध्यम सन् १९२१–२२ तक भारतीय भाषाएं कम से कम मिडिल स्कूल स्टेज में होने के लायक बनने लगीं। सन् १९१५ में भारत–सरकार के शिक्षा सदस्य सर हारकोर्ट बटलर ने मातृभाषाओं के माध्यम की नीति को केवल नीति ही नहीं बल्कि अल्पव्यय की नीति कहा कि जिससे शिक्षादान अधिक और सुचारु ढंग से हो सकेगा।

इस प्रकार की भूमिका में "सैडलर कमीशन" का निर्माण हुआ—

प्रायमरी शिक्षा : लार्ड कर्जन ने इसे शासकीय आवश्यकता घोषित किया : अतः अधिक खर्च होना चाहिये ।

यों तो बीसवीं शती की प्रारंभिक दशाब्दी यूनिवर्सिटी और माध्यमिक शिक्षा की हलचल का युग है तो भी जैसा पहले कहा जा चुका है उसका प्रभाव प्रायमरी शिक्षा पर अवश्यमेव पड़ता ही है । पर लार्ड कर्जन की पैनी आंखों से वह न बच सका और प्रायमरी शिक्षा में सुधार करने के लिए उनके हुकुम बाकायदा निकले । प्रांतीय सरकारों को प्रायमरी शिक्षा के ऊपर ज्यादा कोष अर्पित करने की हिदायतें दी गईं । बात असल यह है कि अज्ञानपूर्ण जनता किसी भी शासन व्यवस्था के स्थायित्व के लिए लाभकारी नहीं हुआ करती । संभवतः प्रारंभिक अंग्रेजी शासकों ने जो शिक्षा-प्रसार की योजनाओं को उत्साहित किया उसमें यह प्रेरणा भी विद्यमान रही हो । पर लार्ड कर्जन शायद मूर्ख जनता की सरकार का राजा बनना बहुत अधिक पसंद नहीं करता था इसलिए उसने ज्यादा खर्च करने के लिये प्रांतीय सरकारों से कहा ।

परीक्षाफलों के अतिरिक्त अन्य कारणों पर भी ग्रांटें दी जावें : बड़ौदा में अनिवार्य निःशुल्क प्रायमरी शिक्षा (१९०६): कानूनी अनिवार्यता के पक्ष-विपक्ष की दलीलें ।

परीक्षाफलों के आधार पर दी जाने वाली ग्रांटों पर सदा से मतभेद रहता आया है । १८८२ के कमीशन की सिफारिशों के कारण इसे बहुत अधिक अपनाया गया । पर अब इनके अतिरिक्त भी अन्य शर्तों की पूर्ति कराना आवश्यक था । इसलिए सरकार ने सुझाव रखा कि परीक्षाफलों के अतिरिक्त कोई ऐसी प्रेरणा भी शिक्षा में रहनी चाहिये कि जिससे ग्रांटों की रकम अधिक स्थायी रूप से दी जा सकना संभव हो । सन् १९०६ में बड़ौदा के महाराज ने अपनी रियासत में अनिवार्य और निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा का प्रारम्भ कर दिया । लोग इसलिए शोर करने

लगे कि भारत सरकार को भी इस प्रथा का अनुसरण करना चाहिये ताकि अल्पातिअल्प समय में सार्वजनिक शिक्षा सम्पन्न की जा सके। इस माँग का उद्‌घोष श्री गोपालकृष्ण गोखले ने १९ मार्च १९१० को इंपीरियल लेजिस्लेटिव कौन्सिल में पेश किया। परन्तु कोई खास प्रगति न हो सकी। हाँ स्थानीय स्वराज्य की संस्थाओं को अलवत्ता किन्हीं सीमाओं के भीतर अनिवार्य-शिक्षा प्रारम्भ करने का कर्तव्य बताया गया। बात असल यह थी कि भारतवर्ष में अनिवार्य शिक्षा की ऐसी किसी मांग का अनुभव अभी तक होता नहीं था; दूसरे शिक्षा जैसे विषय में कानूनन अनिवार्यता लाने की बात तो लाचारी दर्जे की बात होगी। जहां तक बन सके पहले स्वयमेव सहयोग से शिक्षा देने की प्रणाली को प्रोत्साहन दिया जावे। और यह प्रोत्साहन शिक्षा तथा शिक्षा-संस्थाओं के विस्तार एवं प्रसार से सम्भव हो सकता है। इस काम के वास्ते अतिरिक्त कोष चाहिये, अतिरिक्त शालाएं खोली जावें, तथा अन्य आवश्यक सामग्री प्रस्तुत की जावे;—ऐसे तमाम प्रश्न उठे। फिर अनेकानेक शासकीय कठिनाइयां एकाएक उठ खड़ी हुई। कहा गया कि यदि अधिक सख्ती बरती गई तो उन गरीब माता-पिताओं को बड़ी हानि उठाना पड़ेगी जिनकी जीविका का अल्पांश बच्चों की कमाई पर भी निर्भर रहता है; अतः सजाओं की बहुत धमकियां काम न देंगी। उधर सन् १९११–१२ में जब सम्राट पंचम जार्ज का भारत में अभिषेक हुआ तो पचास लाख रुपयों की सालाना ग्रांट सार्वजनिक शिक्षा के लिए घोषित की गई। इसी के बाद २१ फरवरी १९१३ में सरकारी प्रस्ताव पास हुआ।

अध्याय ६

सन् १९१३ का सरकारी प्रस्ताव

संख्या और क्वालिटी की कशमकश का माध्यमिक स्टेज में प्रसार ।

इस प्रस्ताव में युग की 'संख्या' और 'क्वालिटी' के बीच की कशमकश का चित्रण है । सन् १९०४ के भारतीय विश्वविद्यालय एक्ट में भारतीय व्यवस्था और सरकारी व्यवस्था की सापेक्षिक श्रेष्ठता का प्रश्न उठ गया था, परन्तु यह प्रश्न केवल उच्च शिक्षा तक ही सीमित रहा । सन् १९०५–८ के बीच में यही बात माध्यमिक शिक्षा में आकर खड़ी हुई कि जिसके बाद सन् १९११–१२ में महात्मा गोपालकृष्ण गोखले ने अनिवार्य शिक्षा का बिल पेश किया । यह भी ऊपर कही गई कशमकश का ही प्रतीक था और उसमें भारतीय दृष्टिकोण निहित था । गोखले महाशय का मत सरकार को मान्य न हुआ और २१ फरवरी सन १९१३ को अपनी नीति का स्पष्टीकरण करते हुए सरकार ने प्रस्ताव पास किया । इस प्रस्ताव नें सामान्य बातों पर तथा प्रायमरी, माध्यमिक और कालेजी शिक्षा के ऊपर सरकारी दृष्टिकोण सामने रखा जिसमें भारतीय दृष्टिकोण की एकदम ही अवहेलना नहीं है । सार्वजनिक शिक्षा के प्रसार के लिए उन्होंने नियम बनाये । इन नियमों से स्पष्ट हुआ कि उपरोक्त कशमकश अब शिक्षा के सभी क्षेत्रों में व्यापक हो गई थी । प्रस्ताव में नीचे लिखी बातें समाविष्ट हैं:—

प्रायमरी शिक्षा

प्रायमरी–शिक्षा को एकदम सर्वत्र निःशुल्क कर सकना व्यावहारिक नहीं

सरकारी कोष के ऊपर निरक्षरता-नाश एवं प्रायमरी शिक्षा का पहला दावा है । यह अब की परिस्थितियों से पूर्णतः निर्विवाद भी

हो चुका है। परन्तु शासकीय एवं आर्थिक दृष्टि से प्रायमरी शिक्षा की अनिवार्यता का सिद्धांत स्वीकार करना संभव नहीं, तथापि उसके स्वेच्छापूर्ण प्रसार को पूर्ण प्रोत्साहन मिलना चाहिये। प्रायमरी शिक्षा निःशुल्क भी दे सकना संभव नहीं क्योंकि जो कुछ भी फीस इकट्ठी होती है वह कुछ अंशों तक प्रायमरी शिक्षा के विस्तार के ही मद में खर्च होती है, वैसे यह फीस उन्हीं बालकों से ली जाती है जो कि दे सकते हैं। यदि यह भी बन्द कर दी जावे तो जिन अनेक ग्रामों में शालाओं की आवश्यकता है उन्हें और भी दीर्घ काल तक शालाओं से वंचित रहने को ही बाध्य होना पड़ेगा। अनेक प्रांत निःशुल्क प्रायमरी शिक्षा के सिद्धांत को कार्यान्वित कर रहे हैं तथा जो निर्धन और पिछड़े सामाजिक वर्ग हैं उनके लिए तो यह सिद्धांत और भी लगन के साथ बरते जा रहे हैं। इससे ज्यादा कुछ कर सकना तो गैर मुमकिन है। तो भी प्रसार के लिए लोअर प्रायमरी स्कूलों का विस्तार किया जावे जहाँ पढ़ना-लिखना और गणित ड्राइंग, गांव का नक्शा, प्रकृति-विज्ञान और शारीरिक व्यायाम की शिक्षा दी जावेगी। जहां बने स्थानीय संस्थाओं की तथा अन्य मान्य संस्थाओं की व्यवस्था में, सहायक-दान से शालाओं को प्रोत्साहन मिले। ऐसे मकतबों और पाठशालाओं को जो सामान्य ज्ञान की शिक्षा देश-भाषाओं के जरिये देने को प्रस्तुत हैं उदार सहायक-निधि देना लाभकारी होगा। परन्तु हर किसी नौसिखिये की शाला को बिना सख्त निरीक्षण और मान्यता के निधि न दी जावे।

ग्रामीण और शहरी पाठ्य क्रम : शिक्षकों की ट्रेनिंग और नौकरी की शर्तों में सुधार हो।

प्रस्तुत परिस्थितियों में ग्रामीण और शहरी पाठ्यक्रमों में कोई सीधा-सादा भेद कर सकना व्यावहारिक नहीं है तो भी प्राकृतिक वातावरण के कुछ साधारण ज्ञान की बातों का भेद किया जा सकता है। ज्यों-ज्यों उपयुक्त शिक्षक मिलते जावेंगे इस भेद को अधिक स्पष्टता

पूर्वक सूक्ष्म बनाना संभव होगा। शिक्षकों की भर्ती उसी क्षेत्र से हो जहाँ उन्हें आकर सर्विस करना होगी। शिक्षक को कम से कम हिन्दी मिडिल पास होना चाहिये। यदि यह न होवे तो उनकी ट्रेनिंग की अवधि शिक्षण-अनुभव के अभाव में दो वर्ष की हो। पहले तो स्थानीय पाठशालाओं में ही यह ट्रेनिंग दे दी जावे पर ज्यों-ज्यों कोष उपलब्ध हो उन्हें केन्द्रीय नार्मल स्कूलों में ही देना ठीक है तथा प्रत्येक ऐसी शाला के साथ अध्यापनार्थ स्कूल (प्रेक्टिसिंग) होना चाहिये। स्कूली छुट्टियों में जिनकी ट्रेनिंग पुरानी हो चुकी है उन अध्यापकों को भी फिर से कुछ अल्पकालीन ट्रेनिंग देना आवश्यक है। उन्हें १२) मासिक से कम का वेतन न दिया जावे तथा सर्विस की शर्तें ऐसी हों कि उन्हें पेंशन अथवा प्राव्हीडेंट फंड का अधिकार मिले। हिन्दी मिडिल स्कूलों की संख्या और क्वालिटी में भी सुधार किया जावे तथा इमारतें स्वस्थ वातावरण में ही बनाई जावें परन्तु बहुत ज्यादा खर्च उनके निर्माण में न हो। इन नियमों को लागू करने में विवेक से काम करना आवश्यक है क्योंकि प्रांतों-प्रांतों की अवस्था और दशा अलग हैं। बोर्ड और सहायक-दान वाली शालाओं में भी भेद है इसलिये जो नियम जहाँ की परिस्थितियों में उपयुक्त हों वे वहाँ ही लगाया जावें सर्वत्र नहीं,; यथा बंगाल में अभी ही काफी स्कूल हैं, लगभग हर तीन वर्ग मील के फासले पर, तो वहां नये स्कूल खुलवाना इतना जरूरी नहीं—कहीं मास्टर, लोग १२) रु० से भी अधिक वेतन पाते हैं तो उनका वेतन घटाने की इच्छा भी नहीं होनी चाहिये।

कहने का सार यह कि सरकार ने किन्हीं सीमाओं तक संख्याओं के संवर्धन के सिद्धांत को माना पर साथ में उनकी सुयोग्यता ही पर प्रधान जोर दिया।

प्रायमरी स्कूलों के शिक्षकों तथा शिक्षा की क्वालिटी : साक्षरता-वृद्धि : भारतीय शालाएं समाप्त।

इस प्रस्ताव ने प्रायमरी स्कूल के मास्टरों की ट्रेनिंग के बारे

में महत्वपूर्ण निर्णय घोषित किये। हिन्दी मिडिल अथवा इसके समान स्टेज तक उनको शिक्षा होनी चाहिये। तथा उन्हीं विद्यार्थियों को अध्यापक के कार्य के लिए प्रोत्साहित किया जावे कि जिनके बीच उन्हें पढ़ाना होगा। ट्रेनिंग का कार्यकाल साधारणतः एक वर्ष का रखा गया। उनकी मासिक तनख्वाह की दर १२) रु० मासिक से कम न रखने की आज्ञा दी गई। एक शिक्षक के जिम्मे अधिक से अधिक ५० छात्रों की संख्या रहे वैसे होना तो ३०–४० के बीच में ही चाहिये। कहने का तात्पर्य यह कि इस प्रस्ताव का जोर प्रायमरी शिक्षा की क्वालिटी सुधारने पर था, संख्या की वृद्धि पर नहीं। सन् १९१८ में श्रीयुत विट्ठल-भाई पटेल ने बम्बई प्रायमरी शिक्षा एक्ट पास करवाया। इसके फल-स्वरूप म्युनिसिपैल्टियों को किन्हीं खास सीमाओं के भीतर अपने-अपने क्षेत्रों में अनिवार्य शिक्षा प्रारम्भ करने के अधिकार दिये गये। इसी तरह गोपाल कृष्ण गोखले की परम्परा में पंजाब, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मद्रास और मध्यप्रदेश में भी अनिवार्य शिक्षा एक्ट सन् १९२० के पहले पहले पास हो गये। इनके फलस्वरूप ही शायद सन् १९२१ की जन-गणना में साक्षरता का प्रसार कुछ सीमा तक हुआ। वैसे यह सीमा बड़ी लुभावनी नहीं है तो भी काम हुआ इसमें सन्देह नहीं। क्योंकि एक बड़ी कठिनाई जो साक्षरता प्रसार के बीच आई वह यह थी कि भारतीय देशी पाठशालाएं प्रायः भारत से समाप्त ही हो चुकी थीं।

ट्रेनिंग-संस्थाओं की संख्या वृद्धि : ग्रामीण नॉर्मल-स्कूलों के निर्माण में कठिनाइयाँ।

प्रायमरी मास्टरों की ट्रेनिंग का सूत्रपात दरअसल बम्बई में 'वुड के पत्रक' के पहले ही हो चुका था। बम्बई नेटिव एजूकेशन सोसायटी ने तथा एलिफिंस्टन इंस्टीट्यूशन ने उन्हें ट्रेनिंग की शिक्षा दी। उत्तर प्रदेश में काशी में भी एक ऐसा ही नार्मल स्कूल इस युग में रहा। १८५७ की गदर के पहले आगरे के एक नार्मल स्कूल का जिक्र मिलता है परन्तु शायद उसकी

स्थापना की सरकारी स्वीकृति के सिवा वह काम नहीं कर पाये। शती के अंत होते-होते और १८८२ के शिक्षा-कमीशन की नियुक्ति के होते-होते प्रायः प्रत्येक प्रांत में एक से अनेक ट्रेनिंग संस्थायें खुल गईं। मध्यप्रदेश में ही तीन संस्थाएं पुरुषों के लिए और एक स्त्रियों के लिए खुल चुकी थीं। सब मिलाकर १८८ मास्टर ट्रेनिंग पाते थे। सरकार का उद्देश्य यह था कि ग्रामीण प्रदेशों के शिक्षकों को स्थानीय आवश्यकताओं के अनुकूल ट्रेनिंग दी जावे ताकि उन्हें अपने अपने गांवों से दूर जाने की मजबूरी न उठाना पड़े। परन्तु यहाँ भी उलझन थी। यदि नार्मल स्कूल बड़ा रखना है तो उसे शहर में रखना होगा और यदि छोटा है तो फिर एक-आध मास्टर के ही जिम्मे सारी ट्रेनिंग का भार छोड़ना होगा। मध्यप्रदेश और बम्बई के नार्मल स्कूल बड़े रहे और उत्तर प्रदेश के छोटे और उपरोक्त सत्य दोनों के ही अनुभव से प्राप्त हुआ। शिक्षा-कमीशन को भी नार्मल स्कूल बड़े खर्चे की मद जान पड़े। लोगों ने कहना शुरू कर दिया कि देशी गुरू जी अच्छे हैं, बिना ट्रेनिंग के भी अच्छा पढ़ा लेते हैं और जो बुरे हैं उन्हें कितनी ही ट्रेनिंग नहीं सुधार सकती। प्रायमरी मास्टरों की सामान्य शिक्षा का स्तर बड़ा असन्तोषजनक था इसलिए उसे कम से कम मैट्रिक तक की शिक्षा मातृ-भाषा के माध्यम से दिये जाने का प्रस्ताव सामने आया। यह युग १९२० के करीब का है। ट्रेनिंग के बाद मास्टरों के वेतन का प्रश्न भी बड़ी विभीषिका बनकर रहा क्योंकि उचित वेतन के अभाव में संतोष-दायक मास्टरों का पाना दुर्लभ हो रहा था।

माध्यमिक शिक्षा

मान्यता को अनिच्छुक शालाएं और उनके शिक्षार्थी : एक समस्या।

शती की पहली दशाब्दी में देखने में आया कि कुछ तो ऐसे हाई स्कूल फिर भी मोजूद हैं कि जिन्हें न तो सरकारी मान्यता मिली है, और न यूनिवर्सिटी मान्यता-ही जो उन्हें सहायक-दान निधि अथवा मैट्रिक

के लिए उम्मीदवार भिजवाने का अधिकार प्राप्त करातीं। ऐसे स्कूलों को वैसे इसकी परवाह भी नहीं है और न इच्छा ही, तो भी उन पर कुछ सरकारी नियंत्रण रखना आवश्यक समझा गया। सन् १९०६ तक मद्रास में विशेषत: ऐसे स्कूलों का प्रमाण-पत्र मान्यता प्राप्त स्कूलों में जाने पर किसी काम का नहीं था अर्थात् बालक संकट में पड़ जाता था। ऐसी हालत में सरकारी मान्यता का सामाजिक महत्व बढ़ गया, जिसके अभाव में लोग मान्यता-शून्य शालाओं में अपनी संतान को न भेजेंगे। किन्तु सरकार का उद्देश्य केवल नियंत्रण-मात्र था पूरी व्यवस्था ही अपने हाथ में ले लेने का नहीं। इस बात पर प्रस्ताव में काफी प्रकाश डाला गया है।

प्राइवेट—व्यवस्था की सीमाएं : सरकारी नियंत्रण का क्षेत्र।

सन् १८५४ के डिस्पैच से शुरू होकर सन् १८८२ के हंटर कमीशन द्वारा समर्थन पा सरकारी नीति सदैव यही रही है कि माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्था प्राइवेट सस्थाओं के हाथों में ही रहे। सरकारी व्यवस्था किस प्रमाण में और किस सीमा तक इस क्षेत्र में अपना हाथ सिकोड़े यह बात विचारणीय तो अवश्य है पर सरकारी नियंत्रण का परोक्षरूप रहना अनिवार्य रहेगा और उसमें ढील नहीं डाली जा सकती। सन् १९०४ के सरकारी प्रस्ताव ने भी प्राइवेट व्यवस्था और सरकारी नियंत्रण की ऐसी मिलीजुली नीति की घोषणा की थी; पर इसका आधार प्राइवेट व्यवस्था की सरकारी व्यवस्था से श्रेष्ठता नहीं है वरन् इसका आधार यह है कि सरकार की अपनी सारी निधि और ध्यान प्रायमरी शिक्षा के सुधार और प्रसार पर ही केन्द्रीभूत रहे। सारांश यह कि प्राइवेट व्यवस्था वाले हाई स्कूलों को सरकारी निरीक्षण, मान्यता, नियंत्रण और सहायक-दान की निधि के मातहत पूरी इम्दाद दी जावेगी।

ट्रेनिंग प्राप्त मास्टरों की संख्या में संवर्धन:सरकारी हाई स्कूल अनुकरणीय मॉडल के रूप में संगठित हों

इस तरह एक ओर प्रस्ताव ने प्राइवेट स्कूलों की संख्या संवर्धन

की घोषणा की तो दूसरी ओर वर्तमान सरकारी हाई स्कूलों के सुधार के भी नियम प्रस्तुत किये। इन स्कूलों में केवल ग्रेजुयेट अथवा ट्रेनिंग शुदा मास्टरों को ही सर्विस में लगाया जा सकता था। अंग्रेजी के शिक्षकों का वेतन-मान बाकायदा कम से कम ४०) रु. से शुरू होकर अधिक से अधिक ४००) रु. मासिक के बीच में रहा करेगा। बोर्डिंगों तथा मैन्युअल ट्रेनिंग और विज्ञान आदि के विषयों के अध्यापन में सुधार भी आवश्यक करार दिया गया। जहां सरकारी स्कूल, स्थानीय परिस्थितियों, शिक्षात्मक प्रयासों और व्यय के प्रसंग में आवश्यक जान पड़ें वहां उन्हें नये सिरे से खोलने का भी नियम बनाया गया, तथा ट्रेनिंग कालेजों की इस प्रकार व्यवस्था करना शुरू किया गया कि अधिकाधिक संख्या में सरकारी और प्राइवेट स्कूलों के लिए ट्रेनिंग शुदा मास्टर उपयुक्ततः मिलते जावें। जहां सरकारी शालाएँ प्रगतिशील हों वहाँ उनके अनुरूप प्राइवेट शालाएँ भी तरक्की कर सकें इस हेतु सहायक-दान की निधि बढ़ा दी जावे। इस तरह सरकारी स्कूलों को केवल 'अनुकरणीय माडल' के रूप में कायम रखने की नीति अपनाई गई।

सिफारिशों के बावजूद भी प्राइवेट स्कूलों की संख्या बढ़ी।

सदा की नाई इन सिफारिशों का विरोध भी राजनीतिक कारणों से प्रेरित था। यही कहा गया कि सरकार प्राइवेट स्कूलों पर नियंत्रण इसलिए करना चाहती है कि देशमें देश-भक्ति और स्वतंत्रता की भावना का प्रसार न होने पावे और जो सरकारी हाई स्कूलों को मॉडल बनाने में असंतुलित व्यय होने जा रहा है उसका अर्थ भी यही है कि प्राइवेट स्कूलों के लिए जो रकम दी जा सकती थी वह अब उपलब्ध ही न होवे। इस आपत्ति के बावजूद भी प्राइवेट स्कूलों की संख्या बढ़ती ही गई और यह कहना कि सरकारी स्कूलों से वे कुछ ऐसे खास गये बीते रहे सच नहीं माना जा सकता। हां आर्थिक कठिनाइयां अवश्य उनके सामने रहीं पर यह कोई नई बात नहीं है।

यूनिवर्सिटी-शिक्षा

अध्यापन कारिणी और संबद्धतादायिनी यूनिवर्सिटियां रची जावें ।

यूनिवर्सिटी स्टेज के लिए भी सन् १९१३ के प्रस्ताव ने नियम पास किये हैं । सन् १९०४ के यूनिवर्सिटी एक्ट के अनुसार यूनिवर्सिटियों ने यद्यपि काम खूब किया तो भी अभी उनकी दशा बहुत कुछ संतोषजनक नहीं है । निवास-प्रबन्ध, कंट्रोल, पाठ्य-क्रम और परीक्षा-विधि के संबंध में काफी काम शेष है । प्रस्ताव ने फीडरल और (एफीलियेटिंग) संबंध-दायिनी यूनिवर्सिटियों के दो साफ-साफ भेद आगे किये । फीडरल में थोड़ी दूर के क्षेत्रफल के बीच आने वाले प्रायः समान अनेक कालेज मिलाकर यूनिवर्सिटी कहलाने लगते हैं। संबद्धता-दायिनी यूनिवर्सिटी का क्षेत्र यद्यपि कानूनन निर्दिष्ट होता है तो भी वह विभिन्न संस्थाओं में स्टैंडर्ड की एकरूपता का संचार नहीं कर पाई है । पहले प्रकार की यूनिवर्सिटियां ग्रेट ब्रिटेन में कभी लोकप्रिय रही हैं परन्तु अब विभिन्न कालेज स्वयं एक-एक अध्यापनकारिणी यूनिवर्सिटी बन गये और दूर-स्थित कालेजों को समवेत नहीं करते । अभी सारे भारत में १८५ से अधिक कालेजों के लिए केवल पांच यूनिवर्सिटियां ही हैं और वह दिन जबकि भारत में सम्बद्धतादायिनी यूनिवर्सिटियां बिलकुल अनावश्यक हो जावें अभी दूर ही है । तो भी ऐसी यूनिवर्सिटियों की भौगोलिक सीमाओं का संक्षेपीकरण आवश्यक जान पड़ता है । इसलिए सबसे पहले प्रत्येक बड़े प्रांत में एक एक यूनिवर्सिटी तो कम से कम कायम कर ही दी जावे । फिर उसके बाद प्रत्येक प्रांत में ऐसी अध्यापनकारिणी और निवासदायिनी यूनिवर्सिटियाँ भी बनाई जावें जो वर्तमान युग की शिक्षात्मक संपन्नता की मांगें पूरी करें । इसलिए सबसे पहले ढाका में इस दूसरे किस्म की संस्था अभी ही बनाई जावेगी; फिर अलीगढ़ और बनारस में भी बनाने के लिये सरकार तैयार है परन्तु यह प्रयोग और अनुभव के ही बल पर निश्चित किया जा सकेगा कि किस यूनिवर्सिटी को किस रूप में रखा जावे।

विद्यार्थियों के सर्वतोमुखी सुधार के साधन : मैट्रिक की व्यवस्था सरकार के ही जिम्मे हो ।

सरकार ने विद्यार्थियों में सामाजिक, नैतिक और बौद्धिक सुसम्पन्नता उपलब्ध करने के हेतु सामुहिक जीवन और अध्यापन का स्तर बढ़ाने पर जोर दिया और इस हेतु अतिरिक्त ग्रांटें भी मंजूर कीं। प्रत्येक यूनिवर्सिटी में उच्च कोटि के पुस्तकालय की व्यवस्था करने का विश्वास उन्होंने जाहिर किया ताकि भारत में उच्च शिक्षा की सारी सुविधायें पश्चिमी विश्वविद्यालयों के ही समकक्ष हो सकें। यूनिवर्सिटियाँ अपने अधीनस्थ कालेजों पर अधिक अच्छा नियंत्रण रख सकें इस हेतु सरकार का इरादा हुआ कि मैट्रिक परीक्षाओं को और शिक्षा का उत्तरदायित्व तथा नियंत्रण प्रांतीय सरकारों द्वारा निर्मित शिक्षा–बोर्डों को सौंप दिया जावे और फिर यूनिवर्सिटियां खुद अपने शिक्षार्थियों को उनके बीच में से चुन सकें। वैसे ही इन स्कूलों के ऊपर नियंत्रण या शासन रखने के लिए यूनिवर्सिटियों के पास कोई मशीनरी नहीं है और उसे सरकार के ही सार्वजनिक शिक्षा विभागों के इंस्पेक्टरों इत्यादि पर निर्भर रहना पड़ता है। ज्यों-ज्यों अध्यापनकारिणी और निवासदायिनी यूनिवर्सिटियों की संख्या बढ़ेगी इन स्कूलों की समस्या और भी उलझेगी।

इन साधनों से सरकार ने यह सोचा कि भारतीय यूनिवर्सिटियों के विद्यार्थी जीवन-संग्राममें सफलता पानेके लिए अधिक योग्य हो सकेंगे।

अभी तक की शिक्षा के प्रसार, प्रगति और विकास का तखमीना

निम्नलिखित आंकड़ों से किसी सीमा तक हो सकेगा। अंग्रेजों ने भारतीय देशी शालाओं का सफलतापूर्वक अंत कर दिया इसमें संदेह नहीं:—

विषय	१८५५	१९२१–२२
(१) विश्वविद्यालय	—	१०
(२) आर्ट्स कालेज	२१	१६५
(३) व्यावसायिक संस्थाएँ	१३	६४
(४) माध्यमिक शालाएँ	२८१	७५३०
(५) प्रायमरी शालाएँ	२८१०	१५५०१७
(६) विशेष शालाएँ	७	३३४४
(७) मान्यता प्राप्त संस्थाएँ	३१३२	१६६१३०
(८) मान्यता प्राप्त संस्थाओं में छात्रों की संख्या	१३५०७९	७३९६५६०
(९) शिक्षा पर पूरा खर्च	९९९८९८ रु०	१७३५८८०९९रु०
(१०) शिक्षा पर सरकारी खर्च	अज्ञात	८५६०१३६६रु०

यूनिवर्सिटी-प्रश्न

(१) १९०४ के यूनिवर्सिटी एक्ट की मुख्य धाराएँ बताओ। सन् १९०५ से लेकर १९२१ के बीच उसका यूनिवर्सिटी शिक्षा पर क्या असर पड़ा ? (१९५०)।

(२) सन् १९०४ के यूनिवर्सिटी एक्ट की महत्वपूर्ण धाराएँ लिखो और बताओ कि यूनिटरी और निवासदायिनी यूनिवर्सिटियों की कल्पना को उन्होंने किस प्रकार प्रोत्साहन दिया ?

(३) सन् १९०२ से लेकर १९३७ तक भारत में यूनिवर्सिटी शिक्षा के विस्तार की संक्षिप्त रूपरेखा खींचो। अध्यापनकारिणी यूनिवर्सिटियों के निर्माण में जो मुख्य आपत्तियाँ आईं उन्हें स्पष्टतः समझाओ (१९३९)

(४) १९०२ के यूनिवर्सिटी कमीशन की मुख्य सिफारिशों का संक्षेप में उल्लेख करो। सन् १९२७ तक वे किस सीमा में कार्यान्वित हुईं ? (१९४०)

अध्याय १०

कलकत्ता-विश्वविद्यालय कमीशन–१९१७-१९

(सैडलर कमीशन)

इंटरमीजियेट कालेजों के अलगीकरण का सुझाव : केन्द्रीय यूनिवर्सिटियों का प्रत्येक प्रांत में संगठन हो : आंतरिक व्यवस्था में अधिक अधिकार हों।

भारत की शिक्षा के इतिहास में पहली बार ब्रिटिश सरकार के किसी कमीशन के अध्यक्ष अराजनैतिक व्यक्ति सर माइकेल सैडलर ही थे। वे लीड्स यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर थे। कमीशन में अन्य भारतीय शिक्षाविद् भी सम्मिलित किये गये। कमीशन के जिम्मे कलकत्ता विश्व-विद्यालय की समस्याओं के हल का कार्य सौंपा गया और एतदर्थ भारत तथा विदेश की अन्य यूनिवर्सिटियों का अध्ययन तथा तुलना भी सुझाई गई। कमीशन ने सारे देश का दौरा किया और वह यूनिवर्सिटियों में भी पहुँचा। एक बड़ी लम्बी रिपोर्ट प्रकाशित की गई। इस कमीशन ने माध्यमिक शिक्षा के ऊपर भी विचार किया क्योंकि सच तो यह है कि कोई भी विश्वविद्यालय आखिरकार माध्यमिक शालाओं से सफल शिक्षा-र्थियों के ही ऊपर तो निर्भर रहता है। अतः कमीशन ने सुझाव पेश किया कि यूनिवर्सिटी की शिक्षा में सुधार करने के पूर्व हाई स्कूलों की शिक्षा का सुधार अनिवार्य है। उसकी महत्वपूर्ण और नवीन सिफारिश थी इंटर-मीजियेट कालेजों तथा परीक्षाओं की व्यवस्था। असल में कालेजी शिक्षा का प्रारम्भ मैट्रिक के बाद न होकर इंटर के बाद होना ज्यादा युक्ति-युक्त है। अतः या तो अलग से इंटरमीजियेट कालेज खोले जावें या

---

१ डा. ग्रेगरी. २ सर फिलिप हार्टाग. ३ प्रो. रेम्ज़े म्योर. ४ सर आशुतोष मुकर्जी. ५ डी. पी. आई. बंगाल. ६ डा. ज़ियाउद्दीन अहमद.

उन्हें हाई स्कूलों से ही जोड़ दिया जावे – यह सिफारिश की गई। ये कालेज या कक्षाएं आर्ट्स, साइंस, मेडीसन, इंजीनियरिंग या अध्यापन आदि विषयों में शिक्षा देंगी। उनकी परीक्षाओं का संचालन करने के लिए सरकार, विश्वविद्यालय, हाई स्कूल तथा इंटर कालेजों के प्रतिनिधियों का एक समवेत बोर्ड बनावे। कलकत्ता यूनिवर्सिटी के ऊपर बहुत बोझ हो गया था इससे ढाका में शीघ्रातिशीघ्र एक विश्वविद्यालय खोलने की सिफारिश की गई तथा कलकत्ता को एक केन्द्रीय अध्यापनकारी विश्वविद्यालय में परिणत कर दिये जाने की सिफारिश की गई। कमीशन ने हर प्रान्त में एक केन्द्रीय विश्वविद्यालय तथा बड़े नगरों में यूनिवर्सिटियों की स्थापना पर जोर दिया। साथ ही यूनिवर्सिटी कार्यक्रमों के आंतरिक प्रबन्ध और व्यवस्था की सख्ती को कम करने की भी सिफारिश की। ऑनर्स कोर्स को पास-कोर्स से थोड़ा उच्च कोटि का और अलग बनाकर अधिक सुयोग्य विद्यार्थियों की रुचि तथा योग्यता के अनुकूल बनाना उचित करार दिया। डिग्री के कोर्स की अवधि इंटर के तीन साल बाद तक की रहे। प्रोफेसरों और रीडरों की नियुक्ति विशेष चुनाव–कमेटियों के द्वारा हो जिनमें बाहर से भी विशेषज्ञ शामिल किये जावें। बालकों के स्वास्थ्य इत्यादि की ओर विशेष ध्यान देने के लिए उच्च श्रेणी के प्रोफेसर की नियुक्ति आवश्यक है। मुसलमानों तथा अन्य पिछड़ी जातियों के लिए अलग से प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये।

मुस्लिम लड़कियों के लिए पर्दा–स्कूल।

इसके अतिरिक्त कमीशन ने स्त्री शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, टेक्नालॉजी और मास्टरों की ट्रेनिंग के विषय में भी अपनी सिफारिशें दीं। हिन्दू-मुस्लिम लड़कियों के लिए पर्दा-स्कूलों की स्थापना का सुझाव सामने रखा तथा कलकत्ता यूनिवर्सिटी में इस हेतु स्त्री–शिक्षा का एक बोर्ड ही कायम करने को कहा। इंटर कालेजों में विविध वैकल्पिक विषय रखने तथा उनमें व्यावसायिक सुझाव देने की सिफारिश

भी उल्लेखनीय है । अध्यापन का विषय सामान्य इंटर और बी. ए. कक्षाओं में रखने के लिए उन्होंने सिफ़ारिश की ।

सडलर कमीशन की सिफारिशों के सब मिलाकर तेरह भाग हैं।

माध्यमिक शिक्षा

चार दोष सूत्र : शिक्षक, बोझिल शिक्षा, सामुहिक भाषण प्रणाली सरकार–यूनिवर्सिटी खींचतान :

एक अलग बोर्ड बने : उसका संगठन।

जब तक माध्यमिक शिक्षा – प्रणाली का क्रांतिकारी पुनर्संगठन नहीं होता तब तक बंगाल की यूनिवर्सिटी-प्रणाली में कोई संतोषजनक सुधार नहीं होगा; और इस माध्यमिक शिक्षा के दोष-सूत्र मुख्यतः चार हैं:— (१) कम वेतन पाने वाला, अधिकांशतः अन्ट्रेन्ड शिक्षक संप्रदाय, (२) बेतरतीबी से बनायी हुई मैट्रिक-परीक्षा के अनिष्टकारी बोझ से बोझिल शिक्षा, कि जिससे अनेक लाभकारी विषय प्रोत्साहन भी नहीं पाते, (३) सरकारी शिक्षा–विभाग और यूनिवर्सिटी अधिकारी संप्रदाय का द्वैध व अलगाव, (४) इंटर की कक्षाओं का यूनिवर्सिटी द्वारा अध्यापन कि जिसमें सामुहिक भाषण प्रणाली बिलकुल अनुपयुक्त होती है और व्यावसायिक महत्व के विषयों की घोर अवहेलना। इन परि–स्थितियों का सुधार केवल यूनिवर्सिटी के कल्याण के ही लिए नहीं वरन् देश के राष्ट्रीय उत्कर्ष के ही लिए अनिवार्य है । अतः यूनिवर्सिटी में प्रवेश पाने की स्टेज वर्तमान इंटर होना चाहिये, मैट्रिक नहीं । प्रत्येक जिले में इंटरमीजियेट कालेजों की स्वतंत्र तथा चुने हुए हाई स्कूलों के साथ व्यवस्था की जावे । कोर्स न केवल आर्ट्स या साइंस की डिग्री के लिए प्रारंभिक ट्रेनिंग दे, वरन् मेडीकल, इंजीनियरिंग, शिक्षण, कृषि, वाणिज्य और उद्योगों के हेतु भी । इन कालेजों का संगठन अपने एक विशिष्ट शिक्षात्मक और आर्थिक नियंत्रण में होवे । माध्यमिक स्कूलों की दो परीक्षाएं हुआ

करें, एक सोलह वर्ष की उम्र में अर्थात् वर्तमान मैट्रिक के उपरांत तथा दूसरी १८ वर्ष की उम्र में अर्थात् इंटर के उपरांत। दूसरी में पास होना यूनिवर्सिटी प्रवेश का सामान्य स्तर माना जावे। परन्तु कोर्सों पर भी फिर से विचार करना आवश्यक हो गया है। चूंकि वर्तमान सरकारी शिक्षा-विभाग और यूनिवर्सिटी दोनों ही मिलकर इन स्कूलों के ऊपर विशेषतः उनकी आर्थिक दुरवस्था के ऊपर उपयुक्त नियंत्रण नहीं रख पा सकते हैं, इसलिए एक अतिरिक्त माध्यमिक और इंटर मीजियेट शिक्षा-बोर्ड की रचना की सिफारिश की जाती है। इस बोर्ड में बालिकाओं और 'मदरसों' की शिक्षा की भी समितियाँ कायम की जावें। बोर्ड में १५ से १८ की संख्या के लगभग सदस्य हों और बोर्ड को इसके अतिरिक्त भी समितियां बनाने का अधिकार हो। सदस्यों में बहुमत गैर सरकारी लोगों का हो तथा कम से कम तीन हिन्दू और तीन मुस्लिम व्यक्ति उसमें होवें। अन्य उपयुक्त स्वार्थों और अफसरों को भी प्रतिनिधि या पद के कारण स्थान दिया जावे।

डी. पी. आई. को मुतफ़रकात शासन से अवकाश मिले

हाई स्कूलों और इंटर मीजियट कालेजों का बोर्ड पाठ्य-क्रम निर्धारित करेगा तथा दोनों परीक्षाएँ भी लेगा। परन्तु यह अधिकार यूनिवर्सिटी को होगा कि वह अपनी फैकल्टियों में प्रवेश देने के लिए अपने इच्छानुसार परीक्षाएं निर्धारित करे। वह निरीक्षणोपरांत शालाओं और कालेजों को मान्यता एवं ग्रांट देने की सरकार को सिफारिश करेगी तथा उन संस्थाओं पर नियंत्रण भी रखेगी। एतदर्थ बोर्ड के पास निरीक्षण-स्टाफ भी रहेगा। बोर्ड का वैतनिक सदस्य सरकार द्वारा नियुक्त होगा परन्तु वह सार्वजनिक सरकारी शिक्षा-विभाग का एक अंग होकर ही रहेगा। अर्थात् डी. पी. आई. जिसे अभी बहुतेरी शासकीय बारीकियों में फंसे रहना पड़ता है, अब शिक्षा-मंत्री का विशेषज्ञ सलाहकार बनेगा। इसलिए हमारा सुझाव है कि उसे सरकार का सेक्रेटरी भी बनाया जाय। सरकारी तथा प्राइवेट गैर सरकारी संस्थाओं के बीच शिक्षकों

का पारस्परिक आदान-प्रदान संभव बनाने से उनका द्वैत दूर होगा और शिक्षा–प्रणाली समन्वित होगी। पेंशन की जगह एक वार्धक्य-कोष कायम किया जावे। उपयुक्त वेतन और सर्विस की तर्क–पूर्ण सुरक्षा गैरंटी की जावे ताकि वर्तमान कार्यकर्त्ताओं को घाटा न पड़े। इस कोष में सभी शालाएं चंदा दिया करें। पुनर्संगठन को सफल बनाने के लिए पश्चिमी ट्रेनिंग पास शिक्षकों की भर्ती आवश्यक होगी जिन्हें अपनी-अपनी निजी परिस्थितियों के ही आधार पर भर्ती किया जावे; एक निश्चित वेतन-मान मात्र पर नहीं।

यूनिवर्सिटी

अध्यापन में सहयोग नहीं : ऊँचा स्तर नहीं : सरकारी नियम बहुत सख्त और हानिकारक है।

बंगाल की वर्तमान यूनिवर्सिटी प्रणाली इतनी सदोष है कि जो कुछ काम उससे बन जाता है वह उन दोषों के बावजूद ही समझिये। परन्तु इंटरमीजियट और माध्यमिक प्रणाली में सुधार हो जाने पर प्रवेशार्थियों का स्तर स्वयं ही ऊंचा होकर जो बुराइयां अभी मौजूद हैं उन्हें समाप्त कर देगा। आर्ट्स और साइंस की फैकल्टियों में प्रत्येक तेरह विद्यार्थियों में से ११ विद्यार्थी पढ़ते हैं। अर्थात् इंटरमीजियट के विद्यार्थियों का अलग शिक्षा प्रबन्ध हो जाने पर भी कोई एक अध्यापनकारिणी यूनिवर्सिटी इन्हें सम्पन्नता से शिक्षा नहीं दे सकती। आर्ट्स और साइंस का अध्यापन इन अत्र-तत्र फैले हुए कालेजों में अपने अति–सीमित अध्यापकों द्वारा किया जाता है कि जिनकी आय का प्रधान साधन वे अनुपयुक्त फीसें हैं जो अध्यापन जैसे काम के वास्ते पूर्णतः अपर्याप्त होती हैं। कलकत्ता सरीखी बड़ी बस्ती तक में कालेजों के बीच अध्यापनार्थ पारस्परिक सहयोग नहीं कि उपयुक्त सुयोग्य अध्यापक यह काम करें। इधर पाठ्य-क्रम भी बिलकुल सैद्धांतिक ही है जो टेक्निकल विशेषों की घोर अवहेलना करता है। अध्यापन का तरीका यंत्रवत सामूहिक भाषण है कि जिसमें

शिक्षार्थी कोचिंग पाकर परीक्षा भर में हाथ मार देना उद्देश्य बना बैठा है। उधर यूनिवर्सिटी, अंडर ग्रेजुयेट—काम की सर्वतः परीक्षक मात्र बनी हुई है। इसके कारण अध्यापन पर उसका कोई ध्यान नहीं जा पाता। और अध्यापक तथा विद्यार्थी सारा परिश्रम परीक्षा की निरंकुशता को समर्पित करते हैं। अध्यापकों का वेतन, सम्मान, भविष्य की आशा सब मिलाकर ऐसे नीचे स्तर के हैं कि अच्छे सुयोग्य व्यक्ति उस ओर आकृष्ट ही नहीं होते। और जब से ग्रेजुयेटोतर शिक्षण को यूनिवर्सिटी ने अपने हाथों लिया है तब से दोनों का द्वंद्व भीषण हो गया है। यूनिवर्सिटी का शासन जहां एक ओर कालेजों के और उसके बीच बड़ी सख्ती का है कि जिससे संपन्नता तो बढ़ती ही नहीं, तो दूसरी ओर स्वतंत्र सूझ-बूझ को भी कालेजों को प्रोत्साहन नहीं। इससे विद्या का विकास कैसे हो सकता है? यूनिवर्सिटी को स्कूलों की मान्यता सम्बन्धी इतनी उलझनें हैं, तथा सरकार का हस्तक्षेप और उसके अपने नियम ऐसे जटिल उलझे हैं कि यूनिवर्सिटी उत्तरदायित्व का अनुभव नहीं करती, तथा उस सरकारी हस्तक्षेप का भी सदुपयोग नियमानुसार नहीं हो पाता। फिर इन ज़रूरत से ज्यादा सख्त नियमों को बदलना भी कठिन है।

केवल सरकारी नौकरी उद्देश्य

विद्यार्थियों के निवास की परिस्थितियां इतनी निकृष्ट हैं जिनमें स्वास्थ्य, सदाचार और कार्य—कुशलता का उत्कर्ष हो सकना असम्भव है। भले ही इस पर इधर बहुत खर्च किया जा चुका हो। जब से भारतीय विश्वविद्यालय बने हैं तब से वहां की योग्यता सरकारी नौकरी पाने का एकमात्र बाकायदा प्रमाण-पत्र बन बैठी है जिसकी पराकाष्ठा यह है कि जरा सी बाबूगिरी के लिये भी यही आधार हो गया है। परिणामतः अधिकांश शिक्षार्थी इसका अनुसरण स्वयंमेव अथवा जीवन के हेतु न करके केवल उन कुछ नौकरियों के वास्ते ही करते हैं कि जिनके लिए कोई यूनिवर्सिटी ट्रेनिंग जरूरी तक नहीं।

सहयोगात्मक–अध्यापन : सरकारी हस्तक्षेप न्यूनतम हो : नौकरियों के हेतु सरकारी नौकरी कमीशनों की अपनी परीक्षाएं हों ।

इन समस्त दोषों को दूर करने का एक सीधा साधन तो नवीन अध्यापनकारिणी यूनिवर्सिटियों की स्थापना होगी ताकि अध्यापन–कार्य को अपना निजी और सम्माननीय महत्व प्राप्त हो सके । समस्त अध्यापन-सूत्र कलकता के तथा जिलों के कालेजों में ऐसे संगठित किये जावें कि क्रमशः वर्तमान एवं संभाव्य यूनिवर्सिटियां अध्यापनकारिणी ही बनें । प्रत्येक यूनिवर्सिटी उच्च शिक्षा केवल कुछ विषयों में देवे । कमीशन ने भारत सरकार और गवर्नर जनरल के समस्त अधिकारों और हस्तक्षेपों को प्रांतीय सरकार तथा गवर्नर के हाथों देकर शिक्षात्मक कार्यों में हस्तक्षेप को न्यूनतम सीमा पर लाने का सुझाव पेश किया । समस्त कानून-निर्माण, संशोधन, परिवर्तन इत्यादि के अधिकार बंगाल सरकार को ही दे दिये जावें जो अपने कानून बनाकर यूनिवर्सिटियों को भी अपने आर्डिनेंस, रेगुलेशन अथवा स्टेट्यूट बनाने के अधिकार देवे । सुयोग्य शिक्षार्थियों के लिए त्रिवर्षीय ऑनर्स कोर्स प्रारम्भ किये जावें जो सीधे एक साल के बाद में एम० ए० की डिग्री ले सकें । यह कोर्स सादे पास–कोर्स से अलग होगा । प्रोफेसर और रीडर की पदवियां कुछ सीमित चुनिन्दा व्यक्तियों को ही हर यूनिवर्सिटी में दी जावें तथा उन्हें चुनने वाली निर्वाचक समितियों में माने हुए विशेषज्ञ सम्मिलित हों । भारत सरकार अपनी विभिन्न नौकरियों में प्रवेश करने के वास्ते शिक्षात्मक स्टेजों का सिविल सर्विस कमीशनों द्वारा स्पष्ट निर्धारण करे तथा प्रवेश-हेतु परीक्षाएं चलावे और शर्तें प्रकाशित करे । शिक्षार्थियों के स्वास्थ्य–कल्याण एवं निवास का स्तर उच्च रखने के वास्ते व्यायाम–विशेषज्ञ एक प्रोफेसर की कोटि का व्यक्ति नियुक्त किया जावे । मुस्लिम जाति बड़ी पिछड़ी हुई है इसलिये उसके स्वार्थों की विशिष्ट सुरक्षा पर कमीशन ने बहुत जोर दिया है । इसके उपरांत ढाका में एक नया विश्वविद्यालय कायम करने की विस्तृत योजना उन्होंने प्रस्तुत की जिसका कि अब पाकिस्तान

के बन जाने के बाद भारत के लिए केवल ज़रा–सा स्थानीय महत्व भर रह गया है। कलकत्ता को अध्यापनकारिणी यूनिवर्सिटी बनाने के लिए उन्होंने एक समन्विति की योजना की है जिसमें यूनिवर्सिटी-अध्यापन का कार्य करती रहकर भी उन समस्त कालेजों से समन्वित होगी जो सहयोगात्मक-शिक्षण-प्रणाली में हाथ बंटा सकेंगे। कालेजों को आत्म-संपूर्ण होने का आदर्श तजकर पारस्परिक सहयोग की भावना स्वीकार करना होगी। परन्तु इसमें कुछ ऐसा नियंत्रण रहेगा कि कालेजों की स्वतंत्रता खतम न हो जावे तथा विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के वैविध्य के अनुकूल लचीलापन भी आ जावे। न तो कालेजों का यूनिवर्सिटी पर आधिपत्य जम जावे न यूनिवर्सिटी का कालेजों पर, प्रत्युत यूनिवर्सिटी में प्रत्येक शैक्षणिक-स्वार्थ और जीवन का उचित और आवश्यक प्रतिनिधित्व होवे।

स्त्री-शिक्षा

विशेष कोर्स आवश्यक हैं।

स्त्री–शिक्षा का प्रश्न गंभीर सामाजिक समस्याओं से स्पर्श करता है। इससे उस पर तो विशेषज्ञ समितियों को ही विचार करना उचित होगा। तथापि माध्यमिक और इंटरमीजियट शिक्षा–बोर्ड में बालिकाओं की शिक्षा की एक ऐसी समिति हो जिसमें स्त्रियाँ सदस्य हों तथा जो स्त्रियों की ही संस्थाओं से परामर्श कर सकें। पर्दानशीन हिन्दू-मुस्लिम लड़कियों के वास्ते १५–१६ वर्ष की उम्र तक शिक्षा का प्रबन्ध हो सके। सिद्धांत की दृष्टि से यूनिवर्सिटी अपनी कक्षाओं में महिलाओं को प्रवेश अवश्य देवे परन्तु बंगाल की विशिष्ट परिस्थितियों में स्त्री–शिक्षा की व्यवस्था और संचालन विशेष संस्थाओं और अधिकारियों के ही हाथों में हो। कलकत्ता विश्वविद्यालय में स्त्री–शिक्षा का एक बोर्ड स्थापित किया जावे जो स्त्रियों के उपयुक्त विशिष्ट कोर्सों एवं सहयोगी अध्यापन की व्यवस्था कर शिक्षण एवं डाक्टरी व्यवसायों की प्रारंभिक ट्रेनिंग दिलाये। दिल्ली

के लेडी हार्डिंज कालेज से भी यह बोर्ड सम्बन्ध स्थापित करे।

अध्यापन कार्य सर्विस के आधार पर न होकर व्यवसाय के आधार पर हो : व्यवस्था भी तदनुकूल होना चाहिये।

सरकारी और गैर सरकारी अध्यापकों के बीच जो भेदभाव की स्थिति है वह बड़ी अनिष्टकारी है। इसलिए इन दोनों ही कोटि के अध्यापकों के पारस्परिक स्थानांतर की व्यवस्था 'सर्विस' के आधार पर न होकर 'व्यवसाय' के आधार पर होना चाहिये जो बोर्ड के ही नियंत्रण में रहे। जैसे अन्य शासकीय विभागों में तरक्की अथवा स्थानांतर करने में सर्विस की सीनियॉरिटी को मान देना अधिक ठीक होता है वैसा शिक्षा में नहीं क्योंकि यहाँ अनुभव की अपेक्षा व्यक्तिगत योग्यताएँ अधिक काम की होती हैं। अध्यापकीय सर्विस में अत्यधिक अफ़सरीपन घातक होता है। *अध्यापन एक व्यापार की अपेक्षा कला कहीं अधिक है। उसका उच्चातिउच्च कर्त्तव्य शासकीय न होकर पांडित्यमय और शास्त्रीय (Pastoral) अधिक है। अतः ऐसे पद पर नियुक्ति करने की जो शर्तें

---

* —A teacher's duties are only in a minor degree administrative. For this reason the methods of transfer and of promotion which, in the administrative services, on the whole, work well, are much less well adjusted to the needs of colleges and schools. In an administrative service, length of official experience is such an important factor in each individual officer's efficiency that the advantages of promotion by seniority generally outweigh its disadvantages, provided that the rule is elastic enough to allow for occasional exceptions. In teaching, on the other hand, length of experience is as a rule much less important relatively than personal characteristic and individual gift.

[Calcutta University Commission, Volume V, Part II, Page 326.]

होना चाहिये उनमें स्वतन्त्र, आत्माभिव्यक्ति एवं मौलिक सूझों को पूरा अवसर दिया जावे। ऐसी शर्तें सरकारी शासन की अपेक्षा एक व्यावसायिक संगठन द्वारा अधिक जुटाई जा सकती हैं किन्तु शिक्षा और लोक-स्वार्थों और निजी विश्वासों से कुछ ऐसा निकट सम्बन्ध होता है कि लोक के प्रतिनिधि रूप में कार्य करने वाली सरकार व्यवसाय में प्रवेश होने वालों की योग्यताओं की तरफ एकदम तटस्थ नहीं हो सकती। इसलिए कमीशन ने सिफारिश की है कि सारे के सारे एक ऐसे व्यावसायिक संगठन में समवेत हो जावें जो प्रवेश, उन्नति इत्यादि के नियमों को स्वयं बनाकर सरकारी रजिस्ट्री हासिल करें।*

---

*....As teaching is an art rather than a business and as the highest functions of a teacher are scholarly and pastoral rather than administrative, the conditions of employment best adapted to such a calling are those which allow the greatest freedom to individual initiative and self-expression. These conditions are found in a professional organisation rather than in a service directly administered by Govt. But education is so closely implicated with public interests as well as with private conviction that the community or the Govt. acting in its behalf cannot dispense with the right of exercising supervision over the qualifications which each entrant into the profession should be required to possess. We believe tberefore that the whole body of teachers should ultimately be organised by charter as a profession, with a registration council to regulate the conditions of entrance, to grant admission and to frame and enforce rules of professional conduct. In view of the public interests involved, the sanction of Govt. should be required to the conditions proposed for admission to the profession and to any statu-

मास्टरों की ट्रेनिंग

सुयोग्य मास्टरों के अभाव में कक्षा-अध्यापन का स्तर, सामुहिक जीवन का स्तर, (मैट्रिक की परीक्षा की आयु अच्छे अध्यापन से १८½ साल से घटकर १६½ या और भी कम हो सकती है) गिर जाते हैं। इससे प्राइवेट ट्यूशनों में माता-पिताओं का पैसा व्यर्थ खर्च होता है जो कि अच्छी पढ़ाई से बचाया जा सकता है। इसलिए प्रत्येक यूनिवर्सिटी में एक प्रोफेसर के नीचे एक ट्रेनिंग कालेज होवे जिसमें एक अभ्यासार्थ स्कूल और एक प्रदर्शनार्थ स्कूल हो। अभ्यासार्थ में सामान्य कार्य-प्रणाली की विधियों का अध्ययन होवे तथा प्रदर्शनार्थ में नवीन विधियों और पाठ्यक्रमों पर प्रयोग किये जावें। अध्यापन–विज्ञान इंटर मीजियट कालेजों और बी. ए. में भी एक विषय बनाया जावे तथा ऐसे विद्यार्थियों को सापेक्षतः अल्पकालीन व्यावहारिक ट्रेनिंग के बाद बी. टी. की डिग्री दी जावे। बी. टी. के बाद दो साल के अध्ययन पर एम. ए. की डिग्री सिद्धान्तों और शिक्षा के इतिहास के विषय पढ़ने पर मिलना चाहिये।

भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध में जो सिफारिशें कमीशन ने दीं वे बिलकुल कलकत्ता और बंगाल मात्र के लिए तत्काल में उपयोगी थीं। अतः इनका यहाँ विस्तृत विवेचन आवश्यक नहीं। हाँ, उन्होंने संस्कृत और फारसी के अध्ययन को अपने विशिष्ट ढंग से संगठित किये जाने और संचालित होने की सिफारिश अवश्य की तथा इसके साथ ही उनमें नवीन विधियों के संचार और समावेश पर जोर दिया। साथ ही बंगला और उर्दू जैसी देश–भाषाओं के उत्कर्षार्थ यूनिवर्सिटी में कुर्सियाँ कायम करने को कहा।

---

tes or regulations of major importance which the registration council might think expedient to adopt.

[Calcutta University Commission 1917–19, Volume V, Part II P. 327.]

व्यावसायिक शिक्षा

व्यावसायिक शिक्षा की उपेक्षा का प्रतीक यदि यूनिवर्सिटियों में उसका न देना ही है तो वह तो दूर भी किया जा सकता है पर वास्तव में यह शिक्षा उच्च टैक्निकल शिक्षा से संबद्ध होने के कारण समाज के व्यावसायिक एवं टैक्निकल विकास और वैभव के अधीन रहेगी। क्योंकि ऐसे स्नातकों के पास करा देने से कोई प्रयोजन नहीं कि जिन्हें काम में लगा सकने के लायक देश में उद्योग नहीं, व्यवसाय नहीं। भारत में प्रत्युत ऐसे चतुर और सुशिक्षित व्यक्तियों की जरूरत अवश्य है जो विज्ञानों से परिचित होते हुए भी वैज्ञानिक विशेषज्ञ नहीं माने जा सकते। तो, इंटरमीजियट कालेजों में ऐसे अनेक कोर्स खोले जावें जिनमें व्यावसायिक झुकाव विद्यमान होवें। इनमें न केवल टैक्निकल कोर्सों की प्रारंभिक ट्रेनिंग ही मिलेगी बल्कि पुराने व्यवसायों में भी प्रगति हो सकेगी।

कानून के क्षेत्र में कमीशन ने कोई अधिक अथवा महत्वपूर्ण सुझाव पेश नहीं किये।

औषध :--

लाइसेंस वाला अल्पकालीन कोर्स तथा डिग्री वाला दूसरा कोर्स बंगाल में चल रहा है। यद्यपि दोनों उपयोगी कार्य कर रहे हैं तो भी कोर्स कई जगह बहुत कम है और दोनों में जो ज्ञान के बीच गढ्ढे रह जाते हैं वे बहुत बड़े हैं। इसलिए मेडीकल में भर्ती होने की न्यूनतम योग्यता इंटर में फ़िजिक्स, केमिस्ट्री, वनस्पति-शास्त्र और प्राणि-शास्त्र होना चाहिये। कलकत्ता के मेडीकल कालेज में सार्वजनिक स्वास्थ्य का एक पूरा विभाग ही खोला जावे जहाँ अनेक विषय*

*(१) फार्मेकॉलाजी, (२) मानसिक रोग, (३) डर्मेटॉलाजी और सिफिलॉलाजी, (४) कान, नाक और गले के रोग, (५) एक्स-रे, (६) विद्युत-उपचार (७) औषधि इतिहास।

पढ़ाये जावें । प्रिंसिपल को इतना काफी वेतन दिया जावे कि उसे प्राइवेट प्रैक्टिस न करना पड़े ।

इंजीनियरिंग, खदान-विज्ञान, कृषि, टैक्नालॉजी और वाणिज्य पर कमीशन ने कोई नवीन सिफारिशें नहीं कीं । वैसे इनकी रूपरेखा अन्यत्र वर्णित कर दी गई है ।

शिक्षा का माध्यम

कमीशन के समक्ष माध्यम विषयक मतभेदों की बहुत सामग्री थी इसलिए उसने मातृ-भाषा और अंग्रेजी के उपयोग से होने वाली मानसिक ट्रेनिंग के मनोवैज्ञानिक अंश पर विचार किया । कमीशन का कहना है कि सामान्यतः शिक्षित बंगाली द्वैभाषिक होना चाहेगा । इसलिए एक ओर देश भाषा का अध्यापन अधिक वैज्ञानिक बनाया जावे तो दूसरी ओर अंग्रेजी के अध्ययन में भी कुछ परिवर्तन किये जावें । हाई स्कूलों में सर्वत्र देश भाषा का ही प्रयोग होना चाहिये । अंतिम चार वर्षों में अंग्रेजी और गणित अंग्रेजी के माध्यम से पढ़ाये जावें । मैट्रिक की परीक्षा में अतः इन दो विषयों के सिवा उत्तरों का माध्यम इच्छानुसार अंग्रेजी या देश–भाषा रह सकता है । मैट्रिक के बाद शिक्षा का माध्यम देश–भाषाओं को छोड़ अंग्रेजी ही रहेगा । अंग्रेजी में मौखिक परीक्षा रखी जावे । साहित्यिक और व्यावहारिक प्रयोग में आने वाली अंग्रेजी का भेद तो रखा जावे परन्तु सब विद्यार्थियों के लिए अंग्रेजी –साहित्य का कोर्स अनिवार्य न होवे तथा देश-भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन को प्रोत्साहन दिया जावे ।

परीक्षाएँ

गुणांकन व्यवस्था के कारण स्मरण शक्ति–मात्र का उपयोग होकर बुद्धि का ह्रास होता है । वैसे परीक्षाओं का विवेकमय सिद्धांतों के अनुरूप संचालन काननों के बल नहीं हो सकता अतः उन्हें सुचारु बनाना

यूनिवर्सिटी अधिकारियों का प्रधान कर्त्तव्य है । उन्हें यूनिवर्सिटी परीक्षाओं को परीक्षा तथा अन्तरात्मा का आडीटर बनना आवश्यक होगा । परीक्षा–विधियों पर निरंतर चौकसी रखकर उनके दोषों को दूर किया जाना चाहिये जिससे वे अध्ययन और अध्यापन पर कुप्रभाव बिना डाले परीक्षा के आदर्शों और उद्देश्यों को पूर्ण करती रहें । हर यूनिवर्सिटी में परीक्षकों का एक ऐसा बोर्ड होवे जिसे कोई कार्यकारिणी–उतरदायित्व न होवे बल्कि जो आलोचना और सुझाव ही पेश किया करें । इनके सिवा कमीशन ने कतिपय और सुझाव पेश किये हैं ।

इनके सिवा कमीशन ने कतिपय सुझाव पेश किये हैं जो परिवर्तन की संधि-भूमि में आवश्यक होंगे । वे सब कानूनी बातें है शिक्षात्मक विशेषता उनमें नहीं हैं ।

यूनिवर्सिटी प्रश्न

(१) यूनिवर्सिटी-शिक्षा के पुनर्संगठन पर सन् १९१७ का कलकत्ता यनिवर्सिटी कमीशन को सिफारिशों को संक्षेप (लगभग पचास पंक्तियों म) में लिखो ।

क्या नागपुर विश्वविद्यालय की रचना उसकी रिपोर्ट की योजना पर बनी है ? यदि नहीं तो क्या यह कारण है कि

(अ) सिफारिशें उपयुक्त नहीं हैं ।

(ब) मध्यप्रदेश के लिए वे उपयुक्त नहीं हैं । (१९४२)

(२) लड़कियों और स्त्रियों की शिक्षा के सम्बन्ध में सैडलर–कमीशन को सिफारिशें संक्षेप में लिखो । कमीशन ने लड़कियों और स्त्रियों को शिक्षा को किस सीमा तक प्रभावित किया है ? (१९४०)

(३) सन् १९१७ से लेकर आज तक माध्यमिक शिक्षा के सुधार की कौनसी प्रधान रेखाएँ रही हैं ? वुड-एबट द्वारा सुझाये गये एतद्विषयक सुधारों पर बहस करो । (१९३९)

(४) सन् १९१७ के सैडलर–कमीशन की माध्यमिक शिक्षा विश्यक सिफारिशों को संक्षेप में लिखो। सन १९२७ तक वे किस सीमा में कार्यान्वित हुईं। (१९३८)

(५) कलकत्ता यूनिवर्सिटी कमीशन की सिफारिशों का नीचे लिखी बातों के सम्बन्ध में उल्लेख करो :—

(अ) यूनिवर्सिटी से हाईस्कूलों में इंटरमीजियट कक्षाओं का स्थानांतर।

(ब) मास्टरों की ट्रेनिंग

(स) लड़कियों और स्त्रियों की शिक्षा

(ड) यूनिवर्सिटी की मैट्रिक परीक्षा की आवश्यकताएँ (१९३६)

अध्याय ११

सुधार-कानून का युग

(१९२०–३६)

घटनाओं की गति बड़ी तीव्र हो गई ।

भारतीय जीवन में यह युग राजनैतिक आंदोलनों से ओत-प्रोत रहा । इसकी गतिविधियों ने सन् १९४७ में होने वाली भारतीय स्वतंत्रता की भूमिका प्रस्तुत की । इसके अतिरिक्त सन् १९३९–४५ के द्वितीय विश्व-युद्ध ने सन् १९४७ की घटना को और भी समीप ला दिया । १९३६–४७ का युग भारतीय शिक्षा का योजना-काल है । इन योजनाओं का निर्माण भारतीय देश–भक्ति की महत्वाकांक्षाओं के अनुरूप एवं भारतीय जनमत के विधाताओं और पोषकों के हाथों हुआ । अंग्रेज सत्ता का शनैः शनैः निष्कासन होना प्रारम्भ हो गया था और देशवासियों के हाथों उत्तरदायित्व एवं अधिकार आने लगे थे । लार्ड चैम्सफोर्ड के शासन काल में १९१९ का सुधार कानून लागू हुआ और उस शासन-विधि का सूत्रपात हुआ जिसे द्वैध–शासन (Diarchy) कहा जाता है । इसके बाद भारतीय और विश्व घटनाओं की गति इतनी तीव्रतम हुई कि प्रत्येक वर्ष, प्रत्येक मास, यहाँ तक कि प्रत्येक दिवस और घंटे परिवर्तनों, घटनाओं और अनिश्चयता का तांता-सा लग गया । यह परमाणु-युग अपनी रफ़्तार में विश्व के इतिहास में अभूतपूर्व है ; विज्ञान ने समय और दूरी की समाप्ति कर मानव–कल्याण कितना किया और कितना नहीं किया यह कह सकना कठिन है परन्तु जीवन में अनिश्चयता का संचार अवश्यमेव कर दिया है । द्वैध-शासन से लेकर कांग्रेस मंत्रिमंडलों के सन् '३७ में प्रथम बार निर्माण होने के युग को सुधार कानून का युग कहते हैं : इसे योजना-प्रधान युग भी कहा जा सकता है ।

शिक्षा, हस्तांतरित विषय : केंद्र और प्रांतों के बीच की आर्थिक व्यवस्था।

शासन की दृष्टि से सरकारी विभागों को दो प्रकार से बांट दिया गया, रक्षित और हस्तांतरित (Reserved and Transferred)। रक्षित विभागों को प्रांतीय गवर्नर और केन्द्रीय सरकार अपने कार्य-वाहक सदस्यों के जरिये शासित करती थी जो कि लंदन-स्थित भारत मंत्री के प्रति उत्तरदायी होते थे। परन्तु हस्तांतरित विभागों का शासन निर्वाचित भारतीय मंत्रीगण करते जो प्रांतीय धारा-सभाओं के प्रति उत्तरदायी होते। धारा-सभा में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत हुआ करता। शिक्षा-विभाग इस प्रकार भारतीय मंत्री के जिम्मे सबसे पहली बार हस्तान्तरित विषय के रूप में आया। यह तो विदित है कि शिक्षा-विभाग आर्थिक दृष्टि से सदैव व्यय का विषय रहा है। शासन के ऐसे विभाजन के उपरांत कुछ आर्थिक व्यवस्थाएँ भी हुईं जिन्हें केन्द्रीय, प्रांतीय और सम्मिलित की संज्ञाएँ दी गईं। आय के कुछ कुछ विभाग इन तीनों में ही विभक्त हुए। इन व्यवस्थाओं में एक यह भी चीज थी कि प्रांतीय सरकारें केन्द्रीय सरकार को प्रति वर्ष कुछ निधि देने के लिए बाध्य थीं। फलस्वरूप शिक्षा जैसा प्रांतीय विषय व्यय की दृष्टि में घपले में ही पड़ता रहा।

इंपीरियल सर्विसों का विरोध : नवीन भारतीय मंत्री-समुदाय।

इधर शिक्षा-विभाग में जो उच्च अफसरों की नियुक्ति होती थी वह भी शायद भारतीय शिक्षा की महत्वाकांक्षाओं के अनुरूप न थी। भारतीय जीवन में अफ़सरवाद-विशेषतः अंग्रेजी राज्य का अफ़सरवाद-नाग-पाश की नाईं अपने सारे जोर-जुल्म के साथ न्यस्त-स्वार्थ बना रहा है। पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्म-कथा में इन आई. सी. एसों., आई. पी. और आई. ई. एसों. को भारतीय अधःपतन का सबसे बड़ा अपराधी करार दिया है। न्यस्त-स्वार्थ सार्व-जनिक कल्याण से कभी भी मेल नहीं खा सकता और इसलिए उसका

सदा विरोधी होता है । जो अनेक प्रकार के सुख, ऐश्वर्य, अधिकार और सत्ता इन्हें आश्वासन के रूप में प्राप्त थे उनके अनुपात में जिम्मेवारी और कर्त्तव्य कुछ भी न थे । इसलिए भारतीय जनमत इनका कट्टर विरोधी हो चला था । सार्वजनिक सुझावों और हितों की बात को ये लोग यदि विशुद्ध दुश्मनी के साथ नहीं तो कम से कम घोर उदासीनता के दृष्टिकोण से तो अवश्य ही देखते और करते थे । फिर भारतीय मंत्रीगण इनका कुछ बिगाड़ भी नहीं सकते थे क्योंकि इनका उत्तरदायित्व लंदन-स्थित भारत-मंत्री के प्रति था । यही हाल शिक्षा-अफसरों का भी माना जाता था ।

बिना इन नौकरशाहों के सारी योजनाएं असफल ही होती;
आई. ई. एसों की भर्ती बंद (१९२४)

परिणामतः ऐसी कोई भी नीति कार्यान्वित न हो पाती कि जिसके साथ इन आई. ई. एसों. की हमदर्दी न हो । यों भारतीय नौसिखिये सत्ता-धारी मंत्रियों की नीतियों में किस सीमा तक ठोसपन और किस सीमा तक ढुलमुल यकीनी और अनाड़ीपन था यह बात अलग प्रश्न है, परन्तु उधर इन अफ़सरों ने यह शिकायत करना तो शुरू कर ही दिया कि मंत्रियों की ढुलमुल यकीनी और हर घड़ी के हस्तक्षेप ने उनकी आस्था और विश्वास को हिला दिया है इसलिए दिल लगाकर कोई भी काम करना असंभव हो गया है । शिक्षा के क्षेत्र में हरएक योजना अपना समय लेती है और उसे बुरी या भली करार दे सकना एकाएक सरल नहीं होता । थोड़ी सी गड़बड़ी से योजना को तलाक दे देना, या बड़ी से बड़ी हारों के बावजूद भी अपनी हठधर्मी न छोड़ना दोनों ही बातें समान रूप से देश हित के लिए घातक होती हैं । भारतीय मंत्रियों के शासन-काल में यहाँ वहाँ कुछ लाभ भले हुआ पर सामान्यतः अफसरों के भारतीयकरण के सिवा और कोई लाभ लोगों को दिखा नहीं । यह और चीज है कि ये भारतीय अफसर और भी भयानक सिद्ध हुए हैं । भारतीयकरण का आंदोलन एक सामयिक उछल-कूद तो रही पर दीर्घकाल-व्यापी कल्याण-क्षेत्र

में उनका योग भयंकर स्वार्थ, पक्षपात और भ्रष्टाचार की पाप-कहानी ही है। अंततोगत्वा सन् १९२४ में आई. ई. एसों. की भर्ती खत्म हो गई। अंग्रेज आई. ई. एसों. की चरण–रज पर लोटने वाले भारतीय छुटभइये अफ़सरों के हाथ सत्ता आने लगी जिन्होंने अपने गोरे आक़ाओं का दम्भ, गधापन और नीचता तो खूब ही ग्रहण की परन्तु उनकी निष्ठा, देश–भक्ति और लगन का घोर बहिष्कार किया। इधर देश का ध्यान इस बीच कांग्रेस के असहयोग आंदोलनों और सत्याग्रहों ने राजनीतिक गतिविधियों में कुछ इतना फँसा लिया कि शिक्षा की ओर उचित ध्यान ही न दिया गया और इसलिए ये मैकाले की भविष्यवाणी-वाले काला रंग पर गोरा दिमाग अफ़सर शिक्षा–क्षेत्र में लूट-मार मचाते रहे। आज शिक्षा विभाग में जो त्राहि-त्राहि है उसके प्रधान कारण यही शिक्षा के नौकरशाह हैं। १९१९ के सुधार–कानून का भारतीय नेशनल कांग्रेस ने बहिष्कार कर दिया और डायरेक्ट एक्शन (Direct Action) का आश्रय ले अंग्रेज-सत्ता के निष्कासन का बीड़ा उठा लिया। धारा-सभाओं में वे उपस्थित न रहे और इसलिए अकांग्रेसी भारतीयों को मंत्रित्व प्राप्त रहा।

१९३० की आर्थिक हालत और मास्टरों का निष्कासन।

सन् १९३० में विश्व की आर्थिक दुरवस्था का परिणाम भारतीय-अर्थ-व्यवस्था पर भी पड़ा और सदा की नाईं आर्थिक-दुरवस्था में जो शिक्षा के साथ व्यवहार होता है वही हुआ। कटौती, छटनी, बरखास्ती इत्यादि का युग आया। लंबे वेतन-भोगी नौकरशाहों की फिर बन आयी। और भाग्य-विधाता बन भ्रष्टाचार के असीम साधन उन्हें फिर प्राप्त हुए। गरीब मास्टरों को नौकरी से निकाला गया, स्कूल से बच्चों को निकाला गया, स्कूल तोड़ दिये गये। इन सब अत्याचारों के रहते हुए भी शिक्षा की जो मांग भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम के साथ आई थी वह उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। भारत विधान कानून सन् १९३५ के लागू होने तक थोड़े उतार-चढ़ाव से उस पर सरकारी खर्च इस प्रकार रहा:—

वर्ष	भारत का सरकारी खर्च
१९२१-२२	९ करोड़ २ लाख
१९२६-२७	११ करोड़ ९३ लाख
१९३०-३१	१३ करोड़ ६१ लाख
१९३१-३२	१२ करोड़ ४६ लाख
१९३२-३३	११ करोड़ ३५ लाख
१९३३-३४	११ करोड़ ४७ लाख
१९३४-३५	११ करोड़ ५९ लाख
१९३५-३६	११ करोड़ ८४ लाख
१९३६-३७	१२ करोड़ ३६ लाख

यह तो हुआ खर्च का हाल । उधर शिक्षार्थी भी बढ़े, इसलिए स्कूल भी बढ़े। मुस्लिमों, स्त्रियों इत्यादि में भी शिक्षा का प्रसार हुआ। म्युनिसिपल और स्थानीय शासन की संस्थाओं ने लगभग ६० फी सदी शिक्षा का खर्च उठाया ।

हार्टाग-समिति की नियुक्ति : उसका निदान और सुझाव

जब भारतीय राजनैतिक आंदोलन में नित्य अशांति के ही लक्षण दिखना शुरू हुए तो अंग्रेज सरकार ने राजनैतिक सुधारों के निस्बत सुझाव पेश करने के लिए एक कमीशन नियुक्त किया जिसके सभापति सर जॉन साइमन थे। भारत के राजनैतिक मत ने इस कमीशन का स्वागत काले झंडों से किया जिसका नारा था 'साइमन लौट जाओ'। इसी कमीशन के अंतर्गत शिक्षा-सम्बन्धी सुधार पेश करने के वास्ते एक छोटी उप-समिति भी बनी थी जिसके अध्यक्ष सर फिलिप हार्टाग थे । इसीलिए इस समिति को 'हार्टाग समिति' भी कहा जाता है । सर फिलिप कलकत्ता यूनिवर्सिटी कमीशन के सदस्य रह चुके थे और ढाका विश्वविद्यालय के वाइस-चांसलर भी । उनका भारतीय शिक्षा की परिस्थितियों से भलीभांति परिचय था सलिए उन्होंने इस देश की शिक्षात्मक बीमारियों का बड़ा बुद्धिजन्य

और सहानुभूतिपूर्ण निदान दिया है जो आज तक भी महत्वपूर्ण बना हुआ है।

शिक्षा का अपव्यय और प्रभावहीनता : निरक्षरता ही परिणाम : असंतुलित शिक्षा।

कमीशन ने सबसे पहले भारतीय शिक्षा के अपव्यय और प्रभावहीनता की बीमारी का उल्लेख किया। क्या स्कूल, क्या कालेज, क्या लड़के, क्या लड़कियाँ सर्वत्र शिक्षा की प्रभावहीनता स्पष्टतः बोल रही थी। प्रायमरी शिक्षा का जो उद्देश्य था कि साक्षरता उन्नत होकर व्यक्ति को विवेकपूर्ण मतदान करने में समर्थ बना सके वह भीषण कहानी बन गया है। स्कूलों की संख्या बढ़ाते रहने पर भी उस अनुपात में साक्षरता प्रगति नहीं पाती, अपनी साक्षरता कायम रखने के लिए ग्रामीणों के पास कोई देश-भाषा साहित्य नहीं, कोई अन्य साधन नहीं। पहली क्लास में अगर दस शिक्षार्थी भरती होते हैं तो चौथी तक केवल एक ही पहुँच पाता है और जो चौथी पास भी हो जाता है, कालांतर में उसके निरक्षर बन जाने की परिस्थितियाँ भी पर्याप्त हैं। इधर स्त्री और पुरुषों की शिक्षा, तथा साक्षरता के बीच भी काफी गहरी खाई है, देश के धनी भागों एवं निर्धन भागों की साक्षरता तथा शिक्षा का स्टैंडर्ड भी बहुत अलग अलग है।

माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य यूनिवर्सिटी प्रवेश मात्र : यूनिवर्सिटियों की कूपमंडूकता।

माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य भी बहुत एकांगी हो गया है। हर विद्यार्थी यूनिवर्सिटी में पहुँच जाय यही लक्ष्य प्रेरणा देता है। मैट्रिक और यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं में इतनी अधिक संख्या में जो विद्यार्थी फेल हुआ करते हैं वह सिवा शिक्षा-श्रम के घोर अपव्यय के और किसी रोग का प्रतीक नहीं। अनेक अनुपयुक्त लड़कों ने यूनिवर्सिटियों में भीड़ लगा रखी है कि जिनके काम की यूनिवर्सिटी-शिक्षा है ही नहीं। परिणाम-स्वरूप जिन यूनिवर्सिटियों को विशाल-हृदय, सहिष्णु, आत्म-विश्वासी नागरिक उत्पन्न करने का काम करना था वे केवल उन्हें परीक्षाओं में बिठालने

की खानापूरी में उलझी रहीं। कुछ यूनिवर्सिटियों ने ज़रूर अपने अध्यापन की पद्धतियों में सुधार किया है, कराया है और सामाजिक जीवन में उपयोगी बनने की ट्रेनिंग दी है वह पर बहुत ही नगण्य है। व्यावसायिक और औद्योगिक शिक्षा के क्षेत्रों में शिक्षा ने कुछ उल्लेखनीय सफलता प्राप्त नहीं की। कहने का मतलब यह कि शिक्षा की हर स्टेज का पुनर्संगठन और पुनर्व्यवस्था आवश्यक हो गई है।

शिक्षा : राष्ट्रीय कल्याण का विषय, अतः केन्द्रीय व्यवस्था की अनिवार्यता।

शिक्षा का हस्तांतरित हो जाना भी कोई लाभकारी सिद्ध नहीं हुआ। शिक्षा राष्ट्रीय कल्याण का विषय है इसलिए राष्ट्रीय और केन्द्रीय सरकार का हाथ उसकी गतिविधियों में रहना आवश्यक है जिससे विभिन्न प्रांतों की कार्यवाहियों का समन्वय सम्पन्न हो सके। फिर अनेक प्रांत तो शिक्षा का पूरा व्यय उठाने में भी समर्थ नहीं होंगे इसलिये केन्द्रीय सरकार को सहायतार्थ आना आवश्यक ही हो जावेगा। पर इसका यह मतलब नहीं कि भारतीय प्रांतीय मंत्रियों की जिम्मेदारी कुछ घटा दी जावे क्योंकि वह तो पहले से ही घट चुकी है। स्थानीय स्वराज्य की संस्थाओं के ऊपर जो प्रायमरी शिक्षा का भार दे रखा है वह शिक्षा मंत्रियों का बोझ कम करता ही है। वैसे इसका ही यह परिणाम है कि प्रायमरी शिक्षा बड़े झमेले की चीज बन गयी है। अतः स्थानीय संस्थाओं और प्रांतीय सरकारों के बीच संबंध-तंतुओं का संगठन पुनः आवश्यक है। सुशिक्षित निर्वाचक-वर्ग देश और राष्ट्र की समस्या है और अभी जो कानून बने हैं उनमें म्युनिसिपैल्टियों के व्यय इत्यादि के अधिकारों पर प्रांतीय मंत्रियों का कुछ खास जोर नहीं इसलिए सरकारी इंस्पेक्टरों की संख्या और क्वालिटी सुधारी जावे। इससे खर्च बढ़ेगा नहीं, अपव्यय कम हो जावेगा। अतः प्रांतीय शिक्षा सर्विसों का पुनर्संगठन शीघ्रातिशीघ्र किया जाना चाहिये। यही हाल लड़कियों की शिक्षा का है। लड़की की शिक्षा राष्ट्र भावी माता की शिक्षा है। प्रत्येक लड़की की शिक्षा का अभिप्राय होता है एक और अतिरिक्त लड़के की शिक्षा, पर लड़के की शिक्षा का यह परिणाम नहीं

होता इसलिए भारतीय शिक्षा की सर्वांगीण उन्नति और विकास की योजना में स्त्री-शिक्षा के दावों को पहिला स्थान निश्चयतः दिया जाना चाहिये ।

स्थानीय संस्थाओं के हाथ में शिक्षा की दुर्दशा : स्त्री-शिक्षा का महत्व : भारतीय शिक्षाविदों के गैर–सरकारी प्रयत्न : शांति निकेतन इत्यादि ।

यह तो हुई सरकारी शिक्षा की बात । पर जिस शिक्षात्मक जागृति का सूत्रपात हमारे राजनैतिक आंदोलन की प्रगति के साथ हुआ उसमें अनेक गैर सरकारी शिक्षाविदों ने स्वतंत्र भारतीय संस्थाओं की स्थापना भी की । इनमें अनेक विशुद्ध भारतीय परंपरायें थीं, तो कुछ विशुद्ध अंग्रेजी परंपरायें और कुछ में एक सम्मिलित परम्परा प्रारम्भ की गई । बनारस का काशी विद्यापीठ, दिल्ली का जामिया मिलिया अहमदाबाद का गुजरात विद्या पीठ, पूना का तिलक विद्यापीठ भारतीय परंपरा की संस्थायें हैं जिन्हें राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की संज्ञा दी गई है । इन संस्थाओं ने सरकारी मान्यता तक की आवश्यकता नहीं मानी । फिर अलीगढ़ मुस्लिम और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय अंग्रेजी परंपरा में निर्मित हुए परन्तु इन्होंने मातृ-भाषा के जरिये शिक्षा देने का कार्यक्रम और उद्देश्य अपने सामने रखा । इसके अतिरिक्त सम्मिलित रूप से भी कुछ संस्थाएं स्थापित की गईं जो एक ओर भारतीय ज्ञान और संस्कृति को उन्नत करना चाहती थीं तथा दूसरी ओर पश्चिम की शिक्षा संस्थाओं से संगठन और व्यवस्था का पाठ ग्रहण कर आगे बढ़ना चाहती थीं । ऐसी संस्थाओं में सबसे विशाल संस्था थी बंगाल की बोलपुर ग्राम में स्थापित 'विश्व भारती' जिसमें रवीन्द्रनाथ ठाकुर का जीवित स्वप्न था । दूसरी बम्बई की महिला यूनिवर्सिटी जिसे कर्वे–विश्वविद्यालय भी कहा जाता है । तीसरी बम्बई की साहित्य–संसद् जिसे श्री कन्हैयालाल मुंशी ने १९२२ में स्थापित किया और संस्था बाद में 'भारतीय विद्या भवन' नाम की विशाल संस्था बनी ।

अध्याय १२

प्राथमिक शिक्षा—१९१९-३५

शिक्षा का राजनैतिक पहलू : निर्वाचित मंत्रियों द्वारा अनिवार्य शिक्षा-कानूनों की रचना।

हार्टाग-समिति नियुक्ति।

इस युग में स्पष्ट दिख पड़ेगा कि शिक्षा-व्यवस्था के उद्देश्य जो अभी तक शासकीय आवश्यकताओं के अधीन होते थे अब शनैः शनैः राजनैतिक स्वरूप ग्रहण करने लगे। जहाँ तक प्राथमिक शिक्षा का प्रश्न था वह साधारण जनता अर्थात् सार्वजनिक महत्व का साधन बन गई थी। सन् १९१३ के सरकारी प्रस्ताव के अनुसार भारतवर्ष का सरकारी मत शिक्षा के संख्यात्मक संवर्धन के स्थान पर गुणात्मक उन्नति का हामी था। इधर भारतीय शिक्षित जनमत और विशेषतः गैर सरकारी जनमत तो संख्यात्मक संवर्धन का उग्र समर्थक था। जबसे सन् १९१९ का सुधार कानून लगा और शिक्षा–विभाग हस्तांतरित विषय बनकर प्रांतीय सरकारों एवं प्रांतीय भारतीय निर्वाचित मंत्रियों का उत्तरदायित्व बन गया तब विवेकपूर्वक निर्वाचनाधिकार का उपयोग कर सुयोग्य व्यक्तियों को सत्ता-स्थान पर स्थापित करने की राजनैतिक समस्या सामने आई। शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा की सौगात लेकर प्रांत प्रांत और ग्राम ग्राम में पहुँचने का राजनैतिक महत्वाकांक्षियों को एक अमोघ शस्त्र के रूप में प्राप्त हुई। प्रांतीय मंत्रियों ने अपनी सत्ता स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं के जिम्मे कर दी जिससे एक स्थानीय राजनीति जैसा नया सवाल भी खड़ा हो गया। इस युग की प्रधान रेखा विभिन्न प्रांतों द्वारा अनिवार्य शिक्षा कानूनों का पास करना था जो कि शती की दूसरी और तीसरी दशाब्दी के भीतर संपन्न हो चुका था। उन कानूनों, तथा शिक्षा-

प्रसार से उत्पन्न समस्याएँ शासकीय, शिक्षात्मक और राजनैतिक तीनों ही प्रकार की थीं। फलस्वरूप सर जान साइमन की अध्यक्षता में सन् १९३५ के विधान की भूमिका प्रस्तुत करने का कार्य प्रारम्भ किया गया था और इसी साइमन कमीशन की शिक्षा–उप-समिति थी हार्टाग समिति जो इस युग की दूसरी महत्वपूर्ण घटना है। संक्षेप में इन दोनों घटनाओं से इस पूरे युग का शिक्षा-इतिहास पूर्ण हो जाता है। हार्टाग कमेटी ने पहले तो प्रस्तुत समस्याओं का निदान किया और बाद में उनके हल भी सुझाये। परन्तु सरकारी और गैर सरकारी मतों का वैमनस्य सदा बना ही रहा जो कि हमारी राजनैतिक द्विविधा का प्रतीक है।

विस्तार और संकुचन।

शिक्षा की योजनाओं की परम्परा कुछ ऐसी रही है कि एक समय तो उनमें उफान आता है और फिर दूसरे ही क्षण उस उफान को वश में करने की चिंता छा जाती है। सन १९१७-२७ की दशाब्दी में ऐसा ही उफान आया और दनादन प्रांतीय सरकारों ने स्कूलों और कानूनों की भरमार लगा दी। फिर जब आर्थिक दुरवस्था आई और खजाना खाली होने लगा तो उसे रोकने की पड़ी और प्रसार–योजनाएँ एक किनारे डाल दी गई। हार्टाग समिति ने इसी परम्परा में अभी तक की शिक्षा को उचित ढंग से नियंत्रित और सुव्यवस्थित करने के प्रस्ताव रखे तथा प्रायमरी शिक्षा के विषयों में बड़े महत्वपूर्ण सुझाव पेश किये।

गांवों की अपनी निजी आर्थिक–सामाजिक और नैतिक समस्याएं और शिक्षा–प्रसार–योजना।

भारत की प्रायमरी शिक्षा की समस्या भारत की ग्रामीण समस्याओं का एक रूप है। ग्रामों में इसका प्रसार और व्यवस्था करना वहाँ की आर्थिक, सामाजिक और नैतिक परिस्थितियों के अधीन है। नगरों में इसका प्रबन्ध आसान है और अधिक ठीक भी हो सकता है परन्तु नगरों में अधिक से अधिक भारत की १३ फी सदी जनता रहती है। ग्रामों

में निर्धनता, निरक्षरता और रूढ़िवादिता लगभग सभी माता-पिताओं के गले पड़ी हुई है। एक ओर तो वे अपने बच्चों को शिक्षा-क्षेत्रों में भेजना ही नहीं चाहते और उसके लाभ ही नहीं समझते; दूसरी ओर यदि भेजना चाहें भी और यदि लाभ भी समझें तो बच्चे को पढ़ने के लिए भेजने का मतलब होता है उन्हें कमाई के क्षेत्र से बाहर करके अपनी निर्धनता को और बढ़ाना। फिर गांव काफी दूर–दूर पर बसे हुए हैं, और बिरले हैं तथा इतनी कम आबादी के हैं कि हर गाँव में स्कूल खोलना बड़ा खर्चीला साबित होगा। जात–पाँत, धर्म–अधर्म, और भाषाओं के कारण अलग अपने किस्म की समस्यायें प्रस्तुत करते हैं। आवागमन के साधनों के अभाव में महामारियों, ऋतु परिवर्तनों और असभ्यता के कारण लोग अपने ही क्षेत्र में छिपे रहना उचित समझते हैं कि जो शिक्षा की जिज्ञासा के हित में लाभकारी नहीं होता।

अपव्यय और गति–अवरोध के कारण दूर किये जावें : वयस्कों और प्रौढ़ों को शिक्षित बनाया जावे।

दूसरी समस्या है स्थापित पाठशालाओं के पूर्ण उपयोगी सिद्ध होने की। पहले तो पाठशालाएँ कायम करना ही एक कठिन चीज है। फिर जो कायम हैं? उनसे पूरा लाभ उठाना और उठने देना दूसरी बात हैं। सारी की सारी प्रणाली के विषय में हार्टाग कमेटी ने दो बातें कहीं कि यहां अपव्यय (Wastage) और गति-अवरोध (Stagnation) बहुत हो रहा है। मतलब यह कि अनेक कारणों से पूरी प्रायमरी शिक्षा पूर्ण होने के पूर्व ही विद्यार्थी पढ़ना छोड़ देता है जिससे शिक्षा का अपव्यय हो जाता है। दूसरे एक ही कक्षा में अनेक बार एक विद्यार्थी एक एक साल के स्थान पर दो-दो, तीन तीन साल पड़ा रहता है जिसका अर्थ है कि वह प्रगति नहीं कर रहा। फिर यदि जो कुछ थोड़ी बहुत साक्षरता उसने अपनी आयु के प्रारंभिक वर्षों में प्राप्त भी कर ली तो उसे स्थायित्व देने के लायक बाद में वातावरण नहीं प्राप्त होता। न तो उसके माता-पिता ही शिक्षित हैं और न उसे उपयुक्त पुस्तकें खरीद कर पढ़ने के साधन

प्राप्त हैं और न ऐसे उपयुक्त पुस्तकालय ही मौजूद हैं। मतलब यह कि उनकी साक्षरता को प्रोत्साहन देना तो दूर रहा उसे जैसे का तैसा बना रखना भी कठिन है। कालांतर में वे बिलकुल निरक्षर बन बैठते हैं। विद्या और ज्ञान-व्यवहार और उपयोग से स्थायित्व और उपयोगिता लाभ करते हैं; परन्तु इन परिस्थितियों में हमारी शालाएँ जो कुछ भी उद्योग करती हैं वह महा निरर्थक सिद्ध होता है। बात यह है कि प्रौढ़ों को शिक्षा देने, ज्ञानवान् बनाने के साधनों की ओर कोई खास ध्यान नहीं दिया गया। कभी एक-आध लालटेन-भाषण करा दिया या कहीं एक आध रात्रि-शाला लगवा दी जाती है। अतः किसी प्रौढ़–शिक्षा योजना के द्वारा वयस्कों को शिक्षा दे सकना ही एक-आध तरीका सीधा दिखता है।

शिक्षा–संस्थाओं का असंतुलित वितरण: आर्थिक कठिनाइयों का प्रश्न: जनसंख्या की समस्या।

आबादी की दृष्टि से भारत के गांव इतने छोटे २ हैं कि मान लो वहां स्कूल खोल भी दिये जावें तो उपयुक्त और पर्याप्त मात्रा में शिक्षा-सामग्री, इमारत, अध्यापक इत्यादि का प्रबन्ध कर सकना सिवा आर्थिक-अपव्यय के और कुछ नहीं होता। परिणाम स्वरूप मितव्ययिता और पैसों की कमी के कारण अधिकांश शालाएँ बिना आवश्यक सामग्री के ही चलने को मजबूर होती हैं कि जिनसे ठीक शिक्षा का मिलना संभव नहीं होता। यह भी देखा गया है कि सामुहिक रूप में स्कूलों का वितरण जन-संख्या की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं। उनके स्थानों में इतने ज्यादा जरा जरा से स्कूल हैं कि लड़कों की भरती के लिये लड़े मरते हैं। उधर विशाल क्षेत्र इतने खाली पड़े हुए हैं कि वहां एक छोटा-सा भी स्कूल नहीं। एक-शिक्षक-शालाएँ एवं क्षण-भंगुर स्कूल भी अपनी समस्या लेकर आगे आते हैं। बंगाल में ७६ फी सदी स्कूल ऐसे ही हैं। मध्यप्रदेश में भी लगभग १५ फी सदी स्कूल एक-शिक्षक-स्कूल हैं।

पाठ्य-क्रम और शिक्षक-वर्ग ।

पाठ्यक्रमों के ऊपर भी हार्टोग समिति ने अपना मत प्रकाशित किया है। जब तक पाठ्य-क्रम शिक्षार्थियों के घरू और सामाजिक वातावरण और जीवन से स्वाभाविक मेल और एकरूपता कायम नहीं कर सकते तब तक ग्रामीणों के अंतर में यह विश्वास ही जड़ें पकड़ेगा कि इन स्कूलों की शिक्षा उनके किसी काम की नहीं। इसलिए उसके ऊपर जो कुछ वे अपने बच्चों को भेजकर नुकसान या त्याग उठाते हैं उससे कुछ बदले में उन्हें मिलने वाला नहीं। मास्टरों की ट्रेनिंग और वेतन इत्यादि भी इतने असंतोषजनक हैं कि उनकी पढ़ाई का प्रभाव यथेष्ट नहीं हो सकता। मास्टरों की स्वयं की सामान्य शिक्षा का स्तर बड़ा नीचा है और जो ट्रेनिंग उन्हें दी जाती है वह भी पर्याप्त नहीं।

निरीक्षकों की अनुपयुक्तता ।

भारत के ग्रामों से आवागमन करने के लिए जो जो कठिनाइयां हैं उनकी सीमा नहीं। एक तो वैसे ही इंस्पेक्टरों की संख्या कम है, फिर साधनों की कठिनाई और भत्ते की अनुपयुक्तता का योग हो जाने पर इच्छा रहते हुए भी वे भीतरी गांवों में स्थित स्कूलों की जाँच नहीं कर सकते। फिर एक एक इंस्पेक्टर के जिम्मे स्कूलों की संख्या भी बहुत ज्यादा है अगर मध्यप्रदेश में ६० हैं तो बंगाल में १८०।

कानून पास करना यथेष्ट नहीं: स्थानीय संस्थाओं की अपनी लोकप्रियता की समस्या।

कमेटी ने स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं को प्रांतीय सरकारों द्वारा दिये गये शिक्षात्मक अधिकार तथा अनिवार्य शिक्षा कानूनों पर भी अपनी सिफारिश और मत प्रकाशित किये। उनका कहना था कि अनिवार्य शिक्षा कानून-मात्र पास कर देने से शिक्षा जैसे राष्ट्रीय महत्व के विषय के प्रति राष्ट्रीय जिम्मेवारी समाप्त नहीं हो जाती क्योंकि उन अनिवार्य कानूनों को कार्यान्वित करने की स्वच्छंदता तो स्थानीय स्वराज्य की संस्थाओं को

पूर्णतः हैं परन्तु ये संस्थाएँ स्वयं अपनी स्थानीय राजनैतिक परिस्थितियों के कारण उन कानूनों को पूरे जोश और लगन के साथ लागू करने के लिए प्रस्तुत नहीं रहती। अनिवार्यता लादने के लिए उन्हें विशेष धन की जरूरत पड़ेगी। यदि आम जनता ने उसका स्वागत नहीं किया तो दंड विधान का आश्रय लेना पड़ेगा जो कि उनकी लोकप्रियता के लिए और भी घातक सिद्ध होगा। फिर सत्ता पा लेने के बाद निर्वाचित संस्थाएँ लोक-प्रियता के साथ इस प्रकार मनमानी नहीं कर सकतीं। बंगाल इत्यादि प्रांतों का अनुभव इसी प्रकार का है कि प्रांतीय धारा सभाओं द्वारा कानूनों के पास हो जाने के बाद भी म्युनिसपैल्टियों और लोकल बोर्डों ने उन्हें कार्यान्वित करने में पूरी ढील ही दे रखी है।

प्रसार के स्थान पर संगठन : भारतीय जनमत का घोर विरोध।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए समिति ने शिक्षा–प्रसार के स्थान पर शिक्षा–व्यवस्था पर अधिक ध्यान दिया और यह सिफारिश भारतीय गैर सरकारी जनमत के सबसे विरुद्ध पड़ी। सरकारी अफसर इस चीज के पक्ष में तो पहले से ही थे पर गैर सरकारी लोगों ने इसे बेकार करार दिया। उनका कहना था कि सार्वजनिक शिक्षा की मंद गति का होना उसके न होने के ही बराबर है। वह गति तो इतनी भी मंद हो सकती है कि जो शिक्षित हो चुके हैं वे भी अशिक्षितों के अंबार के बीच अपने आलस्य और आदत के फलस्वरूप खुद ही कुछ समय में अशिक्षित बन बैठें। शिक्षा की बूंद-बूंद कोई काम की नहीं; उसकी तो अजस्र धारा बहना चाहिये, तभी कुछ असर पड़ सकता है। किसी खेत के बेकार बीजों को उखाड़ फेंकने का यह तरीका तो नहीं है कि एक गज भर भूमि के बीजे उखाड़ दिये और फिर रुक गये ताकि दूसरे दिन दूसरी जगह के बीजे उखाड़ देवें। इस बीच में कल की जगह पर फिर से बीज ऊग जावेंगे और इस तरह अज्ञान के बीज अनादि और अनंत काल तक भी उखड़ न सकेंगे। जिस रफ़्तार से भारत की आबादी बढ़ रही है उसके अनुपात में साक्षरों की वृद्धि बहुत ही कम है और अगर यही क्रम रहा तो सारा शिक्षा-प्रसार

जहां का तहां रखा रह जावेगा। फिर संख्यात्मक वृद्धि माध्यमिक और उच्च क्षेत्र में भले ही अपना महत्व न रखती हो परन्तु प्रायमरी स्टेज में तो उसी का स्थान है। पर हुआ वही जो सरकार को मंजूर होता है, सदा यही हुआ है और अभी भी होता जा रहा है।

सिफारिशें : ग्रामीण स्कूल ग्रामीण जीवन और सुधार का केन्द्र बनें।

हार्टाग कमेटी ने प्रायमरी शिक्षा की न्यूनतम अवधि चार वर्ष की करार दी तथा उसके उद्देश्य को केवल साक्षरता–मात्र संपन्न करने से अधिक उदार बनाने की सिफारिश की कि जिसका अभिप्राय ग्रामीण जीवन का सर्वांगीण स्टैंडर्ड और स्तर ऊंचा बनाना होवे। स्कूल ग्राम सुधार योजनाओं और कार्यवाहियों का प्रधान केन्द्र बने। रही कक्षाओं की बात सो स्कूलों के घंटे और उनकी छुट्टियाँ, ऋतुओं की आवश्यकताओं तथा स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार निश्चित की जावें। साथ ही सबसे छोटी कक्षाओं में सबसे अधिक ध्यान दिया जावे क्योंकि अपव्ययता और गतिनिरोध सबसे अधिक और भयानक इन्हीं कक्षाओं में रहता है। इन्हें दूर करने की सारी चेष्टाएं की जावें और सरकारी इंस्पेक्टरों का स्टाफ बढ़ाकर उन्हें और भी उपयोगी बनाया जावे। स्कूल, साधारण औषधालय, प्रौढ़ शिक्षा, साहित्य और मनोरंजन का केन्द्र बने। प्रायमरी स्कूल के मास्टरों की सामान्य शिक्षा का स्तर बढ़ाया जावे और साथ ही उनकी ट्रेनिंग की अवधि भी काफी लम्बी रहे। उनकी ट्रेनिंग संस्थाओं के अध्यापकों की योग्यता में भी वृद्धि की जावे। जो पुराने हो चुके हैं उनके लिए रिफ्रेशर-कोर्सों की व्यवस्था हो। मास्टरों का वेतन–मान भी इतना आकर्षक होना चाहिये कि सुयोग्य उम्मीदवार उस ओर आवें। अतः अनिवार्यता लादने की अधिक भाग–दौड़ करना उचित नहीं। हां, उसे लाने के लिए उपयुक्त भूमिका तैयार करने में कोई कोर कसर न रखी जावे। और चूंकि विषय राष्ट्रीय महत्व का है, सारी सत्ता और अधिकार स्थानीय संस्थाओं के हाथों न सौप दिये जावें बल्कि प्रांतीय और केन्द्रीय सरकारें भी नियंत्रण रखें।

इन सिफारिशों के अनुरूप सारी सरकारी चेष्टाएं गुणात्मक सुधार पर ही केन्द्रित रहीं। मास्टरों की ट्रेनिंग में सुधार किया गया तथा उनके सिलेबस को ग्रामीण जीवन और वातावरण के साथ संबद्ध करने को चेष्टाएँ की गईं। परन्तु जहाँ तक अनिवार्य शिक्षा की बात है आम तौर पर वह लड़कियों की अपेक्षा लड़कों पर अधिक लागू की गई वैसे यदि लड़कियों पर वह अधिक लगाई गई होती तो लार्ड कर्जन के सँप्रदाय के विचारकों को वह अधिक हित पूर्ण जान पड़ती। जिस रफ़्तार से अनिवार्यता चलाई जा रही थी उस हिसाब से तो संपूर्ण भारत में शिक्षा प्रसार करने में सदियाँ भी बीत सकती हैं। अनिवार्यता गांवों की अपेक्षा शहरों में अधिक सफल हुई और यद्यपि म्युनिसिपैल्टियों ने अपराधियों पर मुकदमा चलाने में कोई बड़ी सख्ती नहीं बताई तो भी माता-पिताओं ने बच्चों को पढ़ने के लिए भेजा। पुस्तकालयों, प्रौढ़ शिक्षा इत्यादि की ओर केवल संकेत–मात्र होकर रह गया; कुछ काम न हुआ।

अध्याय १३

माध्यमिक शिक्षा—१९१९-३५

मातृभाषा अध्यापन का माध्यम : मध्यप्रदेश का नेतृत्व ।

माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में भी विस्तार एवं नवीन स्कूलों की स्थापना तो हुई ही पर सबसे पते की जो बात हुई वह थी मातृ-भाषा का माध्यम । इस क्षेत्र में मध्यप्रदेश ने नेतृत्व किया और प्रांत के समस्त सरकारी स्कूलों में सन् १९२२ से हिन्दी या मराठी के माध्यम द्वारा पढ़ाये जाने के लिये नियम बना दिया गया । यद्यपि हिन्दी या मराठी माध्यम गैर सरकारी शालाओं के लिये वैकल्पिक था तो भी स्थानीय देश भाषा को छोड़ना संभव न हुआ सरकारी स्कूलों ने नेतृत्व किया । परिनामत: अल्पमत वालों की भाषा को स्वीकार न किया जाने सकने के कारण एक अंग्रेजी माध्यम का वर्ग भी प्रत्येक सरकारी हाई स्कूल में रख लिया गया। परन्तु यह भी स्थानीय मांग के ऊपर निर्भर था । ५४ में से लगभग ३० प्राइवेट स्कूल १९३५ के विधान के लागू होते-होते मातृ-भाषा के जरिये शिक्षा देने लगे ।

इतना होने पर भी अंग्रेजी का मोह माता-पिताओं से छूटा न था । यूनिवर्सिटी स्टेज में अभी शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही थी । और सरकारी नौकरियों में प्रवेश पाने का साधन अंग्रेजी द्वारा सचालित कांपीटिटिव परीक्षाएँ थीं । फिर जहां एक से अनेक देश–भाषाओं के आपसी संघर्ष का सवाल था वहां भी अंग्रेजी को ही अपना लेना श्रेयस्कर समझा गया । उत्तर प्रदेश में देवनागरी और फारसी लिपि का झगड़ा शुरू हुआ । उपयुक्त पाठ्य–पुस्तकें वैज्ञानिक विषयों के लिये न मिल सकीं पर धीरे-धीरे उनकी रचना होती ही गई ।

संघर्ष का सवाल था। अतः उन्होंने अंग्रेजी को ही अपना लेना श्रेयस्कर समझा। उत्तर प्रदेश में देवनागरी और फारसी लिपि का झगड़ा शुरू हुआ। प्रारम्भ में उपयुक्त पाठ्य–पुस्तकें वैज्ञानिक विषयों के लिये न मिल सकीं पर धीरे-धीरे उनकी रचना होती ही गई।

कृषि, लुहारी, बढ़ईगिरी की शिक्षा।

मास्टरों की ट्रेनिंग पर सरकार ने ध्यान तो दिया पर असल में व्यावसायिक शिक्षा को माध्यमिक शालाओं में लागू करने की सरकारी उत्कंठा मध्यप्रदेश में सबसे अधिक दिख पड़ी। लगभग सोलह सरकारी हाई स्कूल और मिडिल स्कूलों में मेन्युअल ट्रेनिंग की क्लासें खोली गई और लड़के बढ़ईगिरी का विषय लेकर मैट्रिक की परीक्षा में बैठने लगे। अन्य स्कूलों में दर्जीगिरी, बुनकरी और लुहारी के व्यवसायों की भी शिक्षा शुरू हो गई। नागपुर, बरार और छत्तीसगढ़ कमिश्नरियों के कई हाई और मिडिल तथा हिन्दी मिडिल स्कूलों में कृषि का विषय समाविष्ट कर दिया गया। होशंगाबाद का पवाँरखेड़ा हिन्दी मिडिल स्कूल अंग्रेजी मिडिल कर दिया गया। बैतूल बाजार में एक नया अंग्रेजी मिडिल स्कूल कृषि का विषय पढ़ाने के वास्ते खुला तथा बासिम और बैतूल के हाई स्कूलों में कृषि का विषय सम्मिलित हुआ। प्रायः सभी स्कूलों में मेन्युअल ट्रेनिंग और कृषि के विशेषज्ञ मास्टरों के हाथों अध्यापन का काम रहा।

नये हाई स्कूल खोलने में प्रधान हाथ प्राइवेट संस्थाओं का रहा इसलिए अर्ध-ग्रामीण या अर्ध-शहरी क्षेत्रों में भी नवीन शालाएँ खुलीं। इन शालाओं की व्यवस्था में आपसी कलहें होने के कारण हानि हुई तो भी शालाओं की संख्या बढ़ी, भले उनके अनुशासन और अध्यापन इत्यादि का स्तर नीचा हो गया।

स्त्री–शिक्षा, सहशिक्षा और शिक्षित–बेकारी की समस्याएँ ।

अन्य समस्याओं के साथ इस स्टेज पर सबसे बड़ी समस्या आई बालिकाओं की शिक्षा की और उसी के साथ शिक्षित बेकारी की। शिक्षा की उम्मीदवार लड़कियों की संख्या बढ़ी सो यह निश्चित करना पड़ा कि उन्हें सहशिक्षा वाले स्कूलों में पढ़ाया जावें या विशिष्ट गर्ल्स स्कूल ही खोले जावें। यदि बालिकाओं के स्कूल खोले गये तो उनके निरीक्षण का भी प्रश्न सामने आवेगा। क्या पुरुष निरीक्षक हों या स्त्री ? क्या भारतीय स्त्रियां दौरा इत्यादि सफलता पूर्वक करके निरीक्षण कर सकेंगी ? बालिकाओं की आवश्यकता और रुचि के अनुकूल कोर्सों का विधान करना भी आवश्यक हुआ। इधर व्यावसायिक हाई स्कूलों की कमी के कारण बालकों ने या तो कालेजों की शरण ली या जो कुछ नौकरियों में घुस पाये तो घुसे पर अधिकांश के माथे बेकारी पड़ी। संप्रदायवादी संस्थाओं में यद्यपि धार्मिक–शिक्षा को प्रोत्साहन मिला परन्तु साम्प्रदायिकता को भी स्थान मिला जिसने सन् १९४७ में भारत का विच्छेद कराया जो इस युग के बाद की राजनैतिक विभीषिका है।

यूनिवर्सिटी शिक्षा—१९१९-३५

लगभग हर प्रान्त में एक यूनिवर्सिटी बनी ।

भारतीय मंत्रियों के हाथ में शिक्षा–विभाग के आने से सभी क्षेत्रों में विस्तार हुआ, नये नये विश्वविद्यालय कायम हुए और कई उदारमना महानुभावों ने अपार धन–राशि दान में भी दी। इन्हींके प्रयत्नों से प्राचीन संबद्धतादायिनी यूनिवर्सिटियों ने अपने कार्य–क्षेत्रों में नवीन कार्यक्रमों और योजनाओं का प्रादुर्भाव किया। मध्यप्रदेश में नागपुर, आंध्र, आगरा, अन्नामलाई और दिल्ली यूनिवर्सिटियां इसी युग में बनी हुई हैं। लगभग प्रत्येक प्रांत में एक-एक यूनिवर्सिटी तो बन ही गई थी। छोटे प्रांतों में यथा सिन्ध, उड़ीसा, आसाम में पास के प्रांतों की यूनिवर्सिटियों से काम

लिया जा रहा था। आंध्र–यूनिवर्सिटी भाषावार प्रांतों के निर्माण के सिद्धांत के अनुकूल बनी थी, यद्यपि यह प्रश्न अभी तक पूर्णतः सुलझा नहीं है और भारत सरकार ने उसे अप्रासांगिक कह रखा है।

नागपुर यूनिवर्सिटी कानून, १९२३।

नागपुर यूनिवर्सिटी एक्ट सन् १९२३ में पास हुआ। प्रारम्भ में उसका कार्य केवल संबद्धता देने का था। बाद में जरूर उसने शीघ्र ही एक लॉ कालेज, डी० लक्ष्मीनारायण टेक्नालाजीकल इंस्टीट्यूट ऑफ रिसर्च तथा मास्टरों का ट्रेनिंग कालेज खुलवा लिया है जो उसी की संपूर्ण व्यवस्था में है। यों तो मध्यप्रदेश की सरकार सन् १९१४ से इस विषय पर विचार कर रही थी परन्तु कलकत्ता यूनिवर्सिटी कमीशन की रिपोर्ट पेश होने के बाद सन् १९१९ में उस पर पुनः विचार किया गया और १९२३ में नागपुर यूनिवर्सिटी कानून बना दिया गया।

आंध्र का शिक्षा–माध्यम देश–भाषा: आगरा में संबद्धतादायिनी यूनिवर्सिटी बनी।

मद्रास प्रेसीडेन्सी के तेलुगु-भाषी निवासियों ने अपनी एक यूनिवर्सिटी कायम करने की मांग पेश की जो कि सन् १९२६ के एक्ट द्वारा स्वीकृत भी की गई। इस यूनिवर्सिटी ने भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बना देने का कार्यक्रम सामने रखा है। सन् १९३७ से इसने अध्यापन का कार्य भी ले रखा है। इसी तरह उत्तर प्रदेश के आगरा नगर में सन् १९२७ के कानून के मुताबिक आगरा विश्वविद्यालय कायम हुआ जो कि संबद्धता देने वाला तथा अध्यापनकारी विश्वविद्यालय है। वास्तव में उत्तरप्रदेश के सभी जिलों तक इसकी भौगोलिक सीमा निर्धारित कर दी गई है। ऐसे कालेज जो इलाहाबाद विश्वविद्यालय की बाहरी सीमाओं के भीतर आते थे वह सब आगरा के अंतर्गत चले गये। बनारस, अलीगढ़, इलाहाबाद और लखनऊ जो केवल स्थानीय अध्यापनकारिणी तथा परीक्षक यूनिवर्सिटियाँ थीं उनकी सीमाएँ छोड़ दी गईं। राजपूताना और मध्य-

भारत के समस्त कालेज भी इसी से संबद्ध हुए। प्रधानतः आगरा संबद्धता-दायिनी यूनिवर्सिटी है जो अध्यापनकारिणी यूनिवर्सिटियों के बाहर उत्तरप्रदेश, विन्ध्यप्रदेश और मध्यभारत के सभी क्षेत्रों के कालेजों को संबद्धता देती है।

सर अन्नामलाई चेट्टियर की उदारता : ट्यूटोरियल प्रणाली।

सर अन्नामलाई चेट्टियर मद्रास के एक बड़े उदारमना महानुभाव थे जिन्होंने चिदम्बरम् नामक नगर में अंग्रेजी, तामिल और संस्कृत की तीन बड़ी संस्थाएँ चला रखी थीं। सन् १९२९ में मद्रास सरकार को उन्होंने ये तीनों संस्थाएँ और २० लाख रुपये नगद का दान एक विश्वविद्यालय कायम करने के लिए दिया। उधर सरकार ने अपनी तरफ से उसमें २९ लाख रुपये और मिलाये और अन्नामलाई विश्वविद्यालय कायम किया। इस यूनिवर्सिटी ने पहली बार ट्यूटोरियल प्रणाली का उपयोग कर रिसर्च तथा भारतीय भाषाओं, विशेषतः तामिल, में पाठ्य-ग्रन्थों की रचना का सूत्रपात किया।

दिल्ली की संघीय यूनिवर्सिटी।

दिल्ली विश्वविद्यालय यों तो सन् १९२२ के एक्ट के मुताबिक एक अध्यापनकारिणी और निवासदायिनी यूनिवर्सिटी के रूप में चल पड़ा था। पर साधन और धन के अभाव में यह उद्देश्य संपन्न हो न सका। अतः दिल्ली के सेंट स्टीफ़न्स, हिन्दू कालेज और रामजस कालेज इत्यादि जो भी स्वतंत्र कालेज थे उन्हीं को यूनिवर्सिटी की शिक्षात्मक व्यवस्था के अंतर्गत अध्यापन का भार सौंपकर सन् १९३७ से उसे फीडरल (संघीय) यूनिवर्सिटी बनाने का प्रयास किया जा रहा है।

विभागों की बाढ़।

इन नवीन यूनिवर्सिटियों की स्थापना के सिवा पुरानी यूनि-वर्सिटियों में भी कानूनी तथा आंतरिक परिवर्तन किये गये। सभी का अनुभव यही रहा कि ग्रेजुयेटोत्तर कक्षाओं तथा रिसर्च के हेतु स्टाफ और

सुविधायें जुटाने में जितना व्यय होता है उस अनुपात में फीस और आमद होती नहीं और इसलिए यूनिवर्सिटी को सदा घाटा ही हुआ करता है। परन्तु इससे यूनिवर्सिटियों ने अपने विभागों में कमी करने का सबक नहीं सीखा और उन्होंने बड़े महत्वाकांक्षाओं वाले कार्यक्रमों को अपनाकर अपने कोष खाली कर डाले।

किस सीमा तक यूनिवर्सिटियों ने अपने विभाग बढ़ा रखे इसका अंदाज निम्नलिखित आंकड़ों से हो सकेगा:–(**१८५ पृष्ठ पर देखिये**)

आर्थिक–समस्या सप्रू–कमेटी : बेकारी पर: सैन्य शिक्षा लोकप्रिय हुई।

दूसरी समस्या आई यूनिवर्सिटी के शिक्षा-प्राप्त युवकों की बेकारी की। इसके हेतु सन् १९३१ में सर तेजबहादुर सप्रू की अध्यक्षता में उत्तरप्रदेशीय सरकार ने एक कमेटी बनाई। सरकारी नौकरियों में जगह का मिलना दुष्वार हो गया था, भारतीय उद्योगों और व्यवसायों में कुछ ऐसी नौकरी मिलने की आशा ही नहीं थी। अतः यूनिवर्सिटी–शिक्षा के आंतरिक और बाह्य अंग सभी अभूतपूर्व संक्रांति के कराल गाल में फँस गये। हां उनकी इंटरमीजियेट कक्षाओं ने कुछ आर्थिक सहायता की पर वह बड़े काम न आई। सैन्य शिक्षा ने भी यूनिवर्सिटियों में स्थान पाया और उसकी प्रगति व्यय का साधन बनी। वह बड़ी लोकप्रिय हुई और उसकी मांग नित्य प्रति बढ़ती गई। इसका अंदाज निम्नलिखित आंकड़ों से हो सकेगा :— (**१८७ पृष्ठ पर देखिये**)

उच्च कोटि की अन्य संस्थाएं।

इन यूनिवर्सिटियों के अतिरिक्त सारे देश भर में रिसर्च और अनुसंधान की कुछ उच्च संस्थाए कायम हुई कि जिनकी स्थापना का श्रेय कुछ प्रतिभाशाली विद्वानों अथवा धनी दानशीलों को है। उनका स्टैंडर्ड उच्च होते हुए भी वे स्वयं किसी यूनिवर्सिटी से न तो सबद्ध ह और न स्वयं ही यूनिवर्सिटी मानी जाती हैं। उनमें भारत के तथा विश्व

के चोटी के विद्वानों, वैज्ञानिकों और पंडितों का समागम उपलब्ध होता है। कुछ को तो सरकारी सहानुभूति मात्र प्राप्त है और कुछ को आर्थिक सहायता भी। स्वतंत्र भारत के प्रसंग में ये संस्थाएं राष्ट्रीय उत्कर्ष और कल्याण के साधन जुटावेंगी, ऐसी आशा की जाती है। इनमें सबसे पुरानी संस्थाएँ हैं:—

(१) **इंपीरियल कौंसिल आफ एग्रीकल्चरल एंड साइंटिफ़िक रिसर्च:**—कृषि और विज्ञान अन्वेषण शाला। इसकी स्थापना हेनरी फ़िप्स नामी अमरीकी दाता के तीस हजार पौंड दान से हुई थी जिसे लार्ड कर्ज़न को उसने दिया था। यह रिसर्च केन्द्र पहिले बिहार के पूसा नामक स्थान में खोला गया पर सन् १९३४ में दिल्ली में हटा दिया गया। आजकल इसके डायरेक्टर सर शांतिस्वरूप भटनागर हैं।

(२) **विज्ञान का इंडियन इंस्टीटयूट, बंगलोर :**—सन् १९११ में टाटा—कुटुम्ब की दान शीलता से स्थापित हुआ। बिजली, औषधि, भौतिक शास्त्र रसायन शास्त्र की खोजों का यह सर्व श्रेष्ठ केन्द्र है।

(३) **कर्वे महिला-यूनिवर्सिटी, पूना:**— वैसे तो सन् १९१६ में प्रोफेसर डी. के. कर्वे ने यह संस्था कायम की ताकि स्त्री—शिक्षा उनकी आवश्यकताओं के मुताबिक हो सके परन्तु सन् १९३९ तक इसे सरकार ने मान्यता नहीं दी थी। पहले इसके दो कालेज बम्बई और पूना में थे फिर बाद में उन्होंने अहमदाबाद, बड़ौदा और नागपुर में कक्षाएं खुलवा दीं।

(४) **बोस रिसर्च इंस्टीटयूट, कलकत्ता :**—सर जगदीशचन्द्र बोस द्वारा सन् १९१७ में कायम किया गया ताकि सहृदय लगनशील विज्ञान—प्रिय अन्वेषकों का एक दल कायम हो सके। यहाँ वैसे पढ़ाई तो नहीं होती पर वनस्पति और उत्पादन—विज्ञान, कृषि और पशु विज्ञान, तथा जाति—शास्त्र और भौतिक शास्त्र पर व्यक्तिगत अध्यवसाय और प्रयासों मे अन्वेषक मौलिक खोजों में रत रहते हैं।

(५) भांडारकर पूर्वी रिसर्च इंस्टीटयूट, पूना :– सन्–१९१७ में प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ और भाषाविद पूर्वी विद्वान् डा० सर रामकृष्ण भांडारकर द्वारा यह संस्था स्थापित हुई। पौर्वात्य भाषाओं के प्राचीन ग्रंथों का प्रकाशन, संशोधन, प्राचीन हस्त-लिपियों का संग्रह तथा प्रकाशन इसका कार्य क्षेत्र है। पाली, प्राकृत, अवेस्ता, पहलवी, फारसी, संस्कृत, अर्ध मागधी भाषाओं और संस्कृतियों में उच्च अध्ययन, अध्यापन की सुविधाओं के लिए बम्बई सरकार से इसको ग्रांट मिलती है।

(६) जामिया मिलिया इस्लामिया, दिल्ली :– इसके संस्थापक मौलाना मुहम्मद अली थे। सन् १९२० में यह संस्था अलीगढ़ में कायम हुई पर सन् १९२५ में दिल्ली हटा दी गई। मिलिया ने सरकारी ग्रांट सदा अस्वीकार की है क्योंकि उसे सम्माननीय स्वतंत्रता के दुख और संकट एक स्थायी ग्रांट की सुरक्षा और पराधीनता से कहीं अधिक प्रिय हैं। इसका एक कालेज दिल्ली में है जिसमें विज्ञान, और फारसी–अरबी –ज्ञान के विषयों में शिक्षा दी जाती है। मिलिया को उर्दू फारसी के महत्वपूर्ण ग्रंथों के प्रकाशन का श्रेय है। इसके वर्तमान अध्यक्ष डॉक्टर मौलाना ज़ाकिर हुसैन हैं।

(७) हारकोर्ट बटलर टेक्नालाजिकल इंस्टीटयूट, कानपुर :– सन् १९२१ में सरकार द्वारा बनाया गया। इसके दो उद्देश्य थे:– एक तो तैल-विषयक रिसर्च का करना तथा उत्तर प्रदेश में संभाव्य औद्योगिक केन्द्रों में काम करने तथा निरीक्षण करने वाले योग्य व्यक्तियों को तैयार करना।

(८) विश्वभारती, शांतिनिकेतन :– महाकवि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विश्व संस्कृति सम्मिलन के स्वप्नों का जीवित प्रतीक है। इसे रवीन्द्र ने सन् १९२२ की ६ मई को स्थापित किया। इसमें पौर्वात्य और पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान तथा संस्थाओं का समन्वय है। विद्या-भवन खोज का केन्द्र है, चीनी-भवन, चीनी संस्कृति का केन्द्र है,

शिक्षा-भवन कलकत्ता यूनिवर्सिटी से सम्बद्ध कालेज है, कला-भवन, संगीत-भवन, शिल्प-भवन और श्री-निकेतन भिन्न-भिन्न विभाग हैं।

(९) **खदान स्कूल, धनबाद** :-सन् १९२६ में भारत सरकार द्वारा बिहार की कोयला खदानों के केन्द्र में खोला गया। इसमें तत्सम्बन्धी विज्ञानों की शिक्षा दी जाती है निम्नतम प्रवेश-योग्यता इंटर है। यहाँ का कोर्स तीन साल का है।

अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड की स्थापना, १९२४ :

इस तरह जब सारे देश में यूनिवर्सिटियों का जाल-सा फैल गया और विविधताओं का समागम हो गया तो उनमें किसी किस्म की एकरूपता तथा एकात्मिकता लाने की आवश्यकता भी महसूस की गई। ज्ञान-केन्द्रों के बीच पारस्परिक सहयोग, ज्ञान का आदान-प्रदान लक्ष्य रूप में सामने आया। साथ ही विदेशों में अपनी डिग्रियों को मान्यता दिलाना भी जरूरी हो गया। एतदर्थ एक कोई केन्द्रीय संस्था जो इन समस्त शासकीय और शिक्षात्मक प्रश्नों को समवेत रूप से देखे और हल करे, जरूरी हुई। विभिन्न यूनिवर्सिटियों के छात्रों के बीच सौहार्द्र और मैत्री बढ़ाना किसी भी शिक्षा-प्रणाली का आदर्श रहा है। सैडलर-कमीशन ने इस ओर संकेत किया था। विदेशों में इस प्रकार की संस्थाएँ प्रेरणा रूप में विद्यमान थीं। अतः जब शिमला में सन् १९२४ मे सभी यूनिवर्सिटियों की एक कांफ्रेंस हुई तो वहाँ पर अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड स्थापित किया गया। तब से उसकी बैठकें विभिन्न यूनिवर्सिटियों के केन्द्र नगरों में समय समय पर होती आती हैं। इन बैठकों में प्रोफेसरों के आदान-प्रदान, सूचनाओं का प्रेषण, डिग्री, डिप्लोमाओं तथा अन्य परीक्षाओं को एक दूसरे प्रांतों तथा विदेशों में मान्यता प्राप्त कराना, अंतर्राष्ट्रीय सभाओं के लिए प्रतिनिधि इत्यादि चुनना, विषयों का विवेचन और निर्णय हुआ करता है। यह बोर्ड पर्याप्त उपयोगी सेवा कर रहा है और भारत के शासनविद् एवं शिक्षा पंडित समवेत रूप से सलाह मशविरा करते हैं।

विश्वविद्यालय	डिग्री वाले विभाग	संस्थाओं की संख्या			शिक्षार्थियों की संख्या		
		वि.वि. के ही भीतर	नगर के कालेज	संबद्ध कालेज	वि.वि. के ही भीतर	नगर के कालेज	संबद्ध कालेज
१. कलकत्ता	आर्ट्स, साइंस, शिक्षा, इंजी, औषधि, ला, पूर्वी विद्या, वाणिज्य।	२५	—	६२	२३६२	—	३२९९५
२. बम्बई	आर्ट्स,साइंस, शिक्षा,इंजी., औषधि ला,वाणिज्य,पूर्वी विद्या,टेक. कृषि ।	३	—	३६	१९१	—	१७५७५
३. मद्रास	आर्ट्स, साइंस, शिक्षा, इंजी,औषधि ला,पूर्वी विद्या,ललितकला,वाणिज्य।	१६	१४	६१	१५०	५३७१	१२०७६
४. पंजाब	आर्ट्स, साइंस,शिक्षा,इंजी.,औषधि ला, वाणिज्य, पूर्वीविद्या, कृषि ।	१५	३	५१	७८६	८८१	१८१७४
५. इलाहाबाद	आर्ट्स,साइंस,ला, वाणिज्य, शिक्षा।	१७	—	—	२०५६	—	—
६. बनारस	आर्ट्स, साइंस, शिक्षा, ला, पूर्वी विद्या, धर्म, टेक्नालाजी ।		८	—	—	३३८५	—

विश्वविद्यालय	डिग्री वाले विभाग	संस्थाओं की संख्या			विद्यार्थियों की संख्या		
		वि.वि. के ही भीतर	नगर के कालेज	संबद्ध कालेज	वि.वि. के ही भीतर	नगर के कालेज	संबद्ध कालेज
७. मैसूर	आर्ट्स, साइंस, इंजी, औषधि टेक्ना	—	९	—	—	२७२५	—
८. पटना	आर्ट्स,साइंस,शिक्षा,इंजी.ला,औषधि	—	—	१७	—	—	५८९८
९. उस्मानिया	आर्ट्स, साइंस, शिक्षा, इंजी, ला, औषधि, धर्म ।	—	९	—	—	१७२३	—
१०. अलीगढ़	आर्ट्स, साइंस, ला, धर्म, शिक्षा ।	१७	—	—	१८२२	—	—
११. लखनऊ	आर्ट्स, साइंस, शिक्षा, औषधि, ला, वाणिज्य, पूर्वीविद्या ।	—	३	—	—	२३४०	—
१२. दिल्ली	आर्ट्स, साइंस, ला ।	३	७	—	१३२	१९८८	—
१३. नागपुर	आर्ट्स, साइंस, शिक्षा, ला, कृषि ।	—	१	१४	—	४५०	३३१७
१४. आंध्र	आर्ट्स,साइंस,शिक्षा,औषधि,पू.विद्या।	२	—	२२	२८०	—	३३७९
१५. आगरा	आर्ट्स, साइंस, ला, वाणिज्य, कृषि,	—	—	१६	—	—	४१३२
१६. अन्नामलाई	आर्ट्स, साइंस, पूर्वीविद्या ।	१	—	—	७४१	—	—

सैन्य-शिक्षा के आँकड़े

यूनिवर्सिटी	कोर का प्रारम्भ वर्ष	स्वीकृत संख्या	१९३७ में संख्या
बम्बई	१९२१	६६३	६५३
कलकत्ता	,,	६६३	५८०
इलाहाबाद	,,		
बनारस	,,		
अलीगढ़	,,	६६३	६३२
लखनऊ	,,		
आगरा	,,		
पंजाब	,,	६६३	५९५
मद्रास	,,	६६३	६४०
पटना	१९२२	१६५	१३१
दिल्ली	१९२४	३३०	३२४
नागपुर	१९२८	३३०	३१९
बम्बई	१९२८	१६५	१६४
ढाका	१९२८	७६	७६

यूनिवर्सिटी प्रश्न

(१) हार्टाग–समिति की प्रायमरी शिक्षा विषयक सिफ़ारिशें लिखो। किस सीमा तक वे कार्यान्वित हुईं ? (१९५०)

(२) हार्टाग समिति की सिफारिशों ने किस सीमा तक प्रायमरी शिक्षा की उन्नति को प्रभावित किया है ? (१९४८)

(३) बहस करो:—

" हाई और मिडिल स्कूलों की वर्तमान प्रणाली में समाज के सभी वर्गों को अपने बच्चों के लिए प्रकार विशेष के स्कूलों का चुनाव करने की लगभग नगण्य ही गुंजाइश है।" हार्टाग समिति (१९३८)

(४) सार्वजनिक शिक्षा की जिस योजना को हार्टाग कमेटी ने सुझाया है उसकी प्रधान रेखायें कौन सी हैं ? सार्वजनिक शिक्षा के लिए निधि जुटाने के विषय में उसके क्या प्रस्ताव थे ? (१९३७)

(५) "भारतीय शिक्षा प्रणाली में सर्वत्र अपव्यय और प्रभावहीनता है"–हार्टाग समिति के इस मत का स्पष्टीकरण करो। इस निष्कर्ष से तुम स्वयं व्यक्तिगत रूप से किस सीमा तक सहमत हो ? (१९३६)

अध्याय १४

वुड-एबट रिपोर्ट (मई १९३७)

समस्या का स्वरूप

सदाचारात्मक योग्यता और व्यावसायिक विशेषज्ञता की शिक्षा का प्रश्न।

व्यावसायिक शिक्षा उद्योग धंधों के विकास से ज्यादा परिमाण में नहीं ही दी जाना उचित है। बड़े पैमानों पर उद्योगों का विकास होने पर उनकी जिम्मेदार जगहें भरने के लिए ट्रेंड व्यक्तियों की आवश्यकता होती है; परन्तु जब तक उन जगहों को पाने की आशाएं काफी न होंगी लोग व्यावसायिक कार्यों की ट्रेनिंग पाने की ओर आकृष्ट न होंगे। हाँ यदि व्यावसायिक शिक्षा बहुत अधिक विशेषज्ञता की ओर झुकी हुई नहीं है और व्यक्ति में उन सदाचारात्मक और बौद्धिक गुणों की सृष्टि ही करती है (यथा मस्तिष्क की विशालता) तो अवश्य कुछ ज्यादा ट्रेनिंग-शुदा व्यक्तियों को अधिक जगहें उपलब्ध हो सकेंगी। ऐसी हालत में प्रांत अपने व्यावसायिक और उद्योग धंधों की शिक्षात्मक आवश्यकताओं की जाँच करे तथा किस किस्म की व्यावसायिक शिक्षा उन्हें चाहना होगी, यह निश्चित करे। किस सीमा तक वह दी जावे तथा हर साल कितने रंगरूट उसमें लग जावेंगे, यह बात जानना जरूरी है।

व्यावसायिक शिक्षा

स्कूलों और व्यवसाय-वृद्धि में संतुलन आवश्यक है : केवल चतुर कार्य-कर्ताओं के बल कच्चा माल उद्योगों में नहीं लगाया जा सकता।

व्यावसायिक शिक्षा साहित्यिक शिक्षा से कोई हल्की चीज नहीं क्योंकि कोई भी देश अपने वाणिज्य और उद्योगों की उन्नति घटिया किस्म के आदमियों के बूते नहीं कर सकता। इस शिक्षा से भी मन, मस्तिष्क

और शरीर की शक्तियों का विकास होगा और इसलिए व्यापार में भी उचित परिमाण में उत्तमोत्तम कोटि के व्यक्तियों की हमें जरूरत होगी। सामान्य शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा कोई विरोधी शाखाएं नहीं हैं। फर्क यही है कि सामान्य शिक्षा पहले आवेगी व्यावसायिक बाद में। व्यावसायिक शिक्षा का प्रत्येक विषय सामान्य शिक्षा वाले स्कूल में बीज रूप में प्रारम्भ हो चुका होगा। प रन्तु एक ही स्कूल में दोनों की शिक्षा देना उचित नहीं क्योंकि दोनों के उद्देश्य अलग हैं। हाँ, उद्योग-धंधों के लिए अवश्य कुछ थोड़ी बहुत शिक्षा वाणिज्य की शिक्षा के साथ दी जा सकती है। व्यावसायिक शिक्षा अकेले स्कूल के बूते की बात नहीं है वह काम पाने की सामान्य जगहों के वास्ते विशिष्ट तैयारियाँ प्रदान करती है। इसलिए स्कूलों के साथ वाणिज्य और उद्योग पूर्ण सहयोग देकर ही व्यावसायिक शिक्षा को उचित और पर्याप्त बना सकते हैं और ऐसा सहयोग भारत में अभी तक नहीं है। भारत में कुछ ऐसा भ्रम-सा फैला है कि चतुर कार्यकर्त्ताओं के अर्थात् व्यावसायिक शिक्षा के माध्यम-मात्र से देश के कच्चे माल का उपयोग उद्योगों में होने लगेगा। चतुर कार्यकर्त्ता की आवश्यकता है परन्तु उन अकेलों के बल पर संगठित उद्योगों की रचना नहीं होती, एतदर्थ पूंजी, आवागमन के साधन, उचित और विश्वासी खरीददार बाजार भी जरूरी हैं। इसलिए संगठित उद्योगों के लिए कार्यकर्त्ताओं की ट्रेनिंग की योजना करने में सावधानी बरती जाना चाहिए। छोटे पैमाने पर चलने वाले उद्योग धंधों और किसानों की चतुराई तथा कुशलता को सुधारने की योजना एकदम प्रारम्भ की जा सकती है।

भारत के उद्योग और वाणिज्य

छोटे पैमाने और संगठित उद्योगों के वास्ते अलग किस्म के कार्यकर्त्ता और शिक्षा जरूरी होती है : निरीक्षक कार्यकर्त्ताओं की जरूरत सबसे पहले है।

भारतीय ग्रामीण की दशा सुधारना एक कठिन काम है। उसके

छोटे-छोटे खेत, छोटे-छोटे गांव, शहरों से दूरी, निरक्षरता, रूढ़िवादिता सभी समस्याएँ हैं। इसलिये छोटे पैमाने पर काम करने वाले कार्यकर्त्ताओं को दो भागों में बाँट लिया जावे--(१) वे जो संगठित उद्योगों से होड़ करते हैं (२) वे जो संगठित उद्योगों में रहकर भी हस्त कौशल चलाते हैं। पहलों को अच्छे औजारों और उन्हें चलाने की योग्यता की जरूरत है परन्तु दूसरों को केवल व्यक्तिगत कौशल की। इसलिये दोनों की ट्रेनिंग की ऐसी व्यवस्था की जाये कि जो अभी तक देश में मौजूद नहीं है। छोटे पैमाने वाले उद्योग भारत में व्यापक हैं और संगठित उद्योगों के बढ़ जाने पर भी अल्प परिमाण में खपने वाले तथा व्यक्तिगत विशेषता की अपेक्षा रखने वाले मालों के उत्पादन का बाजार यहां उन्हें मिलेगा ही। इसलिए यदि दोनों किस्म के उद्योग साथ-साथ चलते हैं तो छोटे पैमाने वाले उद्योगों को बदलती परिस्थितियों के बीच रह सकने की सुविधाएं अवश्य दी जानी चाहिये जो कि उसकी कला में ट्रेनिंग देने पर उपलब्ध हो सकती हैं।

वाणिज्य के कार्यकर्ताओं की शिक्षा।

संगठित उद्योगों में कुछ ऐसे होते हैं जहां निरीक्षक को बहुत व्यावहारिक अनुभव जरूरी होता है तथा दूसरों में कल कारखाने ऐसे सरल होते हैं जिनसे उनका आवश्यक ज्ञान जल्दी ही प्राप्त हो जाता है। हर उद्योग में तीन तरह के कार्यकर्त्ता होंगे:--(१) संचालक और व्यापार-व्यवस्थापक (२) निरीक्षक (३) कार्यकर्त्ता। पहली कोटि के कार्यकर्त्ताओं की भारत में अभी कोई खास जरूरत नहीं है इसलिए भले उस पर ध्यान रखा जाये तो भी उनके लिये ट्रेनिंग की सुविधाएं बढ़ाना जरूरी नहीं। जो हैं वही काफी हैं और अच्छा काम भी कर रहीं हैं तथा जरूरत पड़ने पर एकदम बढ़ भी सकती हैं। परन्तु दूसरी कोटि के सुपरवाइजर, फोरमेन, चार्ज-हेंड इत्यादि की ट्रेनिंग पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। उत्पादन की दृष्टि से तथा संगठित उद्योगों के लिए भारत में इस समय इन्हीं की सबसे अधिक जरूरत है। पूरे वक्त व्यावसायिक शिक्षा देने वाले स्कूलों

से तीसरी कोटि के कार्यकर्त्ताओं की ट्रेनिंग पूरी नहीं होगी, परन्तु जो कार्यकर्त्ता मशीनों की देखभाल के लिए हैं उनकी ट्रेनिंग हो जायेगी ।

इसी तरह वाणिज्य के क्षेत्र में कार्यकर्त्ता तीन कोटियों में बंट सकते हैं :--(अ) व्यापारी और उद्योगपति जो अपनी दम पर लेनदेन करते हैं। (ब) व्यावसायिक कार्यकर्त्ता जो बैंक, कानून और बीमा इत्यादि में लगते हैं। (स) बाबू लोग जो दूसरों के लेनदेन का हिसाब रखते हैं।.

व्यापार और शिक्षा के बीच सहयोग

उद्योगपति स्थायी इमारतें मशीनें इत्यादि दें।

(४) उद्योग और वाणिज्य तथा शिक्षा के बीच में निकट और नियमित सहयोग उत्पन्न करने के लिये प्रत्येक प्रांत में एक सलाहकार समिति बना ली जावे जिसमें डी. पी. आई, इंडस्ट्रीज़ के डायरेक्टर, व्यावसायिक स्कूलों के दो एक प्रधान, तथा चार पाँच अनुभवी और चतुर व्यापारी गण सदस्य हों। इस समिति के अंतर्गत इंजीनियरिंग, सूत कपास, कृषि, घरेलू धंधों, वाणिज्य इत्यादि विषयक उपसमितियां भी बनाई जावें जो शिक्षा का पाठ्यक्रम, सामग्री इत्यादि सुझावें तथा शालाओं में जाकर स्वयं भी वस्तुस्थिति देखें। इधर उद्योगपति लोग अपनी तरफ से इमारतें, कल मशीनें, सामग्री और कोष जुटाकर भी व्यावसायिक शिक्षा में मदद कर सकते हैं। यूरोप में इस प्रकार की मदद उद्योगपतियों से काफी प्रमाण में प्राप्त होती है ।

व्यावसायिक शिक्षा का संगठन

जूनियर, सीनियर व्यावसायिक शालाएँ ।

(५) व्यावसायिक स्कूलों का वर्गीकरण दो आधारों पर होगा । (अ) प्रवेश के समय की योग्यता, तथा (ब) अध्यापन का विशुद्ध व्यावसायिक उद्देश्य । व्यावसायिक शिक्षा का आधार सदा उपयुक्त सामान्य शिक्षा होगा । प्रवेश के वक्त विद्यार्थी कम से कम मिडिल तक तो अवश्य

ही पढ़ा हो। ऐसे प्रवेशार्थी को जूनियर व्यावसायिक शालाओं में लिया जा सकता है तथा जिसने हाई स्कूल तक पढ़ा हो उसे सीनियर व्यावसायिक शालाओं में ।

पूरे वक्त व्यावसायिक शिक्षा देने वाले स्कूलों की तीन श्रेणियाँ होंगी :—

(अ) वे जो स्कूली जीवन के अंतिम एक या दो वर्षों में अपने पाठ्यक्रम को एक व्यावसायिक झुकाव–मात्र देंगे ।

(ब) कतिपय संबद्ध व्यवसायों में स्थान पाने के वास्ते जो अपने पाठ्यक्रम के अंतिम समय में बालक को व्यवसाय चुनने के योग्य बना–वेंगे । इन्हें प्रिएप्रिंटिसशिप स्कूल कहा जावेगा ।

(स) ऐसे स्कूल जो विद्यार्थियों को विशिष्ट व्यवसाय के लिए ही ट्रेनिंग देंगे । इन्हें व्यवसाय-स्कूल या एप्रेंटिसशिप–स्कूल कहा जावेगा ।

पहली कोटि के स्कूल अक्सर वाणिज्य के वास्ते अपने विद्यार्थियों को ट्रेनिंग देते हैं इसलिए अभी इनकी इतनी जरूरत नहीं । दूसरी कोटि के स्कूल वर्तमान हाई स्कूलों के तथा तीसरी कोटि के इंटरमीजियेट कालेजों के समानान्तर ही रहें । इन दोनों कोटि के विद्यार्थियों के प्रमाण-पत्र मैट्रिक और इंटर के बराबर मान्यता प्राप्त करें । जो व्यक्ति अभी व्यवसाय में लगे हुए हैं उनके अध्यापनार्थ अल्पकालीन शालाएं भी भराई जावें तथा उद्योगपतियों से उन्हें हफ्ते में ढाई घंटे का अवकाश यहां हाजिर होने के हेतु दिलाया जावे । जब तक इन शालाओं का उपयुक्त संगठन नहीं हो जाता तब तक इन्हें सरकारी व्यवस्था के अंतर्गत चलाया जावे, प्राइवेट अथवा सहायक–दान पर चलने वाले व्यवस्थापकों के हाथों नहीं ।

उद्योगों के लिए व्यावसायिक शिक्षा

पाठ्यक्रम और अध्यापकों की योग्यताएँ।

(६) कुछेक हाई स्कूल ऐसे हों कि जिनका समूचा पाठ्यक्रम कृषि की आवश्यकताओं से प्रभावित हो। इस देश में जूनियर व्यावसायिक स्कूल अर्थात् जूनियर टैक्निकल स्कूल की सख्त जरूरत है जो उच्चकोटि की मशीन के व्यवसायों में प्रवेश पाने की प्रारंभिक ट्रेनिंग देकर चतुर आर्टिजन और फोरमैन बनने के महत्वाकांक्षी विद्यार्थियों को प्रस्तुत करते हैं। 'सीनियर टैक्निकल स्कूल' उच्च जगहों के लिए प्रारंभिक ट्रेनिंग देंगे। पर इन दोनों स्कूलों का निर्माण ऐसे औद्योगिक केन्द्रों में भी किया जावे जिनकी आबादी ५० हजार से कम न हो। जूनियर टैक्निकल स्कूलों के पाठ्यक्रम में गणित, काठ और धातु के कारखानों, वर्कशापों, और टैक्निकल ड्राइंग में निहित वैज्ञानिक सिद्धांत सम्मिलित हों तथा अंग्रेजी भी एक विषय हो। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो। हां, अंग्रेजी के नाम अवश्य बताये जावें। अंग्रेजी का उद्देश्य घरेलू और कामकाजी ही होगा, कोई अंग्रेजी साहित्यकारों अथवा शैलीकारों के रसास्वादन का नहीं। जूनियर टैक्निकल कोर्स के तीसरे साल में शिक्षार्थी स्थानीय महत्व के किन्हीं उद्योगों, इंजीनियरिंग, बिजली फिटिंग, सूत कपास, लाइट इंजीनियरिंग इत्यादि उद्योगों में विशेषज्ञता की ओर बढ़ना शुरू कर देगा। सीनियर टैक्निकल स्कूल के कोर्स में गणित, फ़िज़िक्स, केमिस्ट्री, मिकेनिक्स, मशीन–ड्राइंग और वर्कशाप–अभ्यास दो वर्ष तक पढ़ाये जावेंगे जिससे कि बालक दूसरी कोटि के उद्योगों में भी जिम्मेदारी के पदों पर काम कर सकेंगे। जूनियर टैक्निकल स्कूलों का प्रिंसिपल यूनिवर्सिटी ट्रेनिंग तथा उद्योग–अनुभव प्राप्त इंजीनियर हो और सीनियर टैक्निकल स्कूलों का विज्ञान की यूनिवर्सिटी–ट्रेनिंग प्राप्त, चाहे वह इंजीनियर भले न होवे। अध्यापक की विशेषताएं उसके विषयानुसार होंगी। प्रिंसिपल एक ओर अपने स्कूल में भर्ती कराने वाले स्कूलों से तथा दूसरी ओर उद्योग

व्यवसायों से निरंतर संपर्क कायम रखेंगे जिससे उनके विद्यार्थियों को अच्छी नौकरियाँ बाद में मिल सकें।

वाणिज्य के लिये व्यावसायिक शिक्षा

उच्च–उत्तरदायित्व के लिए और जीविकोपार्जन-मात्र के लिए विभिन्न शिक्षा जरूरी होती है।

(७) उच्च उत्तरदायित्व वहन करने वाले व्यक्तियों का वाणिज्य विषयों के अध्ययन से विशेष लाभ नहीं होगा। उन्हें जो चीजें जरूरी हैं वे हैं कुछ व्यक्तिगत विशेषताएं जो अपनी रुचि के अनुकूल शिक्षा–शाखा में अध्ययन करने पर ही उपलब्ध की जा सकती हैं। परन्तु जिन नवयुवकों को अपनी जीविका स्वयंमेव खोजनी है उनके लिए यूनिवर्सिटियों में पढ़ाये जाने वाले वाणिज्य विषय ही लाभकारी होंगे। अपना जीवन प्रारम्भ करते ही उन्हें कुछ ऐसी आवश्यक जानकारी रखनी होती है जो तत्काल काम आवे। जो विद्यार्थी यूनिवर्सिटी का खर्च नहीं उठा सकते उनके लिए सीनियर व्यावसायिक स्कूल आवश्यक प्रारंभिक ट्रेनिंग दे सकेंगे। बात यह है कि बहुतेरे बाबू लोगों को अंग्रेजी की जानकारी अनिवार्य होती है इसलिए केवल जूनियर वाणिज्य स्कूल से काम नहीं चलेगा। अतः उनके लिए सीनियर वाणिज्य स्कूल स्थापित किये जावें जहां अंग्रेजी, गणित, हिसाब-किताब, भूगोल, शार्ट-हेंड और टाइपिंग की शिक्षा दी जावे। इसके अतिरिक्त वे वाणिज्य की सामान्य रूपरेखा और विधियों की भी शिक्षा देवें। सीनियर वाणिज्य शाला का कोर्स इंटरमीजिएट की नाईं हाई स्कूल के दो साल बाद तक का रहे। प्रिंसिपल को उच्च शिक्षा प्राप्त होना चाहिये तथा साथ में उसे व्यवसाय और उद्योग का भी अनुभव होवे।

वर्तमान व्यवस्था

पॉलीटेक्नीकों का सुझाव।

(८) इसके उपरांत रिपोर्ट ने उत्तरप्रदेश और पंजाब के

व्यावसायिक स्कूलों की समीक्षा करते हुए लिखा है कि ये अधिकांशत: 'मॉनो टैकनीक' हैं तथा कुछ सीमित विषयों के टैक्नीक भर को पढ़ाते हैं। यह सब व्यर्थ व्ययकारी होता है, क्योंकि इससे निरीक्षण, बाबू-संप्रदाय, चालक शक्ति इत्यादि का अपव्यय होता है। विभिन्न कोर्सों को लेकर बढ़ने वाले बालकों को सर्वोपयोगी विषयों के लिए एकही कक्षा में पढ़ा सकना सचमुच असंभव है। अत: केन्द्रीय स्थानों में सरकार यहाँ वहां फैले हुए विभिन्न व्यवसायों वाले स्कूलों को एक ही में समवेत करने की चेष्टा करें जिसे 'पॉलीटैक्नीक' कहा जावे। तीसरी कोटि की शालाओं में भर्ती करने के लिए उम्मीदवार को कम से कम मिडिल पास होना चाहिये। हां, यह ध्यान रखा जावे कि यह स्कूल उस कला में

दे कि जिसमें बाद में कोई मशीन आकर उसको बेकार ही कर देवे। इसलिए कलात्मक विशेषताओं की अपेक्षा रखने वाले व्यवसायों की ही इन स्कूलों में जरूरत होगी। जो हालत इस समय भारत में संगठित उद्योगों की है उसमें वर्कशाप-अभ्यास पाठ्यक्रम में बहुत अधिक प्रमाण में रहे। इंग्लैंड में तो उद्योगों में भी यह अभ्यास और अनुभव कुछ प्राप्त हो जाता है परन्तु भारत में यह व्यवस्था अभी नहीं चलेगी।

कला की शिक्षा:

(९) भारत में छोटे पैमाने पर चलने वाले व्यवसायों का बाहुल्य रहेगा ही परन्तु वहां की कलात्मक परंपरा उपेक्षा के कारण शेष हो रही है। इसलिए जो कला और कौशल के स्कूल हैं उन पर विशेष ध्यान दिया जावे तथा जनता से भी धन उधार लेकर नये स्कूल कायम किये जावें।

अल्पकालीन शालाएँ:

(१०) अल्पकालीन शालाओं में उद्योगों में लगे हुए व्यक्ति पढ़ने आवेंगे। अत: जब उन्हें व्यावहारिक शिक्षा व अनुभव उद्योगों के बीच ही उपलब्ध हो रहा है तो शालाओं को वर्कशाप अनुभवों में निहित

गणित तथा अन्य विज्ञान की शाखाओं का संबद्ध सैद्धांतिक ज्ञान कराना उचित होगा । इन शालाओं में बाहर से विशेषज्ञों को भी बुलाया जा सकता है जो कि वहां वास्तविक वातावरण की रचना कर अध्यापन की कमियों को दूर कर सकेंगे ।

नौकरी की सुविधा:

(११) रिपोर्ट ने रेलवे, बारीक मास्टरी इत्यादि में भर्ती करने की शर्तों पर सुझाव पेश किया कि जूनियर टैक्निकल स्कूलों के शिक्षार्थियों को मौका दिया जावे । वे अधिक कुशल होंगे तथा साथ ही उनके हेतु केन्द्रीय स्थानों में ऐसे स्कूलों की स्थापना को इम्दाद भी मिलेगी । बालक अन्य उद्योगों में घुसने के अवसर इस तरह पा सकेंगे । इलाहाबाद में छापाखाने के स्कूल का निर्माण करने का सुझाव पेश किया गया क्योंकि इस व्यवसाय का वह केन्द्र है ।

मास्टरों की ट्रेनिंग :

(१२) एतदर्थ व्यावसायिक शिक्षकों की ट्रेनिंग की भी व्यवस्था करना आवश्यक होगा । प्रस्तुत ट्रेनिंग कालेज के निकट संपर्क में ही व्यावसायिक ट्रेनिंग कालेज कायम किया जावे । साथ में एक जूनियर टैक्निकल स्कूल और कला कौशल स्कूल भी होवें जहां कि उपयुक्त स्टेजों वाली शिक्षा का पाठ्यक्रम पढ़ाया जावे और विद्यार्थी शिक्षक वहां शिक्षण का अभ्यास कर सकें ।

व्यवसायों का ज्ञान:

(१३) विद्यार्थियों के लिए कौन कौन से व्यवसाय खुले हैं एतदर्थ सरकारें अपनी ओर से पुस्तिकाएँ प्रकाशित करें । यू. पी. की बेकारी-समिति की यह सिफारिश मान्य है ।

इसके अतिरिक्त मिस्टर वुड ने सामान्य शिक्षा के संबंध में कुछ सुझाव पेश किये जिनकी रूप रेखा निम्नलिखित है:—

सामान्य शिक्षा विषयक सुझाव ।

शिशु वर्गों का अध्यापन ट्रेन्ड अध्यापिकाओं के ही जिम्मे रहना चाहिये । इस हेतु लड़कियों और स्त्री-शिक्षा का प्रबंध पहली आवश्यकता है । केवल साक्षरता पर अधिक जोर देना अथवा पुस्तकीय ज्ञान को महत्वपूर्ण मानना उचित नहीं । प्रायमरी शिक्षा में बालकों की रुचि तथा क्रियाओं के आधार पर पढ़ाई होनी चाहिये । मिडिल स्कूलों का सारा पाठ्य क्रम वातावरण से संबद्ध होवे तथा जो कुछ अंग्रेजी भी पढ़ाई जावे वह बड़े भाषा ज्ञान की दृष्टि से नहीं । अध्यापन का माध्यम यथासंभव हाई स्कूलों तक मातृ भाषा हो परन्तु अंग्रेजी भी दूसरी अनिवार्य भाषा होनी चाहिये । अंग्रेजी का अध्यापन बिलकुल घरेलू श्रेणी का हो तथा गद्य या काव्य के अध्यापन में सामान्य बालक का समय व्यर्थ न व्यय किया जावे । जिनकी इसमें रुचि हो उनके लिए अलग व्यवस्था रहना उचित है । पाठ्यक्रम में विभिन्न प्रकार की शारीरिक एवं हस्तकौशल की क्रियाओं को स्थान देकर, कला का अध्यापन अधिक सुव्यवस्थित प्रणाली से किया जावे और विशेषज्ञ अध्यापकों की नियुक्ति भी की जावे । केवल व्यायाम के घंटे मात्र से प्रयोजन सिद्ध नहीं होता । मैदानों का उपयोग विशुद्ध मनोरंजन के लिए ही अधिकतर स्वेच्छानुसार बालक स्वयं करें । मास्टरों की ट्रेनिंग कुछ तो प्रारंभिक रूप में नार्मल स्कूलों या ट्रेनिंग कालेज में हो और कुछ व्यवसायों के अनुभव के उपरांत । इस प्रकार कालांतर में प्रत्येक प्रांत में एक रिफ्रेशर ट्रेनिंग कालेज कायम किया जा सकेगा । शिक्षा के शासन में सापेक्षतः अधिक साधुत्व की जरूरत है जो सरकार अवश्य देखे ।

यूनिवर्सिटी प्रश्न

(१) भारत की टैक्निकल शिक्षा के विषय में वुड-एबट रिपोर्ट का क्या महत्व है ? (१९५०)

(२) केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड की सन् १९४४ की रिपोर्ट की मुख्य सिफारिशें संक्षेप में लिखो। राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकताओं को क्या ये पूरी कर सकती हैं ? कारण दो। (१९४९)

(३) इंग्लैंड के सन् १९४४ के शिक्षा एक्ट द्वारा कल्पित शिक्षा-प्रणाली की स्थूल रूपरेखा की तुलना सार्जेंट रिपोर्ट में प्रस्तुत रूपरेखा से करो (१९४८)

(४) "केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड की युद्धोत्तर कालीन शिक्षा विकास योजना भारत की राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का आधार प्रस्तुत करती है" समालोचना करो और समझाओ (१९४७)

(५) बेकारी के प्रश्न पर शिक्षा के दृष्टिकोण से बहस करो। और एबट-वुड की सिफारिशों पर विशेष ध्यान दो। (१९४०)

बहस करो:—

(६) "भारत जैसे देश में व्यावसायिक शिक्षा की योजना प्रस्तुत करने की समस्या कठिन और उलझी हुई है क्योंकि जहां एक ओर औद्योगिक प्रणाली ही विकासमान है वहां दूसरी ओर व्यावसायिक शिक्षा के साधन अभी तक स्वल्प रहे हैं" (एबट—भारत में व्यावसायिक शिक्षा पर रिपोर्ट) (१९३८)

(७) "अभी तक भारतीय शिक्षा ने केवल साहित्यिक और सैद्धांतिक-मात्र रहकर व्यावसायिक ट्रेनिंग देने में असफलता पाई है" इस अभियोग की समालोचना कर, इस परिस्थिति को सुधारने के लिए प्रणाली विषयक सुधार सुझाओ (१९३७)

अध्याय १५

नई धाराएँ—महात्मा गाँधी-युग

प्रांतीय स्वशासन १९३७ :

महात्मा गांधी की अहिंसा की विजय : शिक्षा का महत्व : वर्धा–शिक्षा–योजना ।

सन् १९३७ के बाद के युग में दुनिया अभूतपूर्व, अश्रुतपूर्व रफ़्तार से चली । जो घटनाएं युगों में और सदियों में हुआ करती थीं वे दिनों में और घंटों में हुईं । सारे संसार का नक्शा बदल गया, साम्राज्यों का उदय और अस्त हो गया, भावनाओं और स्वामिभक्तियों (Loyalties) में क्रांति मच गई । इतनी भाग-दौड़, कशमकश और तेजी का जीवन हो गया कि मानव को सोचने का अवकाश न रहा कि वह कहां जा रहा है और कहाँ जा पहुँचेगा । भारतवर्ष चलती दुनिया की इन गतिविधियों से अछूता न रहा और अंततोगत्वा हजारों वर्षों की दासता के बाद महात्मा गांधी जैसे युग–पुरुष के नेतृत्व में अंग्रेजी-साम्राज्य शांति के साधनों की सहायता से खत्म हुआ और भारत स्वतंत्र हुआ । इस गतिशील दुनिया का प्रतिबिंब शिक्षा–तत्वों में भी आ पड़ा । भारत के शिक्षा-इतिहास में सन् १९३७ में छै प्रांतों में जो कांग्रेस मंत्रिमंडल प्रांतीय स्वशासन (Provincial Autonomy) के अंतर्गत कायम हुए उन्होंने शिक्षा को सबसे अधिक क्रियात्मक शक्ति और गति दी । सार्वजनिक शिक्षा के क्षेत्र में महात्मा गांधी का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता था क्योंकि महात्माजी समुदाय के अगुआ थे, समुदाय की भावनाओं, महत्वाकांक्षाओं, आशाओं और निराशाओं का प्रतिनिधित्व उनमें होता था । महात्माजी स्वयं ही इस तथ्य से पूर्णतः परिचित थे । वे उन थोड़े से मनीषियों में से थे जो भौतिक विजयकी अपेक्षा मानव-मस्तिष्क और हृदय की विजय को मूर्तिमान करने में सक्रियता से संलग्न थे ।

अपने शत्रुओं को जीतने का साधन युद्ध उनकी प्रणाली में नहीं आता था इसलिए उन्होंने सहज ही शिक्षा की ओर ध्यान दिया। नई धाराओं में महात्मा गांधी ने भारत जैसे विशाल और परतंत्र देश के लिए जिस शिक्षा–प्रणाली का विधान किया वह इतिहास में अपना बड़ा महत्व रखती ही है। यह बात अलग है कि समय की तीव्र गति के बीच उसकी सामयिकता के सम्बन्ध में लोक-शंकाएँ जागृत होने लग जावें। भले ही शिक्षात्मक कसौटी पर वह सौ टंच खरी न उतरे पर चालीस करोड़ जनता के ऐसे अभूतपूर्व नेता की प्रेरणा–प्राप्त शिक्षा–प्रणाली गंभीर अध्ययन की बात अवश्य बनी रहेगी। चतुर्मुखी खूँख्वार दुनिया के बीच अहिंसा की एक आवाज को बल देने वाले मसीहा की प्रणाली की अहमियत का मूल्यांकन काम की चीज है। हमारे नवीन जमाने में महात्मा गांधी की इस शिक्षा–प्रणाली का नाम 'राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा' है। साधारण बोलचाल में उसे 'वर्धा–शिक्षा–योजना' अथवा 'ज़ाकिर हुसैन सिलेबस' भी कहा जाता है। इस प्रणाली का जन्म यों तो वर्षों पहले महात्माजी के मस्तिष्क में हो चुका था परन्तु उसका मूर्तिमान रूप कांग्रेस के हाथ सत्ता आनेपर प्रतिफलित हुआ।

अक्टूबर '३७ के चार प्रस्ताव: निशुल्क शिक्षा, केन्द्रीय हस्तकौशल, मातृभाषा और आर्थिक आत्मनिर्भरता।

२२ और २३ अक्टूबर सन् १९३७ को वर्धा में राष्ट्रीय शिक्षा की एक कांफ्रेंस भरी जिसके सभापति महात्मा गांधी स्वयं ही थे। वहाँ पर चार प्रस्ताव पास हुए जो इस योजना की भूमिका प्रस्तुत करते हैं। पहले प्रस्ताव के अनुसार राष्ट्रीय पैमाने पर सात वर्ष तक निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा देने को सुविधाएं प्राप्त करने को कहा गया। इस शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा ही हो सकता था। इस शिक्षा को प्रदान करने का साधन शारीरिक और उत्पादक श्रम होना चाहिये जो कि किसी केन्द्रीय हस्तकौशल पर आधारित हो। हस्त कौशल का चुनाव बालक के

वातावरणों को ध्यान में रखकर किया जावे । साथ ही इस सभा ने यह भी आशा जाहिर की कि शनैः शनैः आर्थिक दृष्टि से इस शिक्षा में शिक्षकों का वेतन तो कम से कम पूरा हो सकना चाहिये । इस कांफ्रेंस ने पूरी को पूरी योजना को स्वरूप देने के लिए दिल्ली की जामिया मिलिया के प्रधान डा० ज़ाकिर हुसैन की अध्यक्षता में एक समिति † बनाई जिसने गांधीजी की शिक्षात्मक प्रेरणा को पूर्ण व्यवस्थित और व्यावहारिक स्वरूप दिया ।

महात्मा गांधी द्वारा लिखित योजना की भूमिका : ग्राम्य, राष्ट्रीय और पूर्ण शिक्षा की उनकी व्याख्या

संपूर्ण रिपोर्ट पांच खंडों में बांटी गई है और इसके बाद कक्षाओं में पढ़ाये जाने वाले सिलेबस की विस्तृत व्याख्या एवं रूप रेखा है । पहले खंड में शिक्षा के मौलिक सिद्धांतों का विवेचन है दूसरे में उन उद्देश्यों का कि जिनकी पूर्ति इनके जरिये संभव हो सकेगी , तीसरे में मास्टरों की ट्रेनिंग का कोर्स तथा तरीके, चौथे में निरीक्षण तथा परीक्षा और पांचवें में शासकीय प्रबन्ध । इसके उपरांत विभिन्न कक्षाओं के सिलेबस का विस्तृत और प्रयोगात्मक दोनों ही किस्म का विवरण दिया गया है । योजना समिति द्वारा २ दिसम्बर सन् १९३७ को महात्मा गांधी को समर्पित की गई और पुस्तकाकार प्रकाशित होने के बाद २८ मई सन् १९३८ को महात्मा गांधीने उसके लिए एक संक्षिप्त भूमिका लिखी । यह भूमिका योजना को पुस्तकके दूसरे संस्करणके लिए लिखी गई थी । महात्मा गांधी ने 'बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा' को आकर्षक तो कहा पर अपूर्ण माना । वे कहते थे कि यह ग्राम्य राष्ट्रीय शिक्षा कही जाना चाहिये । ग्राम्य इसलिए कि उसके

---

† समिति के सदस्यः—(१) ख्वाजा गुलाम सैयद्दीन, (२) किशोरलाल मशरूवाला, (३) के. टी. शाह, (४) जे. सी. कुमारप्पा, (५) आचार्य विनोबा भावे, (६) श्रीकृष्णदास जाजू, (७) काका कालेलकर, (८) श्रीमती आशादेवी, मंत्री ई. डबल्य आर्यनायकम ।

अंतर्गत तथाकथित उच्च अथवा अंग्रेजी शिक्षा नहीं आवेगी। राष्ट्रीय से अभिप्राय होगा राष्ट्र की दो प्रेरणाओं का जिन्हें 'सत्य और अहिंसा' कहकर राष्ट्र ने स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त महात्माजी ने 'ग्राम्य हस्त कौशल' के केन्द्रीय माध्यम की भी महत्ता बताई कि जिसके जरिये अपने ग्रामों में ही बालकों की आंतरिक प्रतिभाओं का बंधनों और हस्त-क्षेपों के वातावरण में भी प्रस्फुटन संभव हो सके और इस दृष्टिकोण से भारत के ग्रामीण बालकों के शिक्षण में एक क्रांति उत्पन्न हो सकेगी। इस योजना को विदेशों से आई हुई कोई चीज न समझी जाना चाहिये।

पाठ्यक्रम के तीन केन्द्र : शरीर, समाज और कौशल।

इधर सिलेबस निर्माताओं ने भी संशोधन, परिवर्धन और परि-वर्तन का द्वार खुला रखा। जब उन्होंने शिक्षण–परंपरा की नवीन भूमिका सृजन करने का सुझाव पेश किया तो एक विस्तृत सुयोग्यात्मक कार्य प्रणाली की अपेक्षा अनिवार्य रखी; क्योंकि जब तक शिक्षकों के मस्तिष्क में यह प्रयोगात्मक विचार-धारा न रहेगी योजना की सजीवता एवं सफलता संपन्न न हो सकेगी। मौलिक कौशल को चुन लेने के उपरांत भाषा, गणित, समाज-शास्त्र, सामान्य विज्ञान और ड्राइंग के विषयों का अध्यापन उसके साथ समवेत कर पढ़ाया जा सकेगा। बालक को विवेक पूर्वक तथा सक्रिय रूप में अपने वातावरण से मेल रख सकने के उद्देश्य से पाठ्य-क्रम के तीन प्रकार के केन्द्र बना लिये गये है:— शारीरिक वातावरण, सामाजिक वातावरण और कौशल कार्य। सारी योजना का केन्द्र बालक और उसकी क्रियाशीलता है; इसलिए हमारी शालाओं में क्रियात्मक पाठ्यक्रम ही रहेगा, जहाँ सक्रियता, प्रयोगात्मिकता, अनुसंधान जूठी सूचनाओं के निष्क्रिय भक्षण की जगह लेंगे। सारा अध्यापन जीवन की वास्तविक परिस्थितियों के प्रसंग में ही होगा जिनसे बालक अपने वातावरण को समझकर अधिक चतुराई का व्यवहार करें और जीवन की समस्याओं को हल करें। स्कूल विशाल जीवन की प्रयोग शाला और

अनुभव-केन्द्र होगा। परन्तु सारा पाठ्य-क्रम शिक्षक की चतुराई और सजगता के अभाव में निर्जीव हो जायगा। इसलिए उसके अध्यापन और अनुशासन की सारी प्रेरणा भी क्रियात्मिकता की अ.धार भूमि पर स्थित हो। उदाहरणार्थं मातृ–भाषा के अध्य.पन में उसकी (भाषा तथा साहित्य की) उपयोगित. और रचनात्मिकता दोनों समान रूप से महत्व पावेंगे। मातृभाषा का मौखिक कार्य और पाठ्य सामग्री बालकों के विकासमान किन्तु वास्तविक जीवन के आधार पर रचे जावेंगे। इस तरह आसपास की प्रकृति के वैचित्र्य, तथा कौशल की विभिन्न क्रियाओं के ज्ञान में, साधारण कामकाजी और घरू पत्रों के लेखन में रोज़ के काम के लेखे, शालापत्रिका और सुन्दर साहित्य की रचना और रसो–पभोग में बालक दक्ष हो सकेंगे। वे मातृभाषा को केवल अध्ययन-मात्र के लिये ही न पढ़कर जोवन की वास्तविक परिस्थितियों में उसकी उपयोगिता की दृष्टि से पढ़ेंगे धर समाज-शास्त्र उनके सामाजिक और बौद्धिक दृष्टिकोणों को विकसित कर पाठशाला के अंतर्गत संचालित होने वाली स्वायत्त-शासन संस्था और सहकारिता के विषयों को सीखेगा जिसमें अधिकारों, कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों की पारस्परिकता समझ में आवे। शिक्षा का कोर्स केवल सैद्धांतिक-मात्र न होकर सापेक्षतः कहीं व्यावहारिक अधिक होगा। यद्यपि रिपोर्ट ने संगीत का सिलेबस नहीं बनाया तो भी सामुहिक गीत, भजन ऋतु-संगीत, ग्राम्य-गीत इत्यादि को सामुहिक रूप में समयानुकूल गाने की सिफारिश की है। गीतों का चयन ऐसा हो कि जो सात से चोदह वर्ष वाले बालक बालिकाओं की रुचि, अवस्था और मानसिक विकास से मेल खाता रहे।

होड़ा–होड़ी वाली अमानुषी व्यवस्था के स्थान पर रचनात्मक मानुषी अहिंसक समाज की स्थापना का आदर्श।

मौलिक सिद्धांतों का निरूपण करने में समिति ने राष्ट्रीय जीवन में वर्तमान शिक्षा की अनुपयुक्तता पर प्रकाश डाला कि जिसके फलस्वरूप

चलित गति वाले संसार की परिस्थितियों में बालक न तो स्वयं उपयोगी हो पाता है और न उचित कार्य में ही कोई रचनात्मक सहयोग दे पाता है। उन्हें होड़ा-होड़ी वाली अमानुषी, शोषक और हिंसात्मक सत्ता को उलटकर अन्य प्रकार की सामाजिक-व्यवस्था के अनुरूप होना चाहिये जो रचनात्मक हो क्रियात्मक हो और मानव के अनुकूल हो। एतदर्थ उन्हें हिंसा की अपेक्षा अहिंसा की महत्ता सिखानी होगी। महात्मा गांधी का कहना था कि शिक्षा यदि सही सिद्धांतों पर आधारित है तो उसका दान किसी कौशल अथवा उत्पादक क्रिया के माध्यम से होना चाहिये। इस कौशल को यदि सुचारु और संपूर्ण रूप से पढ़ाया जावेगा तो मास्टरों की आय का खर्च भी निकल आवेगा और शनैः शनैः सरकार निःशुल्क अनिवार्य मौलिक शिक्षा की योजना को लागू कर सकेगी। देश की वर्तमान राज नैतिक और आर्थिक परिस्थितियों के बीच किसी भी शिक्षा-योजना का खर्च कल्पनातीत होगा, अतः ऐसी व्यवस्था जरूरी है।

कौशल केवल अध्यापन का अतिरिक्त विषय मात्र न होकर समस्त अध्यापनका माध्यम होगा।

मनोविज्ञान की दृष्टि से बालक को विशुद्ध सैद्धांतिक शिक्षण की निरंकुशता से छुट्टी मिलेगी जिससे उसका शरीर और मस्तिष्क अधिक सहयोग से दीक्षित, शिक्षित होवेंगे। यह होगी संपूर्ण व्यक्तित्व की शिक्षा। इसीसे मानसिक और शारीरिक श्रमिकों के बीच का कृत्रिम भेद-भाव दूर होगा। श्रम की सम्माननीयता, मानव की एकता, सदाचार संपन्न होंगे और बालक अपने अवकाश का सदुपयोग कर सकेंगे। एक बात अवश्य ध्यान में रखी जाना है—कौशल का समावेश पाठ्य क्रम में केवल एक अतिरिक्त विषय की हैसियत से नहीं किया जा सकता है और इसीलिए कौशल चातुर्य पर ही जोर नहीं देना है। किन्तु कला या कौशल अध्यापन के सारे विषयों की अध्यापन-पद्धति को ही प्रेरणा देगी। हर कौशल का अध्यापन केवल यांत्रिक न होकर पूर्णतः वैज्ञानिक होगा। बालक

हर क्रिया के क्यों और कैसे प्रश्नों का उत्तर स्वतंत्र निरीक्षण और अनुभवों के जरिये प्राप्त करेगा ।

आत्म-विश्वासी व्यक्ति ।

यह शिक्षा योजना सात वर्ष की अवधि की है जो कि नागरिक के कर्तव्य और अधिकारों को विवेकपूर्वक निभाने के हेतु न्यूनतम आवश्यकता है । इसके सिवा वर्तमान युग में कोई भी व्यक्ति पराश्रित या ऐश्वर्य भोगी नहीं होना चाहिये । अर्थात् एक संगठित सभ्य समाज के बुद्धिमान् सदस्य की हैसियत से उसे कुछ ऐसा दान करना चाहिये जो कि सामाजिक दृष्टि से उपयोगी हो । आत्म-निर्भरता, परमुखापेक्षा का स्थान लेगी । योजना बालकों में आत्म विश्वास, आत्म–सुधार और समाज–संस्थान में सहकारिता की भावनाएं उत्पन्न करेगी ।

आर्थिक–पहलू की समीक्षा ।

योजना का आर्थिक दृष्टि से आत्म–निर्भरता का सिद्धांत विशेष रूप से विचारणीय है । वह सिद्धान्त शिक्षात्मक नीति की कसौटी पर पूर्णतः खरा उतरेगा क्योंकि राष्ट्र का पुनरुद्धार अब विलम्ब बर्दाश्त नहीं कर सकता । यह तो जरूर ही है कि शिक्षा के कतिपय व्ययों का धन इससे निकल आवेगा । परन्तु यदि सरकार अपने भावी नागरिकों द्वारा किये गये कौशल से उत्पन्न पदार्थों को खरीदने लगेगी–और उसे खरीदने की गैरंटी देनी चाहिये—तो प्रत्येक पाठशाला आत्म–निर्भर हो जावेगी । वह किस मूल्य पर उन्हें खरीदे इसका भी हिसाब लगा लिया गया है । साथ ही अध्यापन और बालकों की प्रगति की सही-सही जांच करने की दृष्टि से भी यह चीज महत्व की होगी । हां, शिक्षकों को इतनी खबरदारी रखना चाहिये कि इस आर्थिक भाग पर कहीं इतना ध्यान न दिया जावे कि जिससे सांस्कृतिक और शिक्षात्मक अंग उपेक्षा में पड़े रह जावें ।

पूर्ण पाठ्यक्रम ।

दूसरे खंड में योजना ने उद्देश्यों का विधान किया है । प्रत्येक

प्रांत के शिक्षा बोर्ड में एक विशेषज्ञ रहेगा जो कि पाठ्यक्रमकी रचना तथा सात वर्षों के विषयों के समवायित कार्य क्रम की बारिकियां निश्चित करेगा। कताई, बुनाई, बढ़ईगिरी, खेती, फल और सब्जी की खेती, चर्मकारी इत्यादि मौलिक कौशल के रूप में चुनी जा सकती हैं। भाषा के क्षेत्र में बालक के वातावरण में होने वाली घटनाओं, व्यक्तियों और चीजों पर विश्वास और सहज ढंग से बालक को सिलसिले से बातचीत कर सकना चाहिये। चुपचाप पढ़ना, जोर से सार्थकता से पढ़ना, शब्द कोषों, सूचियों का उपयोग और सही बातें लिखना आना चाहिये। गणित के क्षेत्र में व्यापारिक रीतियों, खाता बही तथा दैनिक जीवन, घर, समाज और कौशल के बीच आने वाले गणित संबन्धी प्रश्नों के हल प्रस्तुत कर सकना अपेक्षित होगा। भारतीय इतिहास की एक सरल रेखा लोकोपयोगी सामाजिक सेवाएँ, विश्व-भूगोल की रूपा-रेखा, पशु, मानव और वनस्पति जीवन का आवश्यक ज्ञान, मौसमी परिवर्तन, नक्शों का अध्ययन, आवागमन के साधन, इत्यादि विषय भी पढ़ाये जावेंगे। भाषा के क्षेत्र में 'हिन्दुस्तानी' (देवनागरी और उर्दू लिपि में लिखित) को प्रत्येक बालक को सीखना होगा क्योंकि वह हिन्दू-मुस्लिम सभ्यताओं के संपर्क का सर्वश्रेष्ठ प्रतीक है।

कढ़े पंडित नहीं पैदा करना बल्कि चतुर और समझदार कामगर : मास्टरों की ट्रेनिंग।

तीसरे खंड में मास्टरों की ट्रेनिंग का विधान है। उम्मीदवार की कम से कम शिक्षात्मक योग्यता मैट्रिक हो अथवा हिन्दी मिडिल पास होने के बाद कम से कम दो वर्ष का अध्यापन-अनुभव हो। शिक्षक सजग दिलचस्पियों वाला व्यक्ति हो जो अपने वातावरण को चतुराई से समझ सके तथा नवीन शिक्षा-योजना को नवीन सामाजिक प्रेरणा को समझे और कार्यान्वित कर सके। वह पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयोंको पृथक पृथक पढ़ाने के बाद समवेत रूप से पढ़ा सके तथा उन्हें जीवन, अध्ययन

और कौशल से संबद्ध कर सके। इसके अतिरिक्त अध्यापन–विज्ञान के सिद्धांत और व्यवहार भी तीन वर्ष की इस ट्रेनिंग में सिखाये जावेंगे। उद्देश्य है कि जब हमें कढ़े हुए पंडित नहीं उत्पन्न करना, बल्कि चतुर, समझदार, शिक्षित कामगर जिनका मस्तिष्क समाज–भारतीय–समाज की भावी रूपरेखा समझ कर अग्रसर होने में समर्थ बने। कुछ शिक्षकों के वास्ते एक वर्ष का अल्पकालीन ट्रेनिंग-सत्र भराया जावे जहां कौशल-विषयक ट्रेनिंग अनिवार्य होगी, जहाँ उपयुक्त निरीक्षण के भीतर कम से कम पच्चीस पाठ विद्यार्थी-शिक्षक को पढ़ाने होंगे। साथ ही भारत की राष्ट्रीय जागृति का एक स्वल्प इतिहास एवं शती की अन्य सांसारिक विचार-धाराएं भी पढ़ाई जावेंगी।

परीक्षा की विधियां।

चौथे खंड में निरीक्षकों की उपयुक्तता, योग्यता पर प्रकाश डाला गया है। इसलिए उनको आवश्यक ट्रेनिंग की सुविधाएं जुटाई जावें। निरीक्षक की ट्रेनिंग में बुनियादी-शिक्षक की पूरी ट्रेनिंग, दो वर्ष का सफल अध्यापन का अनुभव, और एक वर्ष की निरीक्षण तथा शासन की विशिष्ट ट्रेनिंग अनिवार्य होगी। केवल निरीक्षण–मात्र से योजना का काम नहीं चलेगा। व्यक्तिगत सहयोग और सहायता प्रस्तुत करके निरीक्षक को नेता और पथ–प्रदर्शक का काम करना पड़ेगा इसलिये शासकीय लाल फीते का शिकंजा जितना हलका बने रखा जावे। रही परीक्षाओं की बात तो अभी तक की चलती आने वाली परीक्षा–प्रणाली न तो पूरी ही है न काम ही की। वह बिलकुल अपर्याप्त, अविश्वस्त, झक्की और मनमानी है। इसलिए चुनिंदा विद्यार्थियों की संपन्नता की एक शासकीय जांच मात्र से परीक्षा का काम हो सकता है। यह जांच काफी लम्बी रहे ताकि खूब तटस्थ हो सके। इसी तरह वार्षिक जांच भी कर ली जाया करें। यदि किसी कक्षा में ज्यादा लड़के फेल हो रहे हैं तो शायद शिक्षक के काम की देखरेख जरूरी है। यदि किसी स्कूल का यही हाल है तो उसके शासन की जांच करना होगा और यदि स्कूल समूहों

में भी यह कमी दिख रही है तो देखना होगा कि पाठ्य क्रम सदोष है और परीक्षा का स्तर ऊंचा है। किसी भी विद्यार्थी से कक्षा का काम पुनः दुहरवाना बेकार सी चीज है। समिति ने नमूनेदार संपन्नता टेस्ट (Sample Achievement Tests) की एक प्रणाली के जरिये स्कूलों की योग्यता जांचने का विधान किया है कि जिससे बालकों के और मास्टरों के विशिष्ट योगदान का मूल्यांकन हो सके। स्कूलों द्वारा किये गये कार्य की एक जिलेवार वार्षिक प्रदर्शनी भी भराई जावे जिससे उनकी संपन्नता का एक स्तर कायम रखने में मदद मिलती रहे।

पांचवें खंड में शासकीय विधान हैं। भर्ती की उमर सात वर्ष होना चाहिये। यही उमर अनिवार्यता लगाने के लिए उपयुक्त है। लड़के लड़कियों के लिये यह समान हीं हो। यदि अभिभावक चाहें तो लड़कियों को बारह वर्ष की उमर से अलग कर सकते हैं। सात वर्ष के पूर्व की उमर की शिक्षा का महत्व समिति ने खूब समझा परन्तु कहा गया कि वर्तमान आर्थिक परिस्थितियों में कुछ किया नहीं जा सकता। प्रस्तुत योजना उस दिशा में भी सफलता लावेगी इसलिए प्रौढ़ शिक्षा-योजना सरकार द्वारा निकट भविष्य में प्रारम्भ की जावे। स्कूल के समय का विभाजन इस प्रकार हो:—

कौशल	३ घंटे २० मिनट
संगीत, ड्राइंग, गणित	४० ,,
मातृ-भाषा	४० ,,
समाज-शास्त्र, सामान्य विज्ञान	३० ,,
शरीर ट्रेनिंग	१० ,,
छुट्टी	१० ,,
	५ घंटे तीस मिनट

शासन-यंत्र, समय-चक्र-वेतन और क्लास की संख्या :

साल भर में स्कूल २८८ दिन भरेगा जिसका अर्थ २४ दिन मासिक औसत होगा। हर स्कूल में एक बगीचे के लायक और खेल-कूद के लायक खेत या जमीन हो। बालकों के नाश्ते के लिए भी सरकार की ओर से कुछ प्रबन्ध किया जावे। शिक्षक का वेतन २०) से कम न होवे; भले वह २५) तक ले जाया जावे। हर क्लास में औसतन तीस विद्यार्थी हों। स्थानीय व्यक्तियों, स्त्रियों को सर्विस करने के हेतु प्रोत्साहन दिया जावे। मनोवैज्ञानिक जिन्हें 'सामाजिक कोटि' के लोग कहते हैं, उन्हें खास तौर से भर्ती किया जावे। ट्रेनिंग संस्थाएं निवासदायिनी जहां तक हों तो श्रेष्ठ जिससे छुआछूत जैसे भेद भाव दूर हो जावें। रिफ्रेशर कोर्स, प्रदर्शन शालाओं इत्यादि की भी व्यवस्था रहे। इसी तरह एक केन्द्रीय संस्था कायम की जावे जो रिसर्च, मोनोग्राफ और पत्रिकाएँ प्रकाशित कर योजना में आवश्यक संशोधन करे।

आपत्तियां और समालोचना :

इस योजना ने देश में बड़ी दिलचस्पी जागृत की और आपत्तियों तथा समालोचनाओं का अंबार लग गया। सबसे पहले 'कौशल' के ऊपर समय-विभाग-चक्र में जो समय खर्च करने का सुझाव था वह बहुत अधिक बताया गया। वास्तव में यह समय केवल कौशल में चतुराई अथवा निपुणता हासिल करने के लिए न होकर मौखिक कार्य, ड्राइंग व्यक्तीकरण, 'क्यों और कैसे,' वाले संबद्ध प्रश्नों और विषयों के लिए समवेत रूप से है। दूसरी आपत्ति थी कि इस योजना में माध्यमिक अथवा उच्च शिक्षा की जरूरतों का न तो ख्याल रखा गया है और न उनका उल्लेख ही किया गया है। बात यह थी कि यह योजना समस्त जन-समुदाय के लिए गढ़ी गई है कि जिसके बाद उपयुक्त विद्यार्थियों के उच्च शिक्षा तो मौजूद थी ही। ७ वर्ष से लेकर १४ वर्ष तक की उमर पर भी कुछ आपत्ति उठाई गई और कहा गया कि सात वर्ष की आयु आरम्भ

हो जाती है। जो हो पर ७–१४ के बीच विद्यार्थियों का पाठशाला में रहना समिति को एकदम अनिवार्य जान पड़ा। खेल को भले ही एक पाठ्यक्रमेतर विषय के रूप में योजना के अंदर स्थान न दिया गया हो तो भी इस प्रणाली में तो खेल-कूद आदि से अंत तक अंतरंग बने हुए हैं। मौजूदा हालत में शिक्षक के वेतन और बालकों के उत्पादन के बीच कोई सम्बन्ध नहीं रखा गया और यही बात मानी गई है कि सरकार उसका वेतन बाकायदा देती जावेगी और कालांतर में ही उस उत्पादन की आय का सदुपयोग हो सकेगा।

आदिम-युग अथवा वर्तमान युग की प्रगति शीलता : यंत्र की अनिवार्यता ?

सबसे महत्व की जो शंका उठाई गई वह यह थी कि योजना का सारा जोर उद्योगवाद का विरोधी होकर समाज की आदिम अवस्था को ले आने पर है जो कि वर्तमान युग की शक्तियों और जरूरतों से एकदम मेल नहीं खा सकती। बुनियादी शिक्षा और उद्योगवाद अथवा घरेलू धंधों के बीच कार्य–कारण संबंध जोड़ने की कमेटी की मंशा बिलकुल भी न थी। उन्होंने शिक्षा को एक कौशल अथवा सार्थक क्रिया के माध्यम से शिक्षा देने का सुझाव रखा था। आजकल की शिक्षा बिलकुल ग्रंथ-केन्द्रित है और सैद्धांतिक-मात्र है। फलतः विद्यार्थी को व्यावहारिक और औद्योगिक कार्यों में दिलचस्पी खत्म हो जाती है इसलिए उस परिस्थिति से बचकर हाथ और आंखों की ट्रेनिंग समवेत रूप से कराई जा सके इस उद्देश्य पर समिति ने जोर दिया।

प्रांतों में भाषावार ट्रेनिंग-स्कूलों की स्थापना ग्राम्य क्षेत्रों में होवे :

हां, शासकीय व्यवस्था अवश्य ही नये रूप में संगठित करना होगी जिसे प्रांतीय शिक्षा विभाग स्वयं स्वतंत्रतापूर्वक सोचे और कार्यान्वित करे। एतदर्थ सबसे पहले प्रत्येक भाषावार प्रांत में एक एक ट्रेनिंग स्कूल की स्थापना की जावे जहाँ कौशल के जरिये अध्ययन करने का टैक्नीक सिखाया जावेगा। जो स्कूल हैं उनके अतिरिक्त और भी नये

स्कूल खोले जावें और प्रारंभिक वर्षों में दोनों तीन-साली और एक-साली कोर्सों के जरिये मास्टरों को ट्रेनिंग दी जावे। पर अनिवार्य चीज यह है कि ट्रेनिंग स्कूल ग्राम्य क्षेत्रों में ही रहें। जहां पर अभी तक ट्रेनिंग स्कूल चल रहे हैं वहां ही नये न खोल दिये जावें। पूरा काम तो तभी हो सकता है जब कि प्रत्येक प्रांत अपनी शिक्षात्मक आवश्यकताओं की पूरी सर्वे कर लेवें और एक ऐसी बीस वर्षीय योजना बना लें कि जिससे सारे देश में साक्षरता फैल जावे तथा अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा भी कायम हो जावे। इसके साथ साथ प्रौढ़ों की शिक्षा की भी योजना यदि चला दी जावे तो काम पूरा हो जावेगा।

मध्यप्रदेश की विद्या–मंदिर योजना :

योजना के प्रस्तुत होने के बाद लगभग हर प्रांत ने अपनी स्थानीय परिस्थितियों और आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर वर्धा–शिक्षा–योजना के आधार पर योजनाएं बनाई। बिहार प्रांत ने हिन्दुस्तानी भाषा की अनेक रीडरें तैयार कीं जिन पर बड़ा वाद-विवाद उठ खड़ा हुआ। आसाम, उड़ीसा, और उत्तर प्रदेश में भी इसी आधार पर कुछ काम हुआ। किन्तु इन सबमें अधिक महत्व की योजना रही मध्यप्रदेश के शिक्षा-मंत्री पं० रविशंकर शुक्ल द्वारा प्रस्तुत विद्या-मंदिर–योजना। एतदर्थ मास्टरों की ट्रेनिंग देने के वास्ते वर्धा में श्रीमती आशा देवी आर्यनायकम् के निरीक्षण में विद्या-मंदिर ट्रेनिंग इस्टीट्यूट भी कायम किया गया। इस इंस्टीट्यूट में न केवल प्रान्त के वरन् अन्य और भी प्रान्तों के लोगों को ट्रेनिंग दी गई। बाद में अनेक राजनैतिक कारणों से तथा द्वितीय विश्व-युद्ध के प्रारम्भ हो जाने से शिक्षा की संपूर्ण गतिविधि पर ही आघात पहुँचा।

अध्याय १९

सार्जेंट-योजना (१९ जनवरी १९४४)

युद्धोत्तर काल के शिक्षा-प्रसार का सरकारी नील-पत्र (ब्लू प्रिंट) :

नई धारा की दूसरी रेखा है युद्ध कालीन सार्जेंट योजना जिसे भारत की केन्द्रीय सरकार ने युद्ध काल में प्रस्तुत किया, ताकि युद्धोत्तर काल में जिस नवीन संसार-व्यवस्था के स्वप्न देखे जा रहे थे उसके तकाजे शिक्षा के जरिये पूरे किये जा सकें। भारत के तत्कालीन शिक्षा-कमिश्नर डॉ० जॉन सार्जेंट के अथक प्रयत्नों का यह परिणाम है। यदि राष्ट्रीय शिक्षा या वर्धा-शिक्षा योजना भारतीय शिक्षा का गैर सरकारी संस्करण या दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है तो सार्जेंट-योजना सरकारी दृष्टि कोण को। वास्तव में दोनों में कोई मौलिक वैमनस्य नहीं, दोनों थोड़े बहुत हेर-फेर से भारत की अपने-अपने क्षेत्र का समूची शिक्षात्मक आवश्यकताओं को चित्रित करती हैं। किस सीमा तक वे आवश्यकताएं इनसे पूरी की जा सकती हैं, या पूरी की जा सकी हैं यह तो प्रश्न ही अलग है। बात यह हुई कि जिन परिस्थितियों में योजनाओं की रचना हुई और जिस भविष्य की कल्पना करके उन्होंने अपने आंकड़े तथा अंदाज अनुमान प्रस्तुत किये वे सबके सब लगभग झूठे ही निकले। भावी का रूप कल्पनातीत निकला, सारे धरातल, कीमतें, आर्थिक सामाजिक और राजनैतिक पृष्ठभूमि सभी परिचय के बाहर लौट गईं, मानव चकाचौंध-सा हो गया, तो भी उसमें समयानुकूल परिवर्तन, परिमार्जन और रूपांतर किया गया जो चल रहा है।

भारत आजाद हो गया भारत के दो टुकड़े हो गये, आंकड़ों में घोर परिवर्तन की आवश्यकता हो गई। इधर बाजारों की आर्थिक अवस्था भी घोर हो गई, योजनाओं के खर्चे चौगुने और अठगुने अनुमान से बढ़ गये, भारत-विच्छेद के कारण नयी समस्याओं ने खजाने को ठोकर

दी और उधर भारत में नवीन कांग्रेसी सत्ताधारियों का नया-नया जोश और आवेग उमड़ा। शासन के पहले जोश में क्या करना, क्या न करना, या सभी कुछ करना, इत्यादि ने अंधेर शुरू किया। उधर अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में यू. एन. ओ. ने अपनी विशिष्ट शिक्षा-उपसमिति 'यूनेस्को' कायम कर दी जिसकी योजनाओं से भी अपना मेल बैठाना जरूरी हुआ—जो स्वयं बड़ी भारी समस्या रही। तो भी सार्जेंट-योजना पर अमल होना शुरू रहा; हां आवश्यक परिवर्तन या परिस्थितिवश संशोधन तो हुए परन्तु परिवर्तित स्वरूप में शायद मौलिक रूप पहिचाना ही न जा सकेगा। साथ में अलग-अलग प्रांतों में भी अपनी अपनी युद्धोत्तर कालीन शिक्षा-योजनाएं बनीं, नई-नई यूनिवर्सिटियाँ खुलीं, मनोवैज्ञानिक प्रयोग शालाएं और संस्थाएं निर्मित की गईं, करोड़ों खर्च करके विदेशों से सामग्री बुलवाई गई, इमारतें बनाई गईं, विद्यार्थी भेजे गये। कहने का सारांश यह कि सार्जेंट-योजना ने इन सब बातों के लिए कुछ आधार भूत सामग्री प्रदान की।

केन्द्रीय सलाहकार शिक्षा-बोर्ड का इतिहास :

सन् १९१९ के सुधार कानून लगने के बाद शिक्षा का विषय हस्तांतरित विषय होकर प्रांतीय मंत्री के हाथों में चला गया। परन्तु शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्रीय संगठन की आवश्यकता सर्वत्र अनभव में आती रही ताकि उपयोगी सूचनाएं, विचार-विमर्श और विचारों का आदान-प्रदान अधिक सुचारु ढंग से हो सके। इसलिए भारत के शिक्षा-कमिश्नर की अध्यक्षता में सन् १९२१ में केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड (Central Advisory Board of Education.) का निर्माण किया गया। जैसा कि नाम से स्पष्ट है बोर्ड का काम सलाह देना तथा शिक्षात्मक सर्वे करना रहा और किन्हीं सीमाओं तक उसने यह आशा पूरी भी की।
परन्तु सन् १९२३ में भारत सरकार की छंटनी-समिति की सिफारिश के मुताबिक उसे तोड़ दिया गया। प्रांतीय शासन की शिक्षा-विषयक

स्वतंत्रता को पूर्ण सम्मान देते हुए भी भारतीय सरकार की तटस्थता शिक्षा-पुनर्निमाण के कार्य में लाभकारी न होगी। अतः विचारों तथा खोजों का भंडार जैसा प्रस्तुत करने का कर्तव्य केन्द्रीय सरकार के जिम्मे रहना चाहिए। इसलिये अगस्त १९३५ में बोर्ड का जीर्णोद्धार किया गया। उसके जिम्मे प्रांतीय सरकारों के अनुरोध पर तथा उनके सहयोग से स्वतंत्र कार्य करने का काम दिया गया।

केंद्रीय बोर्ड का संगठन : उसकी उपसमितियाँ;

वाइसराय की कार्यकारिणी के शिक्षा-सदस्य इस बोर्ड के अध्यक्ष हुए। इसके अतिरिक्त उसका संगठन इस प्रकार से है:—

भारत के शिक्षा कमिश्नर—मंत्री होंगे। भारत सरकार के नामजद दस सदस्य होंगे; जिनमें से एक महिला, एक कौंसिल आफ स्टेट का निर्वाचित सदस्य, दो व्यवस्थापिका सभा के निर्वाचित सदस्य, अन्तर्विश्वविद्यालय बोर्ड के तीन प्रतिनिधि और एक—एक प्रतिनिधि प्रत्येक प्रांतीय सरकार का जो या तो शिक्षा—मंत्री हो, या डी. पी. आई. अथवा उसका प्रतिनिधि। बोर्ड का कार्य—काल तीन वर्ष का है किन्तु अफसर सदस्य अपने कार्य—काल तक उसके स्थायी मेम्बर रहेंगे। बोर्ड को काम—चलाऊ कमेटियाँ बनाने का अधिकार है और अभी तक उन्होंने स्त्री—शिक्षा, माध्यमिक—शिक्षा, देश—भाषा—शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा की उपसमितियां बनाई भी हैं। बोर्ड की पहली बैठक दिसम्बर १९३५ में हुई जिसमें सारी शिक्षा को निश्चित स्टेजों में बांटकर अनुरूप उद्देश्यों का पालन करने के हेतु विभक्त करने की सिफारिश हुई। प्रत्येक स्टेज उमर विशेष पर समाप्त होती है जिसके उपरांत बालक या तो दूसरी स्टेज में बढ़ जाता है या जीवन में प्रवेश कर सकता है। एतदर्थ व्यावहारिक और व्यावसायिक शिक्षा की संस्थाओं का भी प्रबन्ध सुझाया गया।

इस अंतिम काम के लिए सब प्रांतों से परामर्श हुआ। फलस्वरूप

टैक्निकल तथा व्यावसायिक शिक्षा के दस विशेषज्ञों को विदेशों से बुलाकर प्रांतों को शिक्षा के पुनर्संगठन में मदद करने को कहा गया। ब्रिटेन की सरकार ने इंग्लैंड के टैक्निकल स्कूलों के भूतपूर्व चीफ इंस्पेक्टर मि० ए० एबट और अंग्रेजी शिक्षा-बोर्ड के सूचना–डायरेक्टर श्री० एस. एच. वुड को भारतवर्ष में एतदर्थ भेजा। नवम्बर सन् १९३६ में वे आये और सारे देश की यों ही साधारण सर्वे करने के बजाय एक ही भूखंड विशेष की अंतरंग सर्वे करना उन्होंने ठीक समझा। उत्तरप्रदेश, पंजाब तथा दिल्ली प्रांत सर्वे के लिए चुने गये। उन्होंने भारत के लगभग समस्त प्रांतों के शासनाधिकारियों, शिक्षकों तथा शिक्षा–विशारदों से सलाह–मशविरा किया और दिसम्बर सन् १९३६ की केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड की बैठक में भी भाग लिया। वे मार्च सन् १९३७ में वापिस चले गये। उनकी रिपोर्ट का समीचीन उपयोग सार्जेंट–योजना में किया गया है।

सार्जेंट–योजना का विभाजन बारह अध्यायों में है जो कि इस प्रकार है :—

(१) बुनियादी शिक्षा (प्रायमरी और मिडिल)
(२) पूर्व–प्रायमरी शिक्षा
(३) हाई स्कूल शिक्षा
(४) यूनिवर्सिटी शिक्षा
(५) टैक्निकल, वाणिज्य और कला-शिक्षा
(६) प्रौढ़ शिक्षा
(७) मास्टरों की ट्रेनिंग
(८) शिक्षार्थियों का स्वास्थ्य
(९) हीन–बालकों की शिक्षा
(१०) मनोरंजक और सामाजिक क्रियाएँ
(११) नौकरी–प्रदाता ब्यूरो
(१२) शासकीय

शिक्षा युद्ध के धरातल पर होना चाहिये :

योजना की भूमिका में खर्च के कारण शिक्षा—योजनाओं को ठंडे बस्ते में धर देने की दलील की खूब खिल्ली उड़ाई गई तथा शिक्षा को युद्ध के धरातल पर समझने और तदनुकूल व्यवहार करने की बात कही गई। इसी आधार पर जान पड़ता है योजना के तमाम आंकड़े प्रस्तुत किये गये हैं। जब पूरी योजना कार्यान्वित होगी तो उसका आय-व्यय का लेखा कुछ इस प्रकार का होगा। तमाम हिसाब द्वितीय विश्व युद्ध के काल के रहन सहन के मान पर है जो कि अब कई गुना बढ़ गया है। इसलिए उनमें इतने ही का गुणा कर देना जरूरी होगा जो ज्योतिष शास्त्र की संख्याओं का स्मरण दिलायेगा। जिसका मतलब कि व्यया-त्मक अनुमानों की पुनः परीक्षा आवश्यक हो गई। (२१८ पृष्ठ पर)

सारे सुझावों को क्रियान्वित करने के लिए ४० वर्ष का समय बताया गया है। इसलिए व्यावहारिकता के हेतु पहले पांच वर्ष प्रांतवार योजनाएं बनाने, प्रचार करने, मास्टरों की ट्रेनिंग के हेतु संस्थाएं कायम करने में लगाये जावें। इसके बाद पांच पांच वर्ष के ७ प्रोग्राम बनाये जावें जो प्रत्येक क्षेत्र में पूरी तरह से लागू हों। पहले प्रोग्राम में लगभग १० करोड़ रुपया अलग और अधिक लग जावेगा ताकि उपयुक्त कर्मचारी कार्यकर्त्ता और अफ़सर इत्यादि उत्पन्न हो सकेंगे। इतनी विशाल व्ययकारिणी योजना को कार्यान्वित करने के लिए इतना तो अनिवार्य ही है कि भारत की औद्योगिक आय बाकायदा बढ़ाई जावे और उसी के साथ समाज सेवकों की संख्या भी इस हेतु उधार रुपये भी प्राप्त हो सकना चाहिये नहीं तोकाम सिद्ध न होगा। रिपोर्ट ने अपने अंतिम पैराग्राफ में एक चीनी कहावत उद्धृत की है जिसका अभिप्राय इस प्रकार है:—

> "यदि आप एक वर्ष के लिए योजना बना रहे हैं तो धान बोइये,
> यदि,, दस वर्ष के लिए योजना बना रहे हैं तो पेड़ लगाइये पर
> यदि आप सौ वर्ष के लिए योजना बना रहे हैं तो इंसान उगाइये"

यह योजना मानव की ही खेती करने का उद्योग करती है।

	वार्षिकपूर्ण खर्च	सरकारी सूत्र के अतिरि० आय	सरकारी कोष का अनुमानित व्यय
	लाखों में	लाखों में	लाखों में
(१) बुनियादी शिक्षा (प्रायमरी, मिडिल)	२००,००		२००,००
(२) पूर्व–प्रायमरी शिक्षा	३२०		३२०
(३) हाई स्कूल शिक्षा	७९००	२९००	५०००
(४) यूनिवर्सिटी शिक्षा	९६०	२९०	६७०
(५) टैक्निकल, बाणिज्य और कला	१०००	२००	८००
(६) प्रौढ़ शिक्षा	३००		३००
(७) मास्टरों की ट्रेनिंग	६२०	१७०	४५०
(८) शिक्षार्थियों का स्वास्थ्य			
(९) हीन बालकों की शिक्षा			
(१०) मनोरंजक और सामाजिक क्रियाएँ	१००		१००
(११) नौकरी-प्रदाता-ब्यूरो	६०		६०
(१२) शासकीय			
योग	३१२,६०	३५६०	२७७००

सार्जेंट रिपोर्ट की संख्यात्मक रूप-रेखा

(कोष्ठक में वर्तमान की संख्याएँ हैं)

शिक्षा की स्टेज	शिक्षार्थियों की संख्या	शिक्षकों की संख्या	प्रति व्यक्ति वार्षिक व्यय	वार्षिक पूरा खर्च
(१) प्रायमरी पूर्व ३—५	१० लाख	—	—	३½ करोड़
(२) जूनियर बेसिक ६—११	३ करोड़ ६० लाख	१२ लाख	३२) रु. (१० रु.)	११४ करोड़
(३) सीनियर बेसिक ११—१४	१ करोड़ ५६ लाख (१ करोड़ २० लाख)	६ लाख	५५) रु.	५७ करोड़
(४) हाई स्कूल ११—१७	७२ लाख ५३ हजार (१० लाख)	३,६२,६४० (५ लाख १८ हजार)	१६९) रु. (५२ रु.)	७९ करोड़

सार्जेंट रिपोर्ट की संख्यात्मक रूप-रेखा

शिक्षा की स्टेज	शिक्षार्थियों की संख्या	शिक्षकों की संख्या	प्रति व्यक्ति वार्षिक व्यय	वार्षिक पूरा खर्च
(५) यूनिवर्सिटी १७—२०	२ लाख ४० हजार (१ लाख २२ हजार)	—	४००) रु. (३००रु.)	७ करोड़ (४½ करोड़)
(६) टेक्निकल जूनियर सीनियर	२ लाख ७५ हजार	—	१५०) रु. ५००) रु.	८ करोड़
(७) प्रौढ़ शिक्षा १०—४०	९ करोड़	३६ लाख २० हजा. ६सौ	४॥) रु.	करो३ड़
(८) मास्टरों की ट्रेनिंग	२० लाख—अग्रेजुयेट १ लाख ८० हजा. ग्रेजुयेट	—	२०० स्कूल ४०० कालेज	४½ करोड़

(सार्जेंट–योजना जब मध्यप्रदेश में लगाई जावेगी)

१. वर्तमान में (१९४१) शिक्षा पर पूरा खर्च–१ करोड़ १९ लाख ५४ हजार रु०

२. निम्नलिखित चार स्टेजों पर पूरा प्रस्तावित खर्च, २२ करोड़ १४ लाख १३ हजार रु०

(कोष्ठक में वर्तमान की संख्याएं हैं)

शिक्षा की स्टेज	शिक्षार्थियों की संख्या	शिक्षकों की संख्या	प्रति व्यक्ति वार्षिक व्यय	वार्षिक पूरा खर्च
	लाख हजार सौ.			लाख. हजार. सौ.
(?) जूनियर बेसिक	२१,३५३७८ (३,४१,४५५)	७११८०	३२) रु. (१२) रु.	६८ ३३ ३००) (४२ ३५ ०००)
(२) सीनियर बेसिक	१६,८१४०० (६९१७१)	६७२१६	५५ (१६)	९२ ४७ ७०० (२४ ५० ०००
(३) हाई स्कूल	४,२७०७६ (५६५००)	२१३५४	१०९ (५१)	४६ ५५ १०० (१३ ६३ ०००)
(४) यूनिवर्सिटी	३५१३८ (३८३७)	१७५२ (२०००)	४००)	११ ४१ ४०० (७ ५० ०००)

सीनियर बेसिक अर्थात् वर्तमान मिडिल स्कूल :

अब हम योजना के प्रत्येक अध्याय के प्रधान निष्कर्षों और तथ्यों का संक्षेप में विवेचन करेंगे। छै वर्ष से लेकर चौदह वर्ष की उम्र तक के सब बालक बालिकाओं के हेतु एक सार्वजनिक अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाना चाहिये। प्रारम्भ में ट्रेन्ड शिक्षकों की कमी के कारण अवश्य इस योजना को पूरा करने में लगभग चालीस वर्ष लग जावेंगे। बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम के अनुसार बालकों को विषय पढ़ाये जावेंगे। सीनियर बेसिक स्कूल अर्थात् जिन्हें अभी हम मिडिल स्कूल कहते हैं (चाहे वे हिन्दी मिडिल हों चाहे अंग्रेजी मिडिल) भारत के अधिकांश भावी नागरिकों के हेतु आखिरी स्कूल हैं इसलिए उनका मौलिक महत्व है। एतदर्थ वहाँ उपयुक्त कर्मचारी तथा सामग्री उदारता-पूर्वक जुटाई जावें। सारी की सारी शिक्षा का प्रधान आधार शिक्षक होता है। आज की उसकी सामाजिक स्थिति, उसका वेतन सब कुछ इतना तुच्छ है कि उसकी ट्रेनिंग, नौकरी, प्रवेश तथा नौकरी की शर्तों में बहुत सुधार किया जावे। तभी एक राष्ट्रीय शिक्षा की योजना सफल हो सकेगी। ट्रेनिंगशुदा महिला शिक्षकों की अपार संख्या में आवश्यकता पड़ेगी। बेसिक शिक्षा का पूरा व्यय उठाने में लगभग २०० करोड़ रुपये खर्च होंगे।

शिशु-वर्गों के सुझाव :

प्रायमरी स्टेज के पूर्व की शिक्षा का भारत में प्रायः नहीं के ही बराबर प्रबन्ध है। परन्तु किसी भी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के वे अनिवार्य अंग हैं। शहरी क्षेत्रों में जहां ऐसे शिशुओं की संख्या पर्याप्त होगी कुछ परिधि के भीतर शिशु-शालाएं खोली जावें। किन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में जूनियर बेसिक अर्थात् प्रायमरी शालाओं के भीतर ही, शिशु-वर्ग खोले जावें। उन्हें विशिष्ट ट्रेनिंग प्राप्त अध्यापिकाओं के जिम्मे किया जावे तथा इस शिक्षा की कोई फीस न ली जावे। अनिवार्यता लादना वैसे सहज न

होगा परन्तु स्वेच्छापूर्वक बच्चे भेजने के लिए माता-पिताओं को राजी करने में कोई कोर कसर बाकी न रखी जावे। जहाँ घर में रहने की व्यवस्था बड़ी अस्वस्थ है अथवा जहां माताएं काम पर जाती हैं वहां अवश्य ही बच्चे इस कक्षा में आवें। इस शिक्षा का ध्येय कोई पुस्तकीय शिक्षा देना न होकर बालकोंको एक सामाजिक अनुभव प्राप्त कराना है। बच्चों की आयु तीन से छै वर्ष के बीच में रहेगी और लगभग दस लाख स्थानों में इसका प्रबन्ध रहेगा।

हाई स्कूल स्टेज सबके लिए जरूरी नहीं है :

हाई स्कूल का कोर्स छै वर्ष का होगा और उम्मीदवार की आयु प्रवेश के वक्त साधारणतः ११ वर्ष की होगी। परन्तु हर विद्यार्थी को यहाँ प्रवेश न मिल सकेगा। केवल वे ही लिये जावेंगे जो कि इससे फायदा उठाने की क्षमता रखते हैं। यदि और भी नामंजूर बालक आना चाहेंगे तो उनके लिये अतिरिक्त जगहें रखी जावें। पर सरकार उनका खर्च नहीं देगी। बालकों का चुनाव बड़ी बारीकी से जांचे गये तरीकों और सिद्धांतों के अनुसार होना चाहिये। सीनियर बेसिक अर्थात् मिडिल स्कूल से जो बालक हाई स्कूलों में आना चाहें उनके लिये विशेष प्रबन्ध हो, खास तौर पर ऐसे बालकों के लिए जिनकी बाढ़ देर में शुरू होती है। 'वांगमयी' और 'टैक्निकल' दो प्रकार की पाठ-शालाएं हुआ करें। परन्तु दोनों ही साथ साथ एक अच्छी सर्वांगीण शिक्षा देंगी कि बाद में लड़के स्कूल छोड़ने पर किसी धंधे में ठीक तरह जम भी सकें। यूनिवर्सिटियों की परीक्षाओं के तकाजों पर ध्यान न देते हुए सारी पाठ्य सामग्री परिस्थितियों के बीच पूर्ण विविधता लिये हुए रहेगी। गरीब पर सुयोग्य बालकों के हेतु छात्रवृत्ति का भी प्रबन्ध होना चाहिये। पाठ्यक्रम में जो विषय रखे हैं वे ब्रा-समिति-रिपोर्ट जैसे ही हैं।

वर्तमान यूनिवर्सिटियों का स्तर बावजूद कुछ अच्छी चीजों के

यथेष्ट नहीं है। इसलिए उसे ऊंचा करने के हेतु प्रवेश-सम्बन्धी नियमों को कुछ ऐसा बदलना चाहिये कि सभी विद्यार्थी उस कोर्स का लाभ उठाने के लायक हो सकें। हाई स्कूलों के पुनर्संगठन से यह संभव हो जावेगा। आजकल जो इंटरमीजियट कोर्स है उसे तोड़ दिया जावे। वैसे उसका पहला वर्ष तो हाई स्कूलों के तथा दूसरा वर्ष डिग्री क्लासों के साथ जोड़ना सरलता से हो सकता है। डिग्री कोर्स की अवधि कम से कम तीन वर्ष की होना चाहिये। ट्यूटोरियल प्रणाली को इम्दाद देकर शिक्षक और शिक्षार्थियों के पारस्परिक सम्बन्धों और प्रभावों को पुष्ट किया जाना बहुत जरूरी है। ग्रेजुयेटोत्तर कक्षाओं में रिसर्च और अनुसंधान विषयक ऊंचे स्तर के कार्य पर विशेष ध्यान दिया जावे। योग्य व्यक्ति यूनिवर्सिटियों में सर्विस करने के लिए आकृष्ट हों, इस हेतु यह अनिवार्य है कि उनका वेतन, शर्तें और सम्मान बढ़ाये जावें। इनकी ग्रांट सम्बन्धी समस्याओं पर विचार करने के लिए एक समिति बनाई जावे।

युद्धोत्तर काल में भारतीय उद्योग और व्यवसायों में चतुर और कुशल टेक्निशियनों की आवश्यकता पड़ेगी तथा व्यावहारिक कोर्स से लाभ उठाने वाले लोगों के लिए शिक्षा की हर स्टेज में टेक्निकल शिक्षा का प्रबन्ध किया जाना चाहिये।

प्रौढ़ शिक्षा के विषय में अन्यत्र मध्यप्रदेश की योजना का विशद विवरण दिया जा रहा है वह अधिक स्पष्ट और पूर्ण है।

मास्टरों की ट्रेनिंग के लिये योजना ने दो प्रकार के टेबिल दिये जिनसे उनके खर्च का कुछ आभास हो सकता है। (२२५ पृष्ठ पर)

मास्टरों की ट्रेनिंग : उपयुक्त उम्मीदवारों को स्कूलों से ही प्रोत्साहन शुरू हो जावे।

हर हाई स्कूल में ऐसा प्रबन्ध होकि योग्य बालक बालिकाओं को चुना जाकर शिक्षण-व्यवसाय की ट्रेनिंग में प्रवेश कराया जावे। उनकी ट्रेनिंग का कोर्स व्यावहारिक अधिक होना चाहिये ताकि

प्रति ट्रेनिंग स्कूल ३०० विद्यार्थी

आवश्यक स्टाफ	वेतन-मान	औसत खर्च	सालाना खर्च	वेतन का पूरा व्यय	प्राविडेंट फंड जुमला	वेतन और प्राविडेंट फंड जुमला
१५ अध्यापक	१००– ५–१५० प्र. मा.	१३६·५ रु०	२४५७० रु०			
४ अध्यापक	१२५– ५–१७५ ,,	१६१·५ ,,	७७५० ,,	३८९७६) रु०	२४३६) रु०	४१४१२)
१ स. प्रिंसपल	१७०–१०–२५० ,,	२३१·८६ ,,	२७८४ ,,			
१ प्रिंसपल	२५०–१०–३५० ,,	३२३·०५ ,,	३८७६ ,,			

प्रति ट्रेनिंग कालेज २०० विद्यार्थी

आवश्यक स्टाफ	वेतन-मान	औसत खर्च	सालाना खर्च	वेतन का पूरा व्यय	प्राविडेंट फंड जुमला	वेतन और प्राविडेंट फंड जुमला
८ जूनियर लेक्चरर	१५०–१०–२५०–प्र.मा.	२२३·०५ रु०	२१४०८ रु०			
४ सीनियर लेक्चरर	३००–२०–५०० ,,	४४६·१ ,,	२१४०८ ,,	५१८१६) रु०	३२३९) रु०	५५०५५)
१ प्रिंसपल	७५०	७५० ,,	९००० ,,			

वे स्कूलों की आवश्यकता भली भांति पूरी कर सकें। सारी ट्रेनिंग निःशुल्क हो और निर्धन विद्यार्थियों को उदारता-पूर्वक सहायता दी जावे। हर प्रकार के शिक्षकों के हेतु रिफ्रेशर-कोर्सों की व्यवस्था आवश्यक है। वह ग्रामीण क्षेत्रों के लिए तो अनिवार्य ही है। इसी तरह कुछ चुने हुए शिक्षकों को रिसर्च करने का प्रोत्साहन दिया जावे तथा विदेश भेजकर वहाँ की शिक्षा-पद्धतियों का अध्ययन भी कराया जावे।

स्वास्थ्य-व्यवस्था :

बालकों की स्वास्थ्य-शिक्षा की समिति ने पूरी व्यवस्था दी। डाक्टरी जांच, इलाज और उत्तर कालीन तीमारदारी, पौष्टिक भोजन, व्यक्तिगत और वातावरण की सफाई, व्यायाम-शिक्षा, सामूहिक क्रियाओं तथा शासन-विभागों में बांटकर सुझाव दिये। साथ ही बालकों के लिए भोजनों के प्रबन्ध की भी व्यवस्था बनाई गई है।

हीन-बालकों की शिक्षा : अंशतः हीन और पूर्णतः हीन के लिए विभिन्न साधन :

भारतीय-शिक्षा के इतिहास में शायद यह पहली योजना है जिसने हीन बालकों की शिक्षा पर ध्यान दिया तथा उपयुक्त सुझाव पेश किये। जो कुछ अभी तक हुआ था वह व्यक्तिगत उदारमना व्यक्तियों के उद्योग के फलस्वरूप जहाँ तक संभव हो उन्हें सामान्य बालकों से अलग न किया जावे। हाँ, जब उनका दोष तथा उसका विस्तार काफी हो जावे तब विशिष्ट संस्थाओं में उन्हें भेजना आवश्यक होगा। आंशिक रूप में ही जो बालक हीन हैं उनकी शिक्षा केवल विशिष्ट सद्व्यवहार से हो जावेगी। अंधे और बहरे बालकों के लिए विशिष्ट शिक्षा-सामग्री एवं शिक्षक आवश्यक है जिनकी ट्रेनिंग के लिए केन्द्रीय स्थानों में संस्थाएं खोलना उचित होगा। उनकी शिक्षा में यह ध्यान रखा

जावे कि ट्रेनिंग के उपरांत बालक जीविकोपार्जन का व्यवसाय पा सके, साथ ही स्कूल उनके लिए जगहें दिलाने में भी मदद करे। ऐसे हीन बालकों के कुछ विश्वस्त आंकड़े न होने के कारण उसके खर्च का बजट बनाना भी मुश्किल है इसलिए बेसिक और हाई स्कूलों के लिए निर्दिष्ट जुमला खर्च का १० फी सदी इन बालकों के वास्ते साधन जुटाने के लिए अलग रख दिया गया है।

युवक-आंदोलन और इम्प्लॉयमेंट ब्यूरो:

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में मनोरंजन तथा सामाजिक क्रियाओं का खास स्थान है। स्कूल के बालक बालिकाओं के लिए ऐसी सुविधाएं जुटाने के सिवा १४ से लेकर २० वर्ष के उन बालकों के लिए भी कुछ प्रबन्ध होना अनिवार्य है जो कि स्कूलों में पढ़ नहीं रहे। एतदर्थ युवक-आंदोलन जैसी किसी राष्ट्रीय संस्था का निर्माण आवश्यक है जो प्रस्तुत संस्थाओं की क्रियाओं का संगठन एवं कमियों को ही जुटाने का कर्तव्य पूरा करें। युवक-आंदोलनों के लिए उपयुक्त पथ-प्रदर्शकों की भी ट्रेनिंग आवश्यक होगी जो कि भरती के वास्ते पल्टन से छूटे व्यक्तियों में उपलब्ध हो जावेंगे। इसके खर्च का भी ठीक अनुमान लगाना कठिन है।

प्रगतिवादी कार्यों में स्थान प्राप्त करने के लिये इतना कम अवसर भारतवर्ष में है कि शिक्षा-व्यवस्था को उसकी सुविधाएं जुटाना अनिवार्य है इसलिये इम्प्लायमेंट-ब्यूरो खोले जावें। इन ब्यूरों में शिक्षात्मक और औद्योगिक परिस्थितियों के व्यावहारिक ज्ञान एवं अनुभव प्राप्त कर्मचारियों और विशेषज्ञों की नियुक्ति की जाना चाहिये। इन ब्यूरों का सम्बन्ध श्रम-विभाग इत्यादि द्वारा स्थापित समान संस्थाओं से भी होना चाहिये। परन्तु इस विभाग-विशेष का नियंत्रण शिक्षा-विभाग के ही हाथों रहे।

प्रांत ही शिक्षा-शासन की इकाई रहे : परन्तु अफसरों का अन्तर्प्रांतीय लेनदेन चले:

शिक्षा-शासन के हेतु प्रांत ही प्रधान इकाई अच्छी साबित होगा। यूनिवर्सिटी तथा उच्च और टेक्निकल शिक्षा का समन्वय अवश्य अखिल भारतीय आधार पर किया जावे। राष्ट्रीय शिक्षा के लिए केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारों के बीच अधिक सहयोग आवश्यक होगा जो कि आर्थिक भी होना चाहिए। योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए प्रांतीय सरकारें अपनी शासकीय व्यवस्था को आवश्यकतानुसार बदल लेवें। अनुभव यह है कि स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं ने काम ठीक तरह से नहीं किया इसलिए प्रांतीय सरकारें उनके अधिकार अपने हाथ में लेवें। केन्द्रीय शिक्षा-विभाग अधिक सशक्त बनाया जावे। इसी प्रकार शिक्षा अफसरों का स्तर जो नित्य नीचा होता चला जा रहा है उसे सुधारने के लिए उपयुक्त भर्ती की जावे। प्रांत और केन्द्र तथा प्रांत प्रांत के बीच अफ़सरों का आदान-प्रदान संभव बनाया जाकर अखिल भारतीय शिक्षा सर्विस का संगठन किया जावे। डायरेक्टर, उच्च और टेक्निकल शिक्षा के अतिरिक्त सर्व शिक्षा का सर्वोच्च अधिकारी रहे और वही शिक्षा-विभाग का सेक्रेटरी भी हो।

योजना पर निम्नलिखित व्यक्तियों के हस्ताक्षर हैं :—

(१) डब्ल्यू. एच. एफ. आर्मस्ट्रांग डी. पी. आई. ; पंजाब

(२) पी. एन. बनर्जी एम. एल. ए.

(३) सी. वी. चन्द्रशेखरन् प्रो. वाइस चांसलर, त्रावणकोर विश्वविद्यालय।

(४) एम. अफ़जल हुसैन, वाइस चांसलर, पंजाब वि. वि.

(५) मिर्जा एम. इस्माइल, प्रधान मंत्री, जयपुर

(६) डब्ल्यू. ए. जेन्किन्स, डी. पी. आई, बंगाल

(७) अब्दुस्समद खां, डी. पी. आई, बिहार

(८) तमीजुद्दीन खां शिक्षा–मंत्री, बंगाल

(९) व्ही. टी. कृष्णमाचारी दीवान, बड़ौदा

(१०) जार्ज लाहौर

(११) जी. एल. मेहता, भूतपूर्व अध्यक्ष इंडियन चेम्बर ऑफ कामर्स

(१२) के. रामुन्नी मेनन (दीवान बहादुर), (सदस्य कौंसिल आफ स्टेट)

(१३) गोदावरीश मिश्र, शिक्षा–मंत्री, उड़ीसा

(१४) एस. मूस, डी. पी. आई., बम्बई

(१५) सईदुर्रहमान शिक्षा–मंत्री, आसाम

(१६) रेणुका रे, एम. एल. ए.

(१७) एम. रत्नास्वामी वाइस चांसलर, अन्नामलाई वि. वि.

(१८) मोहम्मद समीन जान शिक्षा-मंत्री, पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत

(१९) जॉन सार्जेंट, शिक्षा–कमिश्नर भारत सरकार

(२०) एच. एन. सेन, डी. पी. आई., आसाम

(२१) शाह आलम, डी. पी. आई., सीमाप्रांत

(२२) ल्योनार्ड. जी. डिसल्वा, डी. पी. आई., मध्यप्रदेश

(२३) उज्जलसिंह, एम. एल. ए., पंजाब

(२४) आर. एम. स्टेथम, डी. पी. आई., मद्रास

(२५) मालिनी बी. सुख्तनकर

(२६) आई. एच. टान्टन, सलाहकार बम्बई गवर्नर

(२७) एस. सी. त्रिपाठी, डी. पी. आई., उड़ीसा

(२८) डब्ल्यू. जी. पी. वाल, डी. पी. आई., उत्तरप्रदेश

(२९) पी. एफ. एस. वारेन

(३०) जियाउद्दीन अहमद, वाइस चांसलर, अलीगढ़ वि. वि.

(३१) जोगेन्द्रसिंग, शिक्षा–सदस्य, भारत सरकार (अध्यक्ष)

(३२) डी. एम. सेन, सेक्रेटरी

अध्याय १७

राधाकृष्णन-कमीशन

पहला विशुद्ध भारतीय शिक्षा-कमीशन:

नई धारा की तीसरी रेखा है स्वतंत्र भारत का राधाकृष्णन्-कमीशन* या यूनिवर्सिटी-कमीशन (१९४८-४९) जो पूर्ण स्वतंत्र भारत का अपनी किस्म और अभी तक के ज्ञात इतिहास का पहली कमीशन है। उसने अपनी रिपोर्ट सन् १९४९ में प्रस्तुत की है। यह कहना तो कठिन है कि शिक्षा की दृष्टि से उसने कोई ऐसी बात कह दी जो अभी तक की भारतीय यूनिवर्सिटियों के कमीशनों ने न कही हो, अथवा जो विदेशों में न कही और सोची गई हो, तो भी उसकी सारी खोज-पड़ताल का वातावरण विशुद्ध भारतीय है। डा० सर राधाकृष्णन् भारत के ही नहीं विश्व के बड़े सुप्रसिद्ध दार्शनिक, शिक्षाविद् हैं, उन्हें यूनिवर्सिटी शासन का पूरा-पूरा अनुभव है और संसार के लगभग सभी चोटी के विश्वविद्यालयों से उनका संपर्क रहा है। इधर इंग्लैंड और अमेरिका के उच्च शिक्षा विशारदों को भी सदस्य रूप में कमीशन में सम्मिलित किया गया था और सब मिलाकर श्रेष्ठ कोटि की रिपोर्ट प्रस्तुत की गई है।

---

* कमीशन के सदस्य:—(१) डॉ. एस. राधाकृष्णन्, एम. ए., डी. लिट., एल. एल. डी.—अध्यक्ष

(२) डॉ. ताराचन्द, एम. ए. डी. फिल, शिक्षा-सलाहकार, भारत सरकार—सेक्रेटरी

(३) डॉ. (सर) जेम्स एफ. डफ़., वाइस चांसलर, डरहम विश्वविद्यालय

उद्देश्य :

कमीशन की उन सिफारिशों, निदानों, और सुझावों पर ही यहां विचार करना उचित होगा कि जिनका निर्देश पूर्व काल मे या तो हुआ ही नहीं अथवा हुआ भी तो विभिन्न दृष्टिकोण से हुआ। यूनिवर्सिटी के उद्देश्य का निर्धारण करते हुए कमीशन ने लिखा है, "प्रजातंत्र का अस्तित्व ही सामान्य और व्यावसायिक शिक्षा के ऊँचे स्टैंडर्ड पर निर्भर है। ज्ञान का प्रसार, नवीन ज्ञान की निरंतर खोज, जीवन की सार्थकता सिद्ध करने की अनवरत चेष्टा, समाज की व्यावसायिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने की सुविधा–सामग्री जुटाना उच्च शिक्षा के महत्वपूर्ण कर्तव्य हैं।"

वेतन-मान :

एतदर्थ सबसे पहले यूनिवर्सिटी के अध्यापकों तथा उनकी जिम्मे-

---

(४) डॉ. जाकिर हुसैन, जामिया मिलिया इस्लामिया, वाइस चांसलर, अलीगढ़ वि. वि.

(५) डॉ. आर्थर ई. मार्गन, पहले अध्यक्ष, टेनेसी वेली अथारिटी

(६) डॉ. ए. लक्ष्मण स्वामी मुदालियर, वाइस चांसलर मद्रास वि. वि.

(७) डॉ. मेघनाद साहा, डीन साइंस फैकल्टी, कलकत्ता वि. वि.

(८) डॉ. कर्मनारायण बहल, प्रोफे० पशु-शास्त्र, लखनऊ वि. वि.

(९) डॉ. जॉन जे. टाइगर्ट, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के भूतपूर्व शिक्षा–कमिश्नर

(१०) श्री निर्मल कुमार सिद्धांत, अंग्रेजी के प्रोफेसर, डीन आर्ट्स फैकल्टी, लखनऊ विश्वविद्यालय

निर्माण तिथि—दिसम्बर १९४८

रिपोर्ट प्रस्तुत की— अगस्त १९४९

दारी का महत्व आंका जाकर धनाभाव के कारण जो अनीति-सी आ गई है उसका सुधार किया जावे। कमीशन ने निम्न प्रकार के अध्यापकों तथा उनके वेतन-मान की तालिका प्रस्तुत की है। उनका चुनाव बड़ी सावधानी से हो तथा उन्हें तरक्की भी दी जाने की सम्भावनाएँ हों। पेंशन ६० वर्ष की उमर में हो जावे और बहुत से बहुत ६४ वर्ष में। प्राविडेंट फंड, छुट्टी इत्यादि के नियम ठीक तरह से निर्धारित किये जावें :--

यूनिवर्सिटी शिक्षक

प्रोफेसर	९००–५०–१३५० रु०
रीडर	६००–३०–९०० रु०
लेक्चरर	३००–२५–६००
इंस्ट्रक्टर या फैलो	२५०
रिसर्च फैलो	२५०–२५–५००

संबद्ध कालेजों का वेतन-मान (ग्रेजुयेटोत्तर कक्षाओं के)

लेक्चरर	२००–१५–३२०–२०–४००
	४००–२५–६०० (हर कालेज में दो)
प्रिंसिपल	६००–४०–८००

ग्रेजुयेटोत्तर कक्षाओं वाले संबद्ध कालेजों का वेतन मान :—

लेक्चरर	२००–१५–३२०–२०
	४००–२५–५००
प्रिंसिपल	८००–४०–१०००

अध्यापन का स्टैंडर्ड

सुनिश्चित पाठ्य-ग्रंथ न रहें: ट्यूटोरियल प्रणाली को विकसित किया जाय :

बारह वर्ष तक स्कूल अथवा इंटरमीजियेट कालेजों में शिक्षा

पाने पर ही यूनिवर्सिटी में भर्ती हो सकेगी। ऐसे कालेज हर प्रांत में सुचारु ढंग से चलाये जावें। १० या १२ वर्ष तक पढ़ चुकने के बाद विद्यार्थियों को उपयुक्त व्यवसायों की ओर आकृष्ट करने के वास्ते व्यावसायिक शालाएं भी खोली जावें। यूनिवर्सिटियों और कालेजों में ज्यादा भीड़ न हो जावे इसलिए आर्ट्स और साइंस की फैकल्टियों में अधिक से अधिक ३००० और संबद्ध कालेज में अधिक से अधिक १५०० विद्यार्थी रहे। साल में कालेज १८० दिन कम से कम लगे और ११ सप्ताहों की तीन त्रैमासिकें होवें। व्याख्यानों की योजना सावधानी से की जावे तथा ट्यूटोरियल, पुस्तकालयों और लिखित कार्य से उन्हें संपूर्ण किया जावे। किसी भी पाठ्यक्रम के लिए कोई सुनिश्चित पाठ्य ग्रंथ न रहे। बी. ए. से नीचे के सब विद्यार्थियों की कालेजों में हाजिरी अनिवार्य हो तथा कुछ खास श्रेणियों के ही परीक्षार्थी प्राइवेट परीक्षाओं में बैठने दिये जावें। काम में व्यस्त लोगों के वास्ते संध्या-कालेज खोलने का प्रयत्न किया जावे। हर संस्था में ट्यूटोरियल अध्यापन को विकसित किया जावे और उन्हें केवल परीक्षा के लिए ही न बना लिया जाय। उसी तरह विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों का विकास अतिरिक्त सालाना ग्रांटों, खुले आम पुस्तकें देखने, अधिक समय तक खुले रहने तथा उपयुक्त स्टाफ के जरिये सम्भव बनाया जावे। इसी तरह प्रयोग शाला की इमारत, सामग्री, कारखाने और टैक्नेशियनों का स्तर भी बढ़ाया जावे।

अध्यापन का पाठ्यक्रम : आर्ट्स और साइन्स :

भर्ती के पहले वर्तमान इंटर मीजियेट स्टैंडर्ड की एक परीक्षा हुआ करे। एम. ए. की डिग्री ऑनर्स वालों को केवल एक साल बाद और पास वालों को दो साल पढ़ने के बाद दी जावे। सिलेबस ऐसा बनाया जावे कि प्रत्येक क्षेत्र में सोचने और कार्य करने की पद्धतियों और सामग्रियों को पाकर बालक ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के पारस्परिक संबंधों को समझ। इसी तरह रुचि और योग्यतानुसार उनके संपूर्ण व्यक्तित्व के

विकास को वह समन्वित कर सके।

एम. ए. और रिसर्च

अध्यापन कारिणी और संबद्धतादायिनी यूनिवर्सिटियों के रिसर्च–क्षेत्र : सीमा-स्थित विषयों पर भी रिसर्च शुरू हो :

एम. ए. का काम व्याख्यानों, सेमीनार और प्रयोगशालाओं के ज़रिये पूरा हो। किसी एक विषय की उच्च शिक्षा तथा रिसर्च की विधियों का अध्यापन हो, केवल रिसर्च ही नहीं। इन कोर्सों की भर्ती अखिल भारतीय आधार पर प्रत्येक यूनिवर्सिटी में होना चाहिये। पी. एच. डी. के वास्ते अध्ययन की अवधि दो वर्ष हो तथा विद्यार्थी संकुचित विशेषज्ञ-मात्र न हो जावे, बल्कि विशालता और गम्भीरता का उसमें संचार होवे। अध्यापनकारिणी यूनिवर्सिटियों में अधिक से अधिक विषयों में रिसर्च ट्रेनिंग-केन्द्र खोले जावें तथा संबद्ध कालेजोंवाली यूनिवर्सिटी अपने विशिष्ट विषयों में एम. ए. तथा रिसर्च विभाग खोलें जिनमें उन्हें उच्च कोटि के पंडित उपलब्ध हो सकें। प्रकाशित तथा उच्च कोटि की रचनाओं के वास्ते डी. लिट्. और डी. एस. सी. की डिग्रियाँ प्रदान की जावें। अध्यापकगण अपने उपदेश और आदर्शों से रिसर्च कार्यों में नवीन विचारों और नवीन विधियों को अधिक लगन के साथ समाहृत करें। भारत के साहित्य-प्राचीन और नवीन–दर्शन, धर्म, इतिहास ओर ललित कलाओं में रिसर्च की इतनी सामग्री बिखरी पड़ी है कि उसका उपयोग होना चाहिये। उसी तरह जब वैज्ञानिकों को इतनी अधिक संख्या में ट्रेनिंग प्रस्तुत की जावेगी तभी थोड़े से वैज्ञानिक दिग्गज हमें उपलब्ध होंगे। और वैज्ञानिकों की हमारे यहाँ योंही बहुत कमी है। मौलिक रिसर्चों, के क्षेत्र में यूनिवर्सिटियां बहुत लगन से काम करें तथा उनके वास्ते उदारता-पूर्वक पूंजी और निधि उपलब्ध कराई जावे। भारत सरकार की ओर से वैज्ञानिक बुद्धिजीवियों के लिए अलग से प्रचुर मात्रा में छात्र-वत्तियां प्रस्तुत की जावें ताकि हर यूनिवर्सिटी का रिसर्च–विभाग खूब

सुसंपन्न हो सके। बम्बई, आंध्र, मद्रास और त्रावणकोर जैसी तट-स्थित यूनिवर्सिटियों में मेरीन बायोलाजी के ऊपर विशिष्ट काम हो तथा वहां एतदर्थ स्टेशन खोले जावें। बायो-केमिस्ट्री, बायो-फ़िज़िक्स, जिओ-केमिस्ट्री, जिओफ़िज़िक्स जैसे सीमा-स्थित विज्ञानों में अध्ययन और रिसर्चों के लिए अतिरिक्त सुविधाओं के जुटाने की बहुत जरूरत है।

व्यावसायिक शिक्षा:

कृषि वास्तव में महान् राष्ट्रीय समस्या है। एतदर्थ ग्रामीण सेटिंग की रचना करके वर्तमान कृषि कालेजों को पुष्ट किया जावे तथा नवीन कालेज स्थापित किये जावें। प्रांतीय और केन्द्रीय सरकारें स्वयं प्रयोगात्मक खेतों की स्थापना कर भारतीय कृषि-रिसर्च की कौन्सिल के सहयोग से रिसर्च केन्द्रों की स्थापना करें। कृषि नीति का भी एक इंस्टीट्यूट इसी कौंसिल के मातहत खोला जावे।

वाणिज्य

यूनिवर्सिटी में पढ़ते समय प्रत्येक विद्यार्थी को कम से कम तीन चार विभिन्न किस्म की फर्मों में काम करने का व्यावहारिक अनुभव प्राप्त कराया जावे। ग्रेजुयेट होने के बाद किसी एक धंधे में विशेषज्ञता दिलाई जाकर उपयुक्त व्यावहारिक ट्रेनिंग भी दी जावे। एम. कॉम. में भी इसी तरह व्यावहारिक ट्रेनिंग अधिक आवश्यक होगी।

शिक्षण

ट्रेनिंग कालेजों का अधिकांश स्टाफ उन्हीं में से लिया जावे जिन्हें शास्त्रीय अध्यापन का स्वयं अनुभव हो तथा जो अध्यापकीय सिद्धांतों को स्थानीयता के अनुकूल रूपांतरित कर सकें। एम. ए. की डिग्री अध्यापकीयता के कुछ वर्षों के उपरांत ही दी जावे।

इंजीनियरिंग टेक्नॉलाजी

इस विषय में जो कुछ वुड–एबट–रिपोर्ट ने लिखा है उसके

अतिरिक्त कोई नवीन बात नहीं ।

कानून

ला-कालेजों की व्यवस्था फिर से ठीक ठीक की जावे तथा लॉ कोर्स में भर्ती होने के पहले कानून तथा सामान्य विषयों की सामान्य ट्रेनिंग से युक्त तीन वर्षीय डिग्री कोर्स नियत किया जावे । अंतिम वर्ष में व्यावहारिक कार्य अधिक हो जिसमें बार रूमों में एप्रेंटिसशिप भी एक विषय होवे ।

ओषध

एक मेडीकल कालेज में अधिक से अधिक १०० विद्यार्थी होवें । नर्सिंग और पब्लिक इंजीनियरिंग में भी ग्रेजुयेटोत्तर ट्रेनिंग दी जाना महत्वपूर्ण है । भारतीय ओषधियों में रिसर्च करने की सुविधाएँ प्राप्त कराई जावें तथा उनके इतिहास का भी अध्ययन होवे ।

धार्मिक शिक्षा

प्रत्येक शिक्षा-संस्था का कार्य कुछ क्षणों के मौन-मनन से प्रारम्भ हुआ करे । महान् धार्मिक नेताओं की जीवनी विश्ववादियों की कतिपय बातें, धर्म-दर्शन के मौलिक सिद्धांत क्रमशः एक, दो, तीन वर्षों में सिखाये जावें ।

शिक्षा का माध्यम

विदेशी शब्द हजम किये जावें:—

विभिन्न सूत्रों से आये हुए भारतीय भाषाओं के शब्दों से समवेत संघीय भाषा का विकास कराया जावे । वैज्ञानिक और टेक्निकल विषयों के अंतर्राष्ट्रीय शब्दों का भारतीयकरण भारतीय लिपियों तथा उच्चारणों और हिज्जों के अनुसार किया जावे । उच्च शिक्षा में संस्कृत के अतिरिक्त किसी भी देश भाषा को अंग्रेजी की जगह व्यवहार में लाना है । हाई स्कूलों और कालेजों में विद्यार्थियों का परिचय मातृ-भाषा, संघीय भाषा और

अंग्रेजी इन तीन भाषाओं से होना चाहिये। उच्च शिक्षा या तो प्रांतीय देश भाषाओं या संघीय भाषा के माध्यम से दी जावे। संघीय भाषा देवनागरी लिपि में ही सुधारोपरांत लिखी जावेगी। संघीय तथा प्रादेशिक भाषाओं के विकासार्थ वैज्ञानिकों, भाषाविदों का एक बोर्ड बनाया जावे जो कि सब भारतीय देश भाषाओं में लग सकने वाले शब्दों के कोष को तैयार करे तथा ऐसे विज्ञान-विषयक ग्रंथ भी लिखवाये जिनका सब देशभाषाओं में अनुवाद किया जावे। सब संस्थाओं में संघीय भाषा के अध्यापन की सुविधाएँ प्रांतीय सरकारें जुटावें।

परीक्षाएँ

सरकारी शासकीय सर्विसों के लिए यूनिवर्सिटी डिग्री आवश्यक न मानी जावे। उसके बदले में भर्ती की सरकारी परीक्षाओं की ही विशिष्ट व्यवस्था हो। कक्षा में किये गये काम के ऊपर तिहाई नम्बर दिये जावें। तीन साल की डिग्री की अवधि के बीच विषय की पूर्ण इकाई होने पर सामयिक परीक्षाएं हुआ करें। प्रथम श्रेणी के लिए ऊंचे ७० फी सदी, द्वितीय के लिए ५५ से ६९ और तृतीय के लिए कम से कम ५० फी सदी नंबर आवश्यक हों। मौखिक परीक्षा केवल ग्रेजुयेटोत्तर और व्यावसायिक डिग्रियों के वास्ते जरूरी है।

शिक्षार्थी

भर्ती के समय किसी भी तरह का भेद भाव न बर्ता जावे तथा प्रारम्भ में अधिकाधिक कोर्सों की विविधता उनके समक्ष रखी जावे। गरीब योग्यों को छात्रवृत्तियाँ दी जावें तथा भर्ती के वक्त उनकी डाक्टरी परीक्षा हो। नेशनल केडट कोर सब संस्थाओं में हो और इच्छानुसार बालक उसमें भर्ती होवें। विश्वविद्यालयों को बोर्डिंगों, निवास और सामाजिक जीवन के विवेकपूर्ण स्टैंडर्ड निश्चित करना चाहिये तथा यूनियनें राजनैतिक कार्यों से सदैव दूर रहें। शिक्षार्थियों के अनुशासन तथा हित की देख भाल के लिए एक डीन नियुक्त होवे।

स्त्री शिक्षा के विषय में सहशिक्षा के कालेजों की व्यवस्था की सिफारिश की गई है ।

संविधान और नियंत्रण

यूनिवर्सिटी-शिक्षा संविधान की सहगामिनी (Concurrent) लिस्ट में रखी जावे । ग्रांटों का निबटारा करने के वास्ते एक केन्द्रीय ग्रांट-समिति का निर्माण हो । विशुद्ध सम्बद्धतादायिनी यूनिवर्सिटी एक भी न हो । यूनिवर्सिटी के पदाधिकारी इस प्रकार हों:—

विज़िटर (गवर्नर जनरल)

चांसलर (प्रांतीय गवर्नर, बहुधा)

वाइस चांसलर और सिनेट

कार्यकारिणी कौन्सिल

एकेडेमिक समिति

फैकल्टी

शिक्षा-बोर्ड, अर्थ-समिति, नियुक्ति-समिति

अर्थ

इनकम टैक्स में संशोधन कर शिक्षात्मक दानों को प्रोत्साहन दिया जावे । सरकार अगले पांच वर्षों में लगभग १० करोड़ सालाना यूनिवर्सिटी शिक्षा के वास्ते खर्च करे तथा अपनी जिम्मेवारी इस क्षेत्र में समझे ।

बनारस, अलीगढ़

बनारस और अलीगढ़ का सांप्रदायिक स्वरूप समाप्त करके उन्हें अखिल भारतवर्षीय यूनिवर्सिटियां बनाया जावे ।

नयी यूनिवर्सिटियाँ

प्रारम्भ में उन्हें राष्ट्रपति एक अस्थायी चार्टर दें । परन्तु स्थायी

चार्टर बाद में ग्रांट-कमीशन की सिफारिशों पर दिया जावे। विश्व भारती, और जामिया मिलिया को अस्थायी चार्टर देकर उपयुक्त पूँजी तथा वार्षिक ग्रांटें मंजूर की जावें। नयी यूनिवर्सिटियों को योजना भारत की समूची शिक्षात्मक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर सर्वदेशीय रूप में की जावे।

(२४१ पृष्ठपर देखिये)

ग्राम्य विश्वविद्यालय

ग्राम्य क्षेत्रों में उच्च शिक्षा के विकासार्थ विशेष ध्यान दिया जावे और ज्यों-ज्यों शिक्षा का प्रसार होता है उसी अनुपात में ग्राम्य क्षेत्रों की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए अतिरिक्त सुविधाएं प्रदान की जावें।

स्वतंत्र भारत में बनी हुई नवीन यूनिवर्सिटियाँ

प्रदेश	नाम	स्थान	स्थापना की तिथि
पूर्वी पंजाब	१. पूर्वी पंजाब	शिमला	१९४७
उत्तर प्रदेश	२. रुड़की इंजीनिरिग	रुड़की	१९५०
उड़ीसा	३. उत्कल	कटक	१९४७ एक्ट १९४३
राजपूताना	४. राजपूताना	जयपुर	१९४७
मध्यप्रदेश	५. सागर	सागर	१९४७
बम्बई	६. कर्नाटक	धारवाड़	१९५०–५१
	७. पूना	पूना	१९४८–४९
	८ महा. सयाजीराव	बड़ौदा	३० अप्रैल १९४९
	९. गुजरात	अहमदाबाद	१९५० नवम्बर
आसाम	१०. गोहाटी	गोहाटी	१९४८
काश्मीर	११. जम्मू काश्मीर	श्रीनगर	१९४९
बिहार	१२. बिहार	राँची	१९५१

अध्याय १८

झा-रिपोर्ट (मध्यप्रदेश)

माध्यमिक शिक्षा : योजनाओं का आधिक्य ।

नवीन धाराओं में जहां प्रौढ़ शिक्षा, यूनिवर्सिटी शिक्षा और बुनियादी शिक्षाओं ने अपना स्थान पाया वहीं माध्यमिक शिक्षा पर भी देश का ध्यान गया। इस दिशा में भी मध्यप्रदेश ने पथ-प्रदर्शन का काम किया है। इसकी बुनियाद विश्व-युद्ध के पूर्व पड़ गई थी। पर अनेक कारणों से वह युद्ध के समाप्त होने तक प्रकाश में न आ पाई। "माध्यमिक शिक्षा का पुनर्संगठन" इस नाम से यह योजना प्रतिनिधि रूप में भारत की समकालीन शिक्षात्मक विचार-धारा का प्रायः संपूर्ण प्रतीक है। लगभग हर प्रांतों में इसी आधार पर थोड़े हेरफेर और स्थानीय वातावरण तथा परिस्थितियों को ध्यान में रखकर योजनाएं बनाई तथा कार्यान्वित की गई हैं। वैसे यह घोषित कर सकना कठिन बात है कि जिस उन्माद और महत्वाकांक्षा से युद्धोत्तर काल का शासन शुरू हो गया था वह बड़ा क्षण भंगुर न होकर चिरस्थायी रहा। आलोचकों ने 'योजना योजना बस योजना' की उपालंभपूर्ण वाणी उच्चरित की कि जिसका अभिप्राय था 'काम कुछ नहीं, काम कुछ नहीं'। माध्यमिक शिक्षा का पुनर्संगठन जो मध्यप्रदेश ने सुझाया है वास्तव में बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा की बारीकियों से पूर्णतः मेल न खाते हुए भी कुछ ऐसा विरोधी नहीं। दोनों साथ चल सकती हैं। यदि राष्ट्रीय शिक्षा प्रत्येक उत्पन्न राष्ट्रीय नागरिक के लिए न्यूनतम अनिवार्यता है तो माध्यमिक शिक्षा भी अनिवार्यता नम्बर दो है। और सार्वजनिक अथवा यों कहिये कि राजनैतिक निर्वाचन की दृष्टि से ये दोनों ही प्रथम और द्वितीय हैं। फिर इनके बाद यूनिवर्सिटी शिक्षा आती है। इस योजना के निर्माण में डा० वेणीशंकर झा का, जो समिति के

मंत्री थे, प्रधान हाथ है। अतः सामान्यतः इसे 'झा-समिति' रिपोर्ट भी कहा जाता है। समिति का संगठन सन् १९३९ से लेकर अक्टूबर सन् १९४३ के बीच चार दफा बदला और इस तिथि को फिर एक छोटी सी कमेटी बनाई गई जिसमें डा० वेणीशंकर झा, डा० हरिश्चन्द्र सेट और रावसाहब विष्णु रामचन्द्र राजवाड़े सदस्य रहे। डा० वेणीशंकर झा संयोजक थे।

पहली कमेटी (सन् १९३९):—

(१) माननीय एस. व्ही. गोखले, शिक्षा मंत्री मध्यप्रदेश, अध्यक्ष

सदस्य :—

(२) रा. ब. पंडित लज्जाशंकर झा, जबलपुर

(३) रा. ब. ए. एस. आठले एडवोकेट, अकोला

(४) श्री एन. एल. इनामदार, एम. ए. टी. डी. अमरावती

(५) श्री टी. एन. वजलवार सु. नील सिटी हाई स्कूल, नागपुर

(६) श्री ई. डबल्यू. आर्यनायकम्, वर्धा

(७) डा० एच. सी. सेट, अमरावती

(८) कुमारी रंगाराव, प्रिंसिपल, नागपुर

(९) पं० डी. एल. कानडे शास्त्री, बुलढाना

(१०) डायरेक्टर शिक्षा विभाग, मध्यप्रदेश

(११) श्री रामचन्द्र संघी वकील, जबलपुर

(१२) श्री बी. आर. मंडलोई, खंडवा

(१३) श्री शंकरलाल चौधरी, एम. एल. ए., नरसिंहपुर

(१४) रा. ब. महेशदत्त पाठक, बिलासपुर

(१५) श्री रामशंकर मिश्र वकील बैतूल

(१६) श्री जी. ए. गवई, एम. एल.ए., अमरावती

(१७) श्री समीउल्ला खां वकील, नागपुर

(१८) श्री सैयद अब्दुल रऊफ शाह एम. एल. ए. पांढरखावड़ा

(१९) डा० वेणीशंकर झा, डि. डायरेक्टर शिक्षा विभाग मध्यप्रदेश, मंत्री

सन् १९४१ की समिति (बोर्ड द्वारा नियुक्त):—

(१) डा. पी. एस. देशमुख

(२) डा. व्ही. एस. झा

(३) श्री पी. ए. बम्बावाले

(४) श्री आर. एम. देशमुख

(५) श्रीमती एम. द्रविड

(६) डॉ. एम. एस. मोडक

(७) श्री एम. ए. रहीम

अक्टूबर सन् १९४२ की समिति (सरकार द्वारा नियुक्त) :—

(१) रायबहादुर सीताचरण दुबे (अध्यक्ष)

(२) रा. सा. यू. एस. पाटिल

(३) डा. एम. एस. मोडक

(४) डा. व्ही. एस. झा

(५) महामहोपाध्याय व्ही. व्ही. मिराशी

(६) डा. हरिश्चन्द्र सेठ

(७) श्री बाई. वी. रानडे

(८) श्री व्ही. आर. राजवाड़े

(९) मिस ई. एल. बिलटन

(१०) श्रीमती सुशीलाबाई कोठीवान

(११) रा. सा. सी. सी. चटर्जी

(१२) श्री मुहम्मद सरफ़राज़ खां

(१३) श्री एच. के. मोहनी

(१४) श्री पी. ए. बंबावाले

(१५) मंत्री, हाई स्कूल एजूकेशन बोर्ड (मंत्री)

साहित्यिक रचना भी है :

इस-समिति के जिम्मे तीन बातों की खोज और आवश्यक सुझाव तथा तरीके पेश करना हुआ । सबसे पहले माध्यमिक शिक्षा के आदर्श और उद्देश्य, दूसरे पाठ्यक्रम-निर्माण के सिद्धांत और तीसरे परीक्षाओं की समस्या पर उन्हें विचार करना था । सब मिलाकर इस रिपोर्ट एक साहित्यिक रचना भी है जिसमें चोटी के शिक्षात्मक मनीषियों की वाणी के उद्धरण प्रासंगिक स्थलों पर दिये गये हैं । रिपोर्ट ने मध्य-प्रदेश की वर्तमान माध्यमिक शिक्षा के इतिहास की भूमिका में उसके दोषोंका निदान किया है और भावी के लिये तरीके सुझाये हैं । इन सबका सैद्धांतिक निरूपण कर चुकने के उपरांत हाई स्कूलों में पढ़ाये जाने वाले समस्त विषयों का विस्तृत कोर्स भी दे दिया गया है । हां, पाठ्यग्रंथों की रचना न हो सकने के कारण उनके विषय में केवल सुझाव-मात्र पेश किये गये है कि जिनके आधार पर लेखकों को मार्ग प्रदर्शन प्राप्त होगा ।

विषयों की वैकल्पिकता का खेल :

मध्यप्रदेश के शिक्षा बोर्ड का सूत्रपात सन् १९२३ में १९१९ का सुधार कानून लागू होने के बाद हुआ । इसके पहले हमारे प्रांत के स्कूलों का सम्बन्ध इलाहाबाद विश्वविद्यालय से ही था । इस बोर्ड ने पाठ्यक्रम निश्चित करने के लिए जो समिति बनाई उसने देश में पहली

बार माध्यमिक शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषाओं को स्वीकार किया परन्तु पाठ्यक्रम को इलाहाबाद जैसा ही सख्त और रूढ़िप्रिय रखा। परिणाम यह हुआ कि बालकों को वैकल्पिक विषयों के चुनाव में अत्यन्त छोटी सीमाएं ही मिल सकीं और प्रायः प्रत्येक विषय अनिवार्य रहा। इसे देखकर सन् १९२८ में नागपुर विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर डा० मेकफायडन की अध्यक्षता में दूसरी समिति बनाई गई। इस समिति ने विषय-समूहों के बीच वैकल्पिक विषयों को ऐसी कुछ विविधता प्रस्तुत कर दी कि चुनाव का क्षेत्र असीम तो जरूर हो गया पर, शिक्षार्थियों ने बड़े अजीबोगरीब विषय-समूह (Combination) चुने। परिणाम-स्वरूप शिक्षार्थियों की शिक्षा को संयुक्त अन्विति मान सकना असंभव हो गया। साथ ही उक्त पाठ्य-क्रम में कोई सामाजिक तत्व विद्यमान न रहे। सन् १९२२ के मध्यप्रदेश के हाई स्कूल शिक्षा एक्ट ने माध्यमिक शिक्षा की परिभाषा देते हुए कहा:—

शिक्षा की यह स्टेज है जो प्रांतीय सरकार द्वारा स्वीकृत मिडिल स्टेज के एकदम बाद और नागपुर यूनिवर्सिटी द्वारा नियंत्रित शिक्षा की स्टेज के एकदम पहले आती है।

स्पष्ट है कि इस परिभाषा में जीवन की तथा समाज की आर्थिक भूमिका इत्यादि का कोई उल्लेख नहीं, कोई लगाव नहीं, जबकि अधिकांश शिक्षार्थियों को इसे समाप्त कर चुकने के बाद सीधा समाज में प्रविष्ट होना पड़ता है। साथ साथ मिडिल स्टेज की शिक्षा की ओर भी एक्ट की

"High School Education means that stage of education classified by the Provincial Govt. as middle stage and precedes immediately that stage of Education controlled by the University of Nagpur"

High School Education Act. 1922

ध्यान नहीं क्योंकि देश में हिन्दी मिडिल स्कूल, और अंग्रेजी मिडिल स्कूल-दोनों ही मौजूद हैं। उनका पाठ्यक्रम भी बोर्ड निर्धारित करता है। मिडिल स्कूल की कक्षाएं इधर प्रत्येक हाई स्कूल में भी रहा करती हैं।

किशोरावस्था की शिक्षा :

झा-रिपोर्ट ने माध्यमिक शिक्षा की परिभाषा शिक्षार्थी की किशोरावस्था की आयु--११ से १७-१८ वर्ष की शिक्षा के रूप में दी है। बात यह है कि किशोरावस्था मनोविज्ञान और शरीर-विज्ञान दोनों की ही दृष्टि से अद्वितीय और अभूतपूर्व परिस्थिति होती है। बालक अब तक अपनी प्रायमरी शिक्षा समाप्त कर चुका होता है। अब उसके हेतु उद्देश्य और दृष्टिकोण दोनों ही के परिवर्तित स्वरूप जरूरी होते हैं। तभी मिडिल और हाई जैसे कृत्रिम हिस्से न कर हम उसकी किशोरावस्था को समवेत रूप से देख सकते हैं। सामान्यत: माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य इस आयु के वास्ते सामाजिक प्रसंगों के बीच व्यक्तित्व के विकास की परिस्थितियां प्रस्तुत करना है, जिससे कि समाज तथा उसकी स्थायी कीमतें कायम रही आवें। शिक्षा का कोई निजी एकांतिक उद्देश्य नहीं होता वह तो समाज का ही सामान्य उद्देश्य सामने रखती है। यह बात अलग है कि समय और प्रसंग की मांगों के अनुरूप कभी किसी मांग पर विशेष जोर दिया जाता है और कभी किसी मांग पर। इस तरह शिक्षाधिकारियों को चाहे वे शिक्षक हों चाहे इंस्पेक्टर चाहे अन्य शासक, इस बात की चौकसी रखना होगी कि प्राचीन कीमतें नष्ट नहीं होतीं, पर साथ ही भावी की शक्तिशीलता भी कम नहीं होती। अर्थात् पाठशाला राष्ट्रीय जीवन के आदर्श स्वरूप को अभिनीत और अनुभूत कराने का केन्द्रस्थल है।

राष्ट्रीय जीवन के अभिनय और अनुभव का केन्द्र हाई स्कूल हो :

अंत में देश को अपने नेताओं और विशेषज्ञोंकी प्राथमिक ट्रेनिंग के हेतु हाई स्कूल का ही आसरा तकना पड़ेगा। परन्तु इससे यह मतलब नहीं कि हाई स्कूल शिक्षा किसी नेता-वर्ग की शिक्षा का केन्द्र होगा।

वैसे अभीभा मारत के प्रत्येक क्षेत्रों में मौलिक कार्यकर्त्ताओं और नेताओं की इस संख्या में जरूरत है कि यदि हमारे स्कूल विशेषज्ञ ही विशेषज्ञ और नेता ही नेता पैदा करें तो भी उनके लिये खूब काम निकल आयेगा। जिस समाज की बागडोर कुछ चुनिन्दा चतुरों के हाथ में ही है, जहां सामान्य पुरुष और स्त्री का विवेकपूर्ण सहयोग प्राप्त नहीं है उस समाज का खैरियत नहीं। इसलिए माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य ऐसी परिस्थितियां जुटाना होगा जो बालक की योग्यता और उसके झुकावों के अनुरूप ट्रेनिंग देकर या तो जीवन के लिए सुसज्जित कर दे या यूनिवर्सिटी के लिए।

स्टेजवार विषय निर्वाचन :

केन्द्रीय शिक्षा बोर्ड ने तदनुकूल हाई स्कूल के दो हिस्से किये—सैद्धांतिक और टेक्निकल और इसलिए सारहाई स्कूल एक इकाई के रूप में ही मानकर स्वीकृत किया जावे। इस प्रकार अभी जो हिन्दी मिडिल स्कूल है वे प्रायमरी स्कूल के विस्तृत रूप हो जायेंगे तथा सबके लिये अनिवार्य न्यूनतम शिक्षा की अंतिम सीढ़ी भी। इधर अंग्रेजी मिडिल स्कूल सब हाई स्कूलमें आकर मिल जावेंगे। तो लगभग ११वर्ष की उम्र में बालक हाई स्कूल में प्रवेश पावेंगे। परन्तु उनका झुकाव १३।। वर्ष १४ बरस की उमर तक ठीक तरह से विकसित नहीं होता सो इस उमर तक उनकी शिक्षा सामान्य ही रहे विशेषज्ञता के लिए अनेक क्षेत्र खुले रहें जहां बालक स्वयं भी अपनी रुचि के अनुसार विषय खोजें। इसलिए हाई स्कूल में उसका चौथा वर्ष यह निश्चित करे कि बालक सैद्धांतिक विषयों को चाहता है अथवा व्यावसायिक। तब अनुकूल विषय की ओर उसे प्रेरित कर दिया जावे। फिर इस प्रेरणा को अधिक पुष्ट करने के वास्ते तथा उसके उस विषय की विशेषज्ञता के क्षेत्र में स्थानांतरित करने की आकस्मिकता न्यूनतम बनाने के लिए एक साल और देखा जाये। छठें और सातवें बरस में सीमित विषयों में सापेक्षतः अधिक विशेषज्ञता प्राप्त कराई जावे।

साहित्यिक, वैज्ञानिक और टेक्निकल धाराएं : पर आपस में मिलती हुई बहें :

इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली में तीन धाराएं स्पष्ट हो जावेंगी––साहित्यिक, वैज्ञानिक और टेक्निकल। परन्तु प्रत्येक धारा में अन्य दो धाराओं का भी समावेश होता है। अर्थात् प्रत्येक धारा शिक्षार्थी को एक टैक्नीक, एक विज्ञान, एक सामान्य विचार और सौन्दर्य-भावना की शिक्षा देगी और देना भी चाहिये। प्रत्येक शिक्षा दूसरी धारा की शिक्षा से प्रकाश पा पूरी शिक्षा को एक इकाई रूप में, विशिष्ट क्रियाओं पर सापेक्षत: अधिक बल देती हुई ग्रहण की जावे। साहित्य-पाठ्यक्रम को दो हिस्सों में बांट लिया जावे––विशुद्ध वांग्मय और सामाजिक विषय। सब मिलकर ऐसी पांच केन्द्रीय क्रियायें उपलब्ध होंगी कि जिनका तत्कालीन जीवन में महत्व है––यथा औद्योगिक, कृषि सम्बन्धी, व्यावसायिक, कलात्मक और गृह-कौशल। इसलिए पांच प्रमुख कोर्सों को केन्द्रीय क्रियाओं के आधार पर गढ़ लिया गया है :––

(१) सैद्धांतिक कोर्स (वांग्मय पाठ्यक्रम) :––

(अ) वांग्मय कोर्स––(१) भारतीय भाषा साहित्य
(२) अंग्रेज़ी
(३) अभिजात भाषा अथवा अन्य भारतीय या विदेशी वर्तमान भाषा

(ब) सामाजिक विषय–(१) इतिहास
(२) भूगोल
(३) नागरिकता

(२) वैज्ञानिक कोर्स–– (१) फ़िज़िक्स
(२) रसायन–शास्त्र
(३) गणित अथवा शरीर शास्त्र या भूशास्त्र

(३) टैक्निकल कोर्स— (१) कला

(२) संगीत

(३) कृषि

(४) प्राथमिक इंजीनियरिंग

(५) वन-विज्ञान

(६) गृह कौशल

(७) वाणिज्य

(८) शरीर-शिक्षा, शिल्प और मूर्ति कला ।

कहना न होगा प्रत्येक कोर्स में दूसरे कोर्सों के तत्वों का भी समावेश आवश्यक है । उदाहरणार्थ इतिहास और भूगोल पढ़ाने में वांग्मय, सामाजिक अध्ययन, वाणिज्य, विज्ञान कला, उद्योग इत्यादि का अनुकूल महत्व न्यूनाधिक होता रहेगा । अध्यापन का माध्यम मातृ भाषा होगा । अंग्रेजी अनिवार्य भाषा हो । शरीर–व्यायाम–शिक्षा तथा किसी रूप में संगीत और कला का अध्ययन होना चाहिये । साथ ही एक कोर्स से दूसरे कोर्स में स्थानांतरित करने की सुविधाएं उपयुक्त अवधियों के बीच बालकों को प्राचुर्य से दी जाना चाहिये ।

शिक्षकों की व्यावसायिक कुशलता और सदाचार : अवकाश की अपेक्षा :

सारी रिपोर्ट के कहने का तात्पर्य यह है कि नये दृष्टिकोण में ध्यान विषयों से हटकर शिक्षार्थियों की ओर चला जाता है ताकि देश के परम आदर्शों के अनुकूल समाज की सृष्टि हो सके । इनमें कुंजी-पद स्वाभाविक है कि अध्यापक-वर्ग को प्राप्त हो । तो उनके हेतु व्यावसायिक कुशलता एवं व्यावसायिक सदाचार के उच्च स्तर की आवश्यकता होगी । शिक्षक को अपने विशिष्ट विषय की नवीनतम जानकारी होना चाहिये तथा छुट्टी के कोर्सों के बीच सुयोग्य प्रोफेसरों के हाथ तले

उसे इस प्रकार सुसज्जित करने की अल्पकालीन ट्रेनिंग भी दी जाना चाहिये। इसी तरह अध्यापन-पद्धतियों की ट्रेनिंग भी ट्रेनिंग-कालेजों में दी जावे। उसे आर्थिक दैन्य और बोझ से निश्शंक रखने पर ही वह अपना उत्तरदायित्व निभा सकेगा तो उसका वेतन भी सर्वथा काफी होवे। अवकाश की अपेक्षा इसलिए है कि शिक्षक अपने विषय और शिक्षार्थियों पर ठंडे दिल और दिमाग से विचार और मनन कर सके। कोर्सों की कतिपय सीमाओं के बीच उसे अपने विषय के अध्यापन की विधियों और पद्धतियों पर प्रयोग करने की स्वतंत्रता प्राप्त होवे। स्कूल हित संबंधी बातों में उसकी सुनाई होने का भी अधिकार उसे दिया जावे।

स्वायत्त–शासन वाले बहुविषयक स्कूल-बोर्ड का कार्य अलग प्रकार का होगा :

इधर बालकों की विविध रुचि का ध्यान रखना है तो एक विषयी स्कूलों की संख्या न्यूनतम होवे तथा बहु विषयी स्कूल अधिक हों जहां पर कोर्सों का निश्चय, वातावरण तथा स्थानीय परिस्थितियों के आधार पर होवे। जहां एक से अधिक स्कूल हों वहां पारस्परिक सहयोग से हर स्कूल एक एक विभिन्न कोर्स अपना लेवे। बोर्ड का काम केवल पाठ्यक्रम के सामान्य व्यापक सिद्धांतों का निर्वाचन उद्देश्य और आदर्शों का अध्यापन में स्थान-निश्चय भर रहेगा। प्रत्येक स्कूल अपना विस्तृत सिलेबस स्वयं निर्धारित करेगा। सिलेबस सदा ही साधन है, साध्य नहीं। परन्तु तो भी एकाएक उसका महत्वपूर्ण पद तोड़ सकना मुश्किल है। इसलिए प्रत्येक विषय के ऊपर ऐसी प्रामाणिक पुस्तिकाएं तैयार की जावें जो बोर्ड द्वारा निर्दिष्ट उद्देश्यों और आदर्शों को सफल बनाने में मार्ग-प्रदर्शन करें। यह काम विशेषज्ञों से ही बन पड़ेगा। इस नवीन योजना में पाठ्य ग्रंथों और अवलोकनीय ग्रंथों की नूतन राशि अपेक्षित होगी कि जिसके वास्ते उपयुक्त संस्था का निर्माण सरकार की ओरसे होना चाहिये। बोर्ड की पाठ्य ग्रंथ समितियों का निर्माण भी परिवर्तित दृष्टि से आवश्यक

होगा। बोर्ड स्वयं समस्त समस्याओं का अध्ययन मनन और अनुसंधान करके मार्ग प्रदर्शन करे। प्रायः प्रत्येक स्कूल में कला-भवन, वाचनालय, अद्भुतालय, प्रयोगशाला, कारखाना और बाग कायम किये जावें।

संख्या के स्थान पर वर्णों के ज़रिये परीक्षाओं में अंकन :

अब रही केवल परीक्षाओं की बात। सबसे पहले तो हमें (Standardised Objective Tests) स्टैंडर्डाइज्ड आब्जेक्टिव टेस्ट्स की तालिकाएं प्रस्तुत करना होंगी जो स्थानीय परिस्थितियों के आधार पर बनाये गये हों। परीक्षा की विश्वस्त विधियों की खोज कराई जावे ताकि व्यक्तियों की बुद्धि, झुकाव, रुचि, व्यवहार इत्यादि का समुचित ज्ञान प्राप्त किया जा सके। केन्द्रीय मनोविज्ञान संस्था इसमें योग देवे। प्रत्येक परीक्षा का उद्देश्य इतना स्पष्ट हो कि परीक्षक, शिक्षक और परीक्षा सब उसे ठीक-ठीक समझ लें। हर विद्यार्थी का शाला में चार्ट रहे जिसमें उसकी सर्वांगीण गतिविधियों और प्रगति का यथातथ्य तथा न्यायपूर्ण विवरण हो। कृषि, बुनाई, सिलाई जैसे व्यावहारिक विषयों का मूल्यांकन दो परीक्षकों के हाथों कराना अधिक उचित है भले उसमें कुछ अधिक पैसा लग जावे। संख्याओं के स्थान में वर्णों के ज़रिये यदि नंबर दिये जावें तो श्रेयष्कर है। जो कुछ चोटी के परीक्षार्थी हैं उनके लिए भले स्थान का निश्चय करने के हेतु संख्यात्मक नम्बर दे दिये जावें।

किसी भी शिक्षा–प्रणाली का आदर्श वही है, जहाँ पाठशाला पूर्णतः आत्म-निर्भर हो जहाँ का हेड मास्टर विशाल बुद्धि और हृदय वाला सज्जन हो, जो अपनी शाला का संगठन अपनी जरूरतों, परिस्थितियों और आर्थिक-दशा के आधार पर स्वयं ठीक करके स्वयं अपने प्रमाण-पत्र देवे। बोर्ड के अपने इंस्पेक्टर जरूर हों जो परीक्षार्थियों के बदले शाला का ही निरीक्षण करें। शालाएँ अपने पाठ्य क्रम भले बनायें

पर इंस्पेक्टर स्कूलों के स्टैंडर्डों का नियमन कर दे। स्टैंडर्ड का नियमन करने के वास्ते सुयोग्य इंस्पेक्टरों की एक समिति हो जो स्थान, परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार प्रत्येक शाला का अपना स्टैंडर्ड प्रांत भर में कायम करें। यदि किसी का स्टैंडर्ड नीचा ही रखा गया है तो उसके कारण भी दिये जावें ताकि सुधार और विकास के लिए मार्ग प्रदर्शन होता जावे। इस प्रकार प्रत्येक पाठ-शाला के प्रति सामाजिक मान्यता की एक परंपरा बनती जावेगी और शाला सुधरती रहेगी। नौकरी में लगाने वालों तथा यूनिवर्सिटियों को भी अपने उम्मीदवारों की शिक्षा, वातावरण, परंपराओं तथा प्रभावों का समुचित ज्ञान हो जावेगा। केवल पास फेलों की संख्या देने से न तो स्कूलों को कोई विशेष फायदा होता है और न समाज को ही। बालकों की प्रगति जाँचने के वास्ते पाठ्यक्रम की नैसर्गिक सीढ़ियों पर टेस्ट दिये जावें।

परीक्षा के तीन भाग:

परीक्षा के तीन भाग होने चाहिये।

(१) स्कूली रिकार्डों का निरीक्षण

(२) बोर्ड द्वारा प्रयोगात्मक और मौखिक परीक्षा

(३) लिखित परीक्षा

लिखित परीक्षा के प्रश्न पत्रों की, पाठ्य क्रम के बीच, उद्देश्यों के बीच प्रासंगिकता स्पष्टता से रखी जावे। पर्चों का सरलीकरण एक ऐसे बोर्ड के हाथों हो जिनमें सैटर, विषय–शिक्षक तथा शैक्षणिक विशेषज्ञ हों। प्रश्न केवल उसके ज्ञान मात्र की ही परीक्षा न करें बल्कि उसके संपूर्ण व्यक्तित्व को जांच सकें। इसी तरह मौखिक परीक्षा के बोर्ड में भाषा और सामाजिक विषयों का एक विशेषज्ञ हो, एक विज्ञान और टेक्निकल का विशेषज्ञ हो और हेडमास्टर भी हो। बोर्ड समस्त कागजों को देख सके और बालकों के पूरे रिकार्ड भी जान सके।

इस तरह परीक्षा का जो भूत बालकों पर सवार रहता है वह दूर हो जायेगा और उनका सर्वांगीण विकास अधिक समुन्नत होगा। योजना के सिद्धांत तो वैसे सर्वमान्य हैं परन्तु विषयों की इतनी अधिकता हो गई है कि शायद ही कोई एक पाठशाला उसे व्यवहार में ला सके अथवा कोई भी एक शिक्षक उसका सदुपयोग कर सके। यों तो मध्यप्रदेश की सरकार ने उसे सैद्धांतिक रूप में मान लिया है तो भी उसकी कारगुजारी अभी देखनी बाकी है।

अध्याय १९

समाज-शिक्षा (मध्यप्रदेश)

विशालता के कारण युगांतरकारिणी योजना है:

यह तो हुई सामान्य शिक्षा की बात। स्वतंत्र भारत में सन् १९५० की २६ जनवरी को स्वतंत्र सार्वभौमिक विधान भारतीयों द्वारा निर्मित होकर लागू कर दिया गया। इसने वयस्क मताधिकार के आधार पर लगभग तीस करोड़ जनता की शिक्षा का प्रश्न बिलकुल आगे लाकर रख दिया। यों तो भारत की केन्द्रीय और प्रांतीय सरकारें इस परिस्थिति से परिचित थीं हीं, परन्तु मध्यप्रदेश की सरकार ने उस क्षेत्र में पथ-प्रदर्शक का मौलिक कार्य किया। मध्यप्रदेश की सरकार के शिक्षा-मंत्री पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र ने प्रौढ़ों की शिक्षा की ऐसी युगान्तरकारी योजना प्रस्तुत की जिसके आधार पर केन्द्रीय सरकार तक ने अपनी समान योजना बनाई। भारत, बिशेषत: मध्यप्रांत जैसे उपेक्षित, पिछड़े हुए, जंगली, अर्ध सभ्य, अति गरीब भू खंड में सारे वयस्कों को शिक्षित बना देने की कल्पना मात्र ही भयानक हो सकती है। फिर उसे कार्य रूप में परिगत करने के लिए विशाल और सर्वांगीण योजना ही बना डालना और उसे इतनी तीव्रता और शीघ्रता के साथ कार्यान्वित करने के वास्ते कटिबद्ध हो जाना, तथा किसी सीमा तक सफल हो जाना, वास्तव में भगीरथ-तपस्या है। इसे 'समाज शिक्षा योजना' कहा जाता है। यों तो सरकार द्वारा चलाई जाने वाली दो योजनाओं में अंग्रेज सरकार की विरासत अर्थात् उसके नौकरशाहों की तूती तो बोलती ही है तो भी जो कुछ भी काम हो सके वह पथ-प्रदर्शक का कार्य तो अवश्य ही करेगा। और यदि प्रजातंत्र की अभिलाषा भारत में जागरूक रही और हमने सारा सोचने, समझने, और करने का ठेका दूसरों

को न ही देने की ठान ली तब तो शायद नौकरशाही शिकंजों के बावजूद भी हम लोग शिक्षित हो सकेंगे और तब समाज शिक्षा-योजना का सुवर्ण-प्रभात हमें दिख ही जावेगा।

साक्षरता से आगे समाज में उपयोगिता पूर्वक और प्रभावपूर्वक रहना समाज-शिक्षा का आदर्श होगा :

योजना का प्रारंभ १९४६ से होता है। मध्यप्रदेश की धारा-सभा में इस विषय पर कुछ बहस हुई और कतिपय शिक्षा-विशारदों ने धारा सभा के बाहर भी इस पर विचार करना शुरू कर दिया। सरकारी ट्रेनिंग कालेज ने उसकी रूपरेखा प्रस्तुत की तथा इसके बाद उसका पूरा स्वरूप सामने आया। आम तौर से जब प्रौढ़ों की शिक्षा की बात आती है तो अभिप्राय सिर्फ साक्षरता, लिखना–पढ़ना और कुछ साधारण ज्ञान से होता है, परन्तु यह अभिप्राय बहुत सीमित है और प्रायः निरर्थक भी। क्योंकि जब तक व्यक्ति अपने वातावरण और प्रगतिशील समाज के प्रसंग में अपना स्थान और कर्त्तव्य वास्तविक रूप से ढूंढ़ न ले, निश्चित न कर ले, तब तक उसकी शिक्षा बिलकुल अधूरी ही कही जावेगी। इसलिए वास्तविक प्रौढ़ शिक्षा का विशिष्ट उद्देश्य प्रजातंत्रीय समाज में जीवन-यापन करने की ट्रेनिंग देना होगा। व्यक्ति उपयोगिता पूर्वक और प्रभाव पूर्वक सुशासन में रहे–इससे अच्छी शिक्षा और हो ही क्या सकेगी? आवश्यकता इस बात की है–कि जन समुदाय ऐसी उत्तरदायी सरकार के प्रति अपने उत्तरदायित्व समझे को ऐसे प्रसंग में साक्षरता मात्र एक गौण उद्देश्य बन जावेगी। वैसे लिखना पढ़ना साधारण प्रजातंत्रीय जीवन–यापन की उपयोगी ट्रेनिंग देता है पर उसके बिना भी यह संभव हो सकता है। इसलिए जब तक पूर्ण साक्षरता न आ जाये तब तक शिक्षा भी रुकी रहे यह असंभव है। तदनुरूप प्रौढ़ शिक्षा के दो महत्वपूर्ण अंग हो जावेंगे और उनके अनुसार पाठ्यक्रम भी निश्चित होगा। पहला अंग है नागरिकता के हेतु शिक्षा अर्थात् समाज–शिक्षा और दूसरा ज्ञान प्रकाश तथा जीवन-

के हेतु शिक्षा। योजना ने शिक्षा के सात उद्देश्य गिनाये हैं जो संक्षेप में इस प्रकार हैं:—

व्यापक सहकारिता

(१) जनता को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक जीवन की नित्य परिवर्तनशील धाराओं से अवगत करा देश के भविष्य में श्रद्धा तथा आत्म–विश्वास उत्पन्न करना।

(२) सरकारी कामों में सजीव दिलचस्पी रख समाज-निर्माण की समस्याओं के हल में हाथ बँटाना।

(३) संधि–काल की आशंकाओं का मूल्यांकन कर समाज–विरोधी कार्यवाहियों के विरुद्ध मोर्चा बाँधना।

(४) परस्पर शांतिप्रिय पड़ोसियों की नाई रहकर समाज-जीवन को छिन्न-भिन्न कर देने वाले तत्वों का समवेत होकर सामना करना।

(५) स्वस्थ जीवन की शिक्षा: घर और वातावरण स्वच्छ रखना तथा सामाजिक जीवन को उपयोगी और उपभोग्य वनाना।

(६) सहकारिता के आधार पर आर्थिक और सामाजिक जीवन के ऐसे संगठन की ट्रेनिंग देना जिससे सामाजिक और राष्ट्रीय सुरक्षा के उत्तरदायित्वों को व्यावहारिक रूप से निभाया जा सके।

(७) जन साधारण से निरक्षरता दूर करने के लिये सक्रिय-प्रणालियों में योगदान करना।

संचालन के छै केन्द्र

इसके उपरांत योजना शासकीय साधनों के पुनर्संगठन की बारीकियाँ प्रस्तुत करके पाठ्यक्रम भी प्रस्तुत करती है। सब मिलाकर

छै केन्द्रों की व्यवस्था की गई है:--(१) संचालन केन्द्र, (२) स्नायु केन्द्र, (३) रचना केन्द्र, (४) शासकीय केन्द्र, (५) कार्यकर्ता केन्द्र, (६) रिसर्च केन्द्र, । प्रत्येक केन्द्र की एक रूप रेखा जान लेने पर योजना का संपूर्ण कार्य क्षेत्र, उसके साधन और कर्त्तव्य समझ में आ जावेंगे । सबसे बड़े अधिकारों वाला केन्द्र संचालन केन्द्र है, जिसके जिम्मे समाज-शिक्षा से सम्बन्ध रखने वाली सारी बातों का अंतिम अधिकार है । इसे समाज शिक्षा का प्रांतीय सलाहकार बोर्ड कहा जाता है तथा इसका कार्य काल पाँच वर्ष का होता है । इसमें एम. एल. ए., शिक्षाविद् एवं अन्य व्यवस्थापकों को सदस्यता प्राप्त होती है । इस बोर्ड की बैठक साल में कम से कम एक बार अवश्य होना चाहिये । इस हेतु मई का महीना सर्वोत्तम है क्योंकि उस महीने में सारे प्रांत भर में ग्रीष्म-शिविर चल रहे होंगे । दूसरा है स्नायु केन्द्र जिसे हम विशेषज्ञ समिति भी कह सकते हैं । यह समिति स्थायी समिति रहेगी और उसके दो विभाग भी रहेंगे, एक नागरिकता की शिक्षा के हेतु और दूसरा ज्ञान-प्रकाश के हेतु । इसकी बैठकें साल में अनेक बार हुआ करेंगी तथा वहाँ पर सामान्य पालिसियों तथा उन्हें कार्यान्वित करने की विधियों-साधनों और मार्गों का विवेचन हुआ करेगा । इसी के बल पर वह एक ओर तो शिक्षा-विभाग को नीतियों का किस प्रकार संचालन करना इस विषय में परामर्श दिया करेगी, दूसरी ओर प्रांतीय सलाहकार बोर्ड को उच्च नीति में परिवर्तन, संशोधन इत्यादि के विषय में सलाह देगी कि जिसके आधार पर मौलिक परिवर्तन या संशोधन करने में बोर्ड समर्थ होगा । रचना केन्द्र सबसे विशाल है । इसका विवरण अलग से होगा । शासकीय केन्द्र में शासन व्यवस्था के सब अधिकारियों और कर्मचारियों की गतिविधियों, साधन इत्यादि की व्यवस्था और प्रबन्ध होगा । इस केन्द्र की अध्यक्षता समाज-शिक्षा-मंत्री के हाथ होगी । एक ओर उसमें शिक्षा संबंधी समस्याओं, सामग्रियों का हल होगा दूसरी ओर शिक्षात्मक प्रसार तथा अन्य शासकीय विभागों के सम्बन्ध स्थापित करने का काम होगा । शिक्षा-विभाग के कर्मचारी सभी इसमें

आवेंगे । जैसी रचना-केन्द्र की व्यवस्था है उसी तरह कार्य-कर्त्ता केन्द्र की भी, इसलिए इनका एक साथ ही विवेचन करना समीचीन होगा ।

रचना केन्द्र के साहित्य, चल-चित्र और कला-विभाग :

प्रधान संपादक :

रचना–केन्द्र का कर्त्तव्य शिक्षा के विभिन्न साधनों, विधियों और पद्धतियों से संबध रखने वाली सभी बारीकियों का नियमन, नियंत्रण और संशोधन हुआ करेगा ताकि शिक्षा-कार्य जनता के हित को संपन्न कर सके । रचना-केन्द्र के तीन उप-विभाग हैं:—साहित्य विभाग, चल-चित्र विभाग और कला तथा आंकड़ा विभाग । साहित्य विभाग के चार प्रधान कार्य रहेंगे,जिसमें पहला कार्य होगा एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन, जिसमें प्रांतीय देशीय और विश्व के विकास की योजनाओं कार्यक्रमों का वर्णन तथा रूपरेखा होगी । साथ ही समकालीन एवं सांस्कृतिक सामग्री भी दी जावेगी । इस विभाग का उच्चाधिकारी प्रधान सम्पादक की संज्ञा पावेगा तथा उसमें उच्च कोटि की योग्यताएँ संपन्नताएँ और विशेषताएँ अपेक्षित होंगी । जीवन से सम्बन्ध रखने वाली सरकारी नीतियों, प्रोग्रामों को इस प्रकार इस पत्रिका के जरिये प्रस्तुत किया जावेगा कि जनता उनका सही अर्थ लगाकर उनके महत्व और दोषों को समझे । दूसरे उन समस्त सामाजिक, आर्थिक, राष्ट्रीय, और अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं पर पत्रिका प्रकाश डालेगी जिससे कि हमारी आंतरिक और बाह्य सुरक्षा मजबूत हो सके और हम अपने कूप-मंडूक स्वार्थ केन्द्रित तथा क्षण-भंगुर अभिप्रायों से परे उठकर बाहर भी ध्यान दे सकें। तीसरी चीजहोगी सांस्कृतिक, जिसमें जन-नाट्य, गीत-भजन, कीर्तन इत्यादि की सामग्री रहेगी । चौथे समाज शिक्षा प्राप्त कर लेने के उपरांत शिक्षित व्यक्तियों के अध्ययनार्थ लिखने पढ़ने के हेतु पुस्तकें, ग्रंथ, पुस्तिकाएँ और पत्र पत्रिकाओं को जुटाया जावेगा । पांचवें प्रधान संपादक को व्यवस्था, प्रचार, विज्ञापन इत्यादि का भी प्रबन्ध करना होगा । रचना-केन्द्र इसके सिवा साप्ताहिक

बुलेटिनों का प्रकाशन करेगा जो समाज-शिक्षा के कार्यकर्त्ताओं के हेतु सामग्री, भाषण-विषय, क्रियाओं-विषयक-सूचनाएँ, दूसरे प्रांतों और देशों म होने वाले साधनों इत्यादि का निर्देशन करेगा। शिक्षित प्रौढ़ों के लिए पाठ्य-सामग्री किस प्रकार की हो इसके निस्बत स्नायु-केन्द्र से जो जो सिफ़ारिशें और परामर्श उपलब्ध होंगे उनके अनुकूल काम करना भी रचना केन्द्र के जिम्मे है। में असल काम तो शिक्षित प्रौढ़ों के लिए सामान्य साहित्य का सृजन है ताकि सरकारी मदद के बल पर ऐसे विषयों की रचनाएं भी प्रस्तुत की जावें जिन पर अभी कुछ लिखा नहीं गया और जो लाभकारी हो सकती हैं। इसमें संदेह नहीं कि केन्द्रीय संगठन की अपनी सीमाएं हैं तो भी सरकारी विभाग इस दिशा में प्रारंभिक सुझाव और प्रोत्साहन देकर एक विशाल संस्था के निर्माण की भूमिका प्रस्तुत करेगा। फिल्म निर्माण की आवश्यकता इसलिए है कि वर्तमान युग में शिक्षा की वे माने हुए साधन हैं। इसलिए 'केमरामेन', सिनेरियो लेखक, इत्यादि सरकारी नौकरी में ही भर्ती किये जावेंगे। साथ ही अन्य फिल्म कंपनियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करके सस्ते में उपयोगी फिल्मों का निर्माण तथा प्रदर्शन प्रौढ़ों के सर्वांगीण प्रकाश का साधन होगा। इसी तरह कला और आंकड़ा विभाग बड़े-बड़े चित्र, पोस्टर, आंकड़ों के तख्ते आदि बनावेगा जिनके प्रदर्शन से लोक-जागृति और लोक-कल्याण का आभास शिक्षित लोगों को होगा और जिससे अशिक्षितों को भी इम्दाद मिलेगी।

कार्यकर्त्ता केन्द्र और प्रवासी-दस्तों के कर्त्तव्य : क्षेत्रों के सांस्कृतिक गृह

इसी के समानांतर कार्यकर्त्ता केन्द्र ह जो तीन भौगोलिक विभागों में बांटा गया है,—प्रांतीय, क्षेत्रीय, (Divisional) और जिलेवार। असल में जिलेवार विभाग के बल पर सारी सफलता या

असफलता निर्भर है । क्षेत्रीय विभाग का निर्माण आर्थिक परिस्थितियों के कारण नहीं हो सका परन्तु प्रांतीय का आंशिक निर्माण संभव हुआ है । प्रांतीय विभाग का अध्यक्ष डी. पी. आई. है जिसके जिम्मे चार प्रवासी दस्ते (Mobile units) हैं :—दो हिन्दी के, दो मराठी के। डी. पी. आई. ही यह निश्चय करता है कि अमुक दस्ता किस स्थान में और किस अधिकारी की अध्यक्षता में किस समय काम करे। एतदर्थ प्रवासी दस्तों की एक पूरी मशीनरी रहेगी जिसमें एक फील्ड वर्कर, मशीन ड्राइवर, क्लीनर, आपरेटर, रोकड़िया, मोटर बस, सिनेमा प्रोजेक्टर, लाउड स्पीकर इत्यादि मौजूद होंगे। फील्ड वर्कर प्रचार और विज्ञापन की कला का विशेषज्ञ होगा। अपने प्रवास के सिवा अवकाश काल में वह प्रांतीय राजधानी में रहकर प्रांतीय जीवन की विविधता तथा गतिविधियों से सजीव संपर्क कायम रखेगा और उसी के अनुकूल अपनी कार्यवाहियाँ भी जमावेगा। क्षेत्रीय विभागका अध्यक्ष एक प्रधान व्यवस्थापक होगा जो कि पुरानी कमिश्नरियों के सदर मुकामों में रहेगा और सारी कमिश्नरी के भौगोलिक क्षेत्र के वास्ते सांस्कृतिक समाज-गृह (Community Home for Culture) का काम करेगा। इस प्रधान व्यवस्थापक के जिम्मे सच पूछो तो एक सांस्कृतिक-संग्रहालय-निर्माण कर्ता और बड़ी सूझबूझ वाले नेता का उत्तरदायित्व है। इस केन्द्र में प्रवासी पुस्तकालय रहेंगे जो सारी कमिश्नरियों में दौड़ा किया करेंगे। संस्कृति-गृह का भवन एक अच्छी इमारत होगा जिसमें विचित्रालय, कला-गैलरी, पुरातत्व सामग्री और पुस्तकालय होंगे। एक ओर मनोरंजन और दूसरी ओर शिक्षात्मक क्रियाओं का उचित प्रबन्ध यहाँ किया जावेगा। तदर्थ उपयुक्त कर्मचारी तथा पुस्तकाध्यक्ष, क्यूरेटर, कला-संचालक, संगीतज्ञ और बाबू लोगों की व्यवस्था रहेगी।

अतिरिक्त जिला इंस्पेक्टर; उसके कर्त्तव्य :

स्वयं-सेवी संगठनों की रचना :

अब रहा जिलेवार विभाग कि जिसका प्रधान कर्मचारी अति-

रिक्त डिस्ट्रिक्ट इंस्पेक्टर रहेगा । अतिरिक्त इंस्पेक्टर को अपनी सूझ-बूझ से काम करना आवश्यक है पर साथ-साथ रचना केन्द्र से आये हुए बुलेटिनों, साहित्य और सूचनाओं, सहायक इंस्पेक्टरों तथा प्रवासी दस्ते की सहायता से वितरित कर उसे योजना सफल बनाना होगी । इसलिए प्रत्येक जिले में दो और भी सहायक इंस्पेक्टरों की संख्या बढ़ा दी गई। वैसे प्रत्येक सहायक इंस्पेक्टर के ही जिम्मे समाज-शिक्षा का काम था। अतिरिक्त डिस्ट्रिक्ट इंस्पेक्टर का कार्य क्षेत्र बड़ा व्यापक है कि जिसमें जन-संपर्क सबसे अधिक अनिवार्य होता है। उसे स्थान स्थान में ऐसे स्वयं-सेवी संगठनों की स्थापना करना होती है जो साहित्यिक और नागरिकता दोनों ही उद्देश्यों की पूर्ति में मदद कर सकें । ऐसे स्वयं-सेवी संगठनों में नाट्य-क्लब, भजन-मंडल, कीर्तनकार, भाषण, अखाड़ों और खेल कूदों के संगठन मुख्य हैं। फिल्मों का प्रदर्शन तथा अन्य सरकारी औद्योगिक और म्युनिसिपल संस्थाओं से संपर्क बनाये रखना उसके लिए अत्यन्त आवश्यक है । सबसे कठिन ड्यूटी जो अतिरिक्त इंस्पेक्टर के जिम्मे है, वह है प्रौढ़ कक्षाओं का आयोजन, उनमें उपस्थिति कराना तथा प्रमाण–पत्र की परीक्षाएं लेना । इसके वास्ते सलाहकार समितियों का निर्माण स्थान-स्थान पर आवश्यक है, जिसमें शहर के धनी-मानी और समझदार लोगों का सहयोग प्राप्त हो और शिक्षा के प्रति आम जनता की जो उपेक्षा है, जो झिझक है वह दूर होवे । एतदर्थ शिक्षकों की नियुक्ति, विद्यार्थियों और शिक्षकों की अनिवार्य भर्ती (Conscription) करना तथा जो शिक्षक हैं उनको इसे अपनी अनिवार्य ड्यूटी बनाना, उसे जरूरी होता है। उसे अल्पकालीन ग्रीष्म–शिविरों की विस्तृत योजना को कार्यान्वित करना तथा अन्य अफसरी और शासकीय बारीकियों को पूरा करना पड़ता है। इसके लिए बड़े दंद-फंद की जरूरत होती है क्योंकि आज आम जनता का यही रवैया है और स्वार्थपरता तो जैसे कूट-कूट कर जनता में भरी हुई है ।

छठवां केन्द्र है ट्रेनिंग और रिसर्च का । इसके भी तीन विभाग हैं,

पहले विभाग में नार्मल स्कूल तथा ट्रेनिंग संस्थाएं आती हैं जो समाज शिक्षा को अपना अंतरंग मानकर पढ़ाया करेंगी। फिर दूसरी चीज होगी कार्यकर्त्ताओं की विशिष्ट ट्रेनिंग कि जिसका प्रधान उद्देश्य नागरिकता की शिक्षा होगा जो मनोविज्ञान विभाग द्वारा दी जावेगी। ट्रेनिंग का क्या स्वरूप हो इसके हेतु डी. पी. आई., डायरेक्टर सूचना और प्रचार विभाग, मनोवैज्ञानी, प्रिंसिपल ट्रेनिंग कालेज तथा सरकार के दो विशेषज्ञों की एक समिति जो बतावेगी, वही होगा।

कक्षा–संगठन: शिक्षार्थियों में आत्म-निर्भरता की भावना :

अब संक्षेप में हमें समाज शिक्षा की कक्षा के निर्माण को देखना है। वास्तव में समाज-शिक्षा-भवन को स्कूल की बजाय एक सामाजिक सम्मेलन अथवा संस्था बनाया जाना अभीष्ट है, जहाँ आर्थिक, सांस्कृतिक और शिक्षात्मक धाराओं का पारस्परिक सम्मेलन हो। कार्य भजन इत्यादि से शुरू किया जावे। योजना १४ से लेकर ४० वर्ष के अशिक्षित व्यक्ति को शिक्षित बनाने के लिए ही है। आयुमान अभी बढ़ाया नहीं जा सकता। यह समूह बालकों की कक्षा के समूह से विभिन्न है। इसलिए उसके साथ शिक्षक का व्यवहार भी पूर्णत: अलग किस्म का होगा। साधारणत: संख्या ४० की रहेगी। फीस लेने की प्रणाली श्रेयस्कर है, क्योंकि उससे चंदा देने का अभ्यास पड़ता है और तत्काल भी कुछ काम काज खर्च वगैरह निकल आते हैं। इस तरह एकत्रित कोष किसी अन्य चतुर से प्रौढ़ के जिम्मे कर दिया जावे। पाठशाला का समय ७॥ बजे शाम से ९॥ बजे रात तक लगभग छै महीने तक रहे, जिसमें सारा कोर्स समाप्त हो जावे। छुट्टियां स्थानीय पंचायत के निर्णयानुसार दी जावें। समय-चक्र में आधा घंटा पढ़ना, आधा घंटा लिखना, आधा घंटा गद्य-पाठ और आधा घंटा सवाल करना हो। कक्षा का प्रारम्भ प्रार्थना से होकर पहाड़े कहने में समाप्त हो। बत्ती लटकाई न जावे बल्कि स्टूलों पर ही रखी जावे तथा उसके दोनों ओर पांत बांधकर शिक्षार्थी बैठें। शाला-भवन में खेल कूद के स्थान, कुआं,

पुस्तकालय तथा वाचनालय और अखाड़ा रहें। दो कमरे ऐसे हों जहां रजिस्टर, किताबें और दवायें वगैरह हों। बात यह है कि शिक्षार्थियों को स्वयं ही प्रबन्ध करना सिखाया जावे।

अध्यापकों की नियुक्ति अतिरिक्त इंस्पेक्टर के हाथों से होती है तथा प्रत्येक स्वयंसेवक के जिम्मे बीस प्रौढ़ रहते हैं। शिक्षा समाप्त हो जाने के बाद शिक्षार्थियों को पास फेल और उम्मेदवार इन तीन श्रेणियों में बांटकर उनके लिए पाठ्य सामग्री भी प्रस्तुत करना इसी का काम है। पत्र-लेखन, समाज-व्यवस्था, दीवार-समाचार, उत्सव-त्यौहार, कीर्तनकारों, कर्मकांडी पंडितों, प्रवचनकारों, साधुओं, परिक्रमावासियों भाटों और कथावाचकों तथा प्रवासी-जनों की मदद से प्रौढ़ों के मानसिक विकास को पुष्टकर उनकी सामाजिक योग्यता को संवर्धित कराना आवश्यक है।

सेशन की अवधियाँ :

मध्यप्रदेश की सरकार की योजना थी कि मध्यप्रदेश में १९५३ (१९४८ से प्रारम्भ कर) तक निरक्षरता समाप्त कर दी जावे। एतदर्थ प्रांत के २५ हजार केन्द्रों को ५ हजार सर्कलों में बांट दिया गया है। इसके लिए तीन नियमित कोर्स-अवधि कर दी गई है :—

वर्षा कोर्स—१ जुलाई से ३० नवम्बर तक

जाड़ा कोर्स—१ दिसम्बर से ३० अप्रेल तक।

ग्रीष्म कोर्स—१ मई से १५ जून तक।

बात यह है कि प्रांत में सब मिलाकर ४० हजार गाँव हैं जिनमें लगभग १५००० तो बहुत ही छोटे हैं जिन्हें बाकी पच्चीस हजार गांवों से सम्मिलित होना होगा। गर्मी का कोर्स ज्यादा तीव्र होगा क्योंकि ग्रामीण लोग अधिक फुर्सत में रहते हैं। सरकार ने एक हजार शिक्षक तो पूरे समय के लिए लगा लिये हैं और साथ ही एक हजार रेडियो सेट भी खरीदे हैं। लगभग एक लाख रुपये स्वयंसेवक

शिक्षकों में बांटे गये और सन ४८ के पहले ग्रीष्म शिविरों में लगभग ८० हजार प्रौढ़ शिक्षित हुए जिनमें २६ हजार के करीव स्त्रियाँ थीं।

क्या शिक्षा का अभाव पाँच वर्षों में दूर हो सकेगा ? :

मध्यप्रदेश ने इतनी युगान्तरकारी योजना प्रस्तुत की तो सवाल उटेगा कि वह सफल किस सीमा तक हुई है ? इसके दो सीधे उत्तर हैं, एक तो हैं सरकारी आंकड़े और दूसरे देशवासियों का चारित्रिक धरातल और उनका सामाजिक सदाचार। सरकारी खजाने से खर्च में कोई कमी नहीं रही। अधिकारियों, कर्मचारियों, वेतन–भोगियों, रेडियो, मोटरों, पुस्तकों, प्रोजेक्टरों आदि की नियुक्ति और खरीद पर्याप्त मात्रा में हुई। तो इन सबसे मध्यप्रदेश का चरित्र-बल बढ़ा या घटा इस पर निर्णय देना कठिन काम है। वेतन-भोगियों और व्यापारियों ने इससे कितना लाभ उठाया यह विचारणीय प्रश्न है ? क्या व्यय और यह अधिकारी-संप्रदाय न्यस्त स्वार्थ बन गया यह भी एक प्रश्न है ? बात यह है कि मध्य-प्रदेश में प्रौढ़ों की संख्या ७० लाख के लगभग है जिसका मतलब हुआ कि प्रति वर्ष १४ लाख प्रौढ़ शिक्षित होने थे। क्या १४ लाख प्रौढ़ों के शिक्षित बनाने की संभावनाएं प्रति वर्ष हैं ? यदि १२००० शिक्षित नौकर प्रति वर्ष दो व्यक्तियों को (जैसा कि सुझाव पेश है) और ६००० मेट्रिक में बैठने वाले उम्मीदवार भी इसी तरह दो व्यक्तियों को पढ़ावें तो सब मिलाकर ३६ हजार प्रौढ़ शिक्षित हो जावेंगे। फिर रहे हजार वे कार्य-कर्त्ता जो ५८) रु० मासिक पर भर्ती होंगे तथा बाकी १५००० सब प्रकार और श्रेणियों के शिक्षक। तो ये लोग सब मिलाकर एक साल में यदि काम करें तो प्रौढ़ों को पढ़ा सकेंगे। तो भी पांच वर्ष में सबके सब ७० लाख प्रौढ़ शिक्षित न हो पावेंगे। समस्या ही इतनी विकराल है और यदि सरकारी कर्मचारियों, विशेषतः पदाधिकारियों का वही नौकरशाही, स्वार्थी और 'पर उपदेश कुशल' वाला रवैया रहा तो उनका भला तो भले ही हो जावे पर सरकार और जनता बरबाद हो जावेगी।

अध्याय २०

व्यावसायिक शिक्षा—शती बीसवीं

कहना न होगा भारतवर्ष के इतिहास में बीसवीं शती का प्रारम्भ लार्ड कर्जन की असीम लगन, ओजस्विता और विद्युत-तुल्य तेजी से होता है जिसने शिक्षा के क्षेत्र में भी बिजली समा दी थी।

सन् १९३३ का मेडिकल-कौंसिल एक्ट : मेडिकल कालेजों की संख्या वृद्धि :

औषधि-विज्ञान की प्रगति प्रायः सभी प्रांतों में बड़ी तेजी से हुई। सरकारों, यूनिवर्सिटियों, म्युनिसिपैल्टियों और प्राइवेट संस्थाओं सभी ने इस ओर विशेष ध्यान दिया। न केवल कालेजों की संख्या बढ़ी, न केवल विद्यार्थियों का ध्यान लगा, बल्कि सामान्य जन-साधारण को जो पाश्चात्य औषधि-प्रणाली से छड़क थी वह अब विशुद्ध आकर्षण में परिवर्तित हो गई। भारतीय मिनिस्टरों की अध्यक्षता में आखिरकार सन् १९३३ में केन्द्रीय धारा-सभा ने मेडीकल कौन्सिल एक्ट पास किया कि जिसे समस्त यूनिवर्सिटियों की मेडिकल डिग्रियों को देश तथा विदेशी मेडीकल संस्थाओं से मान्यता दिलाकर, शुद्ध वैज्ञानिक और कल्याण-कारिणी रिसर्चों को प्रोत्साहन दिलाने का कार्य सौंपा गया। छात्राओं के हृदय की झिझक भी दूर हुई। सह-शिक्षा वाली एवं विशुद्ध महिला-संस्थाओं में महिलाएँ, अधिक संख्या में भर्ती होने के लिये आईं। महिलाओं के वास्ते दिल्ली में सन् १९१६ में लेडी हार्डिंज मेडिकल कालेज की स्थापना हुई। उधर १९२१-२२ में कलकत्ते में ट्रापिकल औषधियों का एक रिसर्च स्कूल खुला जिसने ग्रेजुयेटोत्तर शिक्षा की व्यवस्था की। साथ ही सन् १९३२ में अखिल भारतीय सार्वजनिक स्वास्थ्य का इंस्टीट्यूट भी कलकत्ते

में राकफेलर-निधि के आधीन कायम हुआ । १९३५ का संविधान विधान लागू होते-होते भारत में ११ मेडिकल कालेज स्थापित हो गये जिनमें से अधिकांश सरकारी थे । स्कूलों की संख्या भी ३० हो गई जिनमें लगभग सात हजार विद्यार्थी शिक्षा पा रहे थे । उसी अनुपात में सरकार का व्यय भी बढ़ा और प्रायः सभी यूनिवर्सिटियों में 'औषधि-विभाग' स्थापित कर लिया गया ।

इसी तरह **इंजिनियरिंग** कालेजों की भी संख्या बढ़कर आठ हो गई जिनमें से अधिकांश सरकारी थे । सरकारी विभागों के अफसरों की भरती इन्हीं स्कूलों और कालेजों के शिक्षार्थियों में से हुआ करती थी ।

लॉ-कालेजों के विद्यार्थियों का बाजार इस युग में बड़ा मद्दा हो गया । वकीलों की इतनी भरमार हो गई कि न तो वकालत ही चल पाती थी और न सरकारी नौकरियों में ही उनके लिए कोई उम्मीद रह गई थी । यों लॉ कालेजों की संख्या में संवर्धन होता ही गया और प्रायः प्रत्येक यूनिवर्सिटी में इसका विभाग खोला गया । प्राइवेट संस्थाओं ने भी लॉ कालेज खोले यद्यपि सिफारिश यह थी कि लॉ कालेज विशुद्ध लॉ कालेज ही रहें। अल्पकालीन लॉ कालेजों का एकदम अंत नहीं हो पाया ।

लार्ड कर्जन का काम; स्थानीयता पर जोर;

कृषि शिक्षा के क्षेत्र में लार्ड कर्जन ने विशेष ध्यान दिया । केन्द्र में एक कृषि विभाग का निरीक्षक जनरल नियुक्त किया जिसके हाथ में कृषि-विशेषज्ञों का काफी अच्छा स्टाफ दिया गया । सरकारी हुक्म ने कृषि-सम्पत्ति का पूर्ण सदुपयोग करने की सिफारिश की तथा केवल सरकारी नोकरियों में भर्ती मात्र के उद्देश्य को अनुचित करार दिया । उन्होंने कृषि-अनुसंधान पर विशेष जोर दे मिस्टर हेनरी फिप्स की दानशीलता के बल बिहार के पूसा स्थानमें केन्द्रीय रिसर्च इंस्टीट्यूट की स्थापना सन् १९०८ में की । साथ ही प्रत्येक प्रांत में एक कृषि कालेज की स्थापना की सिफारिश की, क्योंकि इस प्रकार प्रत्येक प्रांत की अपनी कृषि-संबंधी आवश्यकताओं और परिस्थितियों का अध्ययन हो सकेगा और साथ ही

विद्यार्थियों को व्यावहारिक ट्रेनिंग भी उपलब्ध हो सकेगी। प्रत्येक संस्था में एक बड़ा खेत जोड़कर रखने की आवश्यकता बताई गई तथा एक ऐसा डायरेक्टर नियुक्त किया गया जो पूरे विभाग को पूर्णत: सुव्यवस्थित करके अपना पूरा समय और पूरी शक्ति उसी में खर्च करे। सईदापेट मद्रास का कृषि कालेज १९०५ में बन्द कर दिया गया। विचार की बात तो यह है कि सन् १९३६–३७ तक कोयंबटूर, पूना, कानपुर, नैनी, लयालपुर और नागपुर स्थानों में सब मिलाकर केवल छै कालेज ही खुल सके थे। इनमें केवल नैनी का कालेज भर मिशनरियों द्वारा संचालित होता था बाकी तो सब सरकारी ही थे। सन् १९१३ में कृषि-बोर्ड की बैठक हुई जिसने पाठ्यक्रमों में एकरूपता लाने की चेष्टा न करने का प्रस्ताव पास किया, ताकि स्थानीय परिस्थितियों के अध्ययन–अध्यापन का काम अपने ढंग से हो सके। जो भी हो सब मिलाकर यह कह सकना कठिन है कि सरकार ने कृषि की शिक्षा की ओर कोई खास हिफाजत वर्ती है।

उधर **पशु-पालन** विज्ञान की शिक्षा का भी प्रधान उद्देश्य सरकारी नौकरी ही रहा है। कृषि-विभाग की तरक्की के साथ साथ **पशु-पालन** विशेषज्ञों की भी आवश्यकता पड़ी और दो नये पशु-पालन कालेज मद्रास (१९०५) और पटना (१९३०) में खोले गये। सन् १९१७–२२ के बीच उत्तरप्रदेश के मुक्तेश्वर स्थान में एक पशुपालन रिसर्च-इंस्टीट्यूट की स्थापना अवश्य हुई। जो हाल पशु-पालन विज्ञान का था वही हाल **वन-विज्ञान** का भी रहा अर्थात् सरकारी कर्मचारियों का उत्पादन। देहरादून का वन-रेंजर्स कालेज दो वर्ष की एक ट्रेनिंग देकर रेंजरों को उत्पन्न करता था। परन्तु अब उसमें रिसर्च इंस्टीट्यूट भी कायम कर दिया गया जिसके जिम्मे उच्च कोटि की सूचनाएं, खोजें तथा अध्यापन की सुविधाएं प्रदान करना किया गया। इंस्टीट्यूट के छै विभाग किये गये जिनमें व्यावसायिक वन–रक्षा, वनोपयोग, काष्ठ–संवर्धन, भूगर्भ–ज्ञान, एंटोमोलॉजी और सिलवी–कल्चर विषयों पर अलग अलग रिसर्चों का प्रबन्ध है। दूसरा ऐसा कालेज कोयंबटूर में खोला गया है जिसका कोर्स २३ महीनों का है और स्टैंडर्ड

फारेस्ट रेंजर्स कालेज देहरादून के ही समकक्ष है।

कला की शिक्षा व्यावसायिक संभावनाओं के आधार पर ही हो:

ललित-कलाओं की शिक्षा के क्षेत्र में सरकार के दृष्टिकोण में कोई खास परिवर्तन न हुआ यद्यपि भारत की परंपरा में कलाओं का स्थान बहुत महत्वपूर्ण रहा है। सन् १९०४ के सरकारी प्रस्ताव ने इस निमित्त यही कहा कि कला के स्कूलों का प्रधान उद्देश्य भारतीय कला और उद्योगों को प्रोत्साहन देना है। इसलिए यदि इस शिक्षा से ये उद्देश्य पूरे नहीं होते तो उनका कोई प्रयोजन नहीं। अतः वहां वे ही कलाएं पढ़ाई जावें कि जिनका अनुसरण विद्यार्थी वर्ग स्कूल छोड़कर भी किया करें, अर्थात् उन सबकी व्यावसायिक संभावनाओं को ध्यान में रखकर शिक्षा दी जावे। विद्यार्थियों में कौशल और चतुराई संपन्न होवे और वे उच्च कोटि के डिज़ाइन, तरीके और साधन ईजाद करके काम में ला सकें। स्कूलों को दूकानों में बदलने का उद्देश्य तो नहीं है और न यही कि शिक्षा-विभाग के कर्मचारी व्यापारी लेन-देन और क्रय-विक्रय के मध्यस्थ बन जावें तो भी इन विद्यार्थियों के उतमोतम नमूने बेचने के लिए रखे जावें और सार्वजनिक विचित्रालयों में भी प्रदर्शित किये जावें। अध्यापक लोग अपनी कला के विशेषज्ञ हों विशाल शिक्षार्थी-समाज को ट्रेनिंग देने के बजाय कुछ चुनिंदा विशेषज्ञों की उत्पत्ति अधिक ठीक होगी। छात्रवृत्तियों इत्यादि के स्थान पर शिक्षार्थियों से फीसें लेकर ही शिक्षा दी जावे। यह तभी उचित होगा जब कि उनके योग्य होने पर हम विशिष्ट मजदूरी की व्यवस्था भी करा सकें। सन् १९३५ तक भारत में सब मिलाकर १४ कला-स्कूल कायम थे जिन्हें सचमुच कौशल-स्कूल कहना ज्यादा उचित होगा क्योंकि ललित कलाओं से उनका विशेष सम्बन्ध नहीं था।

शिक्षात्मक प्रयासों और व्यावसायिक उद्योगों के बीच एक रेखा खींचना आवश्यक है:

जो बात सन् १९०४ के सरकारी प्रस्ताव ने कला की शिक्षा के

विषय में कही वही बात टेक्निकल और औद्योगिक शिक्षा के बारे में भी सच्ची है। प्रत्येक ट्रेनिंग का उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है जब समाज में उनके लिए उपयुक्त व्यवसाय और धंधा उपलब्ध हो. अर्थात् हमारी औद्योगिक और टेक्निकल उन्नति पूर्णतः समृद्धिशालनी हो। इसलिए अभी हमें अपने बाजारों पर विजय पानी है। विदेश भेजे जाने वाले कच्चे माल का सदुपयोग देश में ही संभव बनाना अपेक्षित है, अतः एक स्पष्ट रेखा शिक्षात्मक प्रयास और व्यावसायिक उद्योग के बीच खींच लेना चाहिये। भारतीय उद्योगों को तरक्की देने के हेतु सरकार ने टेक्निकल शिक्षा प्राप्त्यर्थ यूरोप और अमेरिका जाने के लिए छात्र वृत्तियों की व्यवस्था की है। जापान का अनुभव इस व्यवस्था को बल देता है। इंडस्ट्रियल स्कूलों का उद्देश्य आर्टिजन पैदा करना है जिससे प्रयोगशीलता का अभ्यास पड़े, वे पके हुए कारीगर ही न बन जावें। इसलिए ऐसे शिक्षार्थियों को ही भरती किया जावेगा जो कि अपनी जाति, कुटुम्ब या नैसर्गिक प्रतिभा के अनुकूल सीखे हुए व्यवसाय को बाद में भी चलाते जावेंगे। ये विद्यार्थी बाबूगिरी के बजाय विभिन्न उद्योग-धंधों के ही काम के होंगे तथा उनकी शिक्षा विशेषज्ञों के हाथों होगी।

भारतीय विद्यार्थियों के विदेश-प्रवास की समस्याएँ :

उधर अन्य टेक्नालॉजिकल विषयों की ओर ध्यान दिया जाने लगा। १९१९ के सुधार-कानून के पूर्व ही ११३ सरकारी छात्रवृत्ति प्राप्त विद्यार्थी विदेशों में विभिन्न विषयों की शिक्षा प्राप्त करने के लिए गये। परन्तु इन छात्रवृत्तियों के विरोध में जनमत बड़ी जल्दी ही खड़ा हो गया क्योंकि उन छात्रों से जो आशाएं बाँधी थीं वे अभी पूरी न हो पाईं। साथ ही इन छात्रवृत्तियों को प्रदान करने का अधिकार भी प्रांतीय सरकारों को दे दिया गया। पर मजे की बात यह हुई कि अपने खर्च से जाने वाले शिक्षार्थियों की संख्या सरकारी खर्चे वालों की अपेक्षा छै गुनी अधिक निकली। बाद में प्रश्न यह उठा कि किन उद्योगों की ट्रेनिंग के वास्ते

शिक्षार्थी चुने जावें ? उधर इंग्लैंड की उद्योग-संस्थाओं ने खास-खास धंधों की शिक्षा देने की इंकारी कर दी, क्योंकि उससे उनके पदार्थों की खपत भारतीय बाजारों में गिर जाती। इस पर सरकार ने उन्हीं कम्पनियों को माल खरीदने के आर्डर दिये कि जो भारतीय शिक्षार्थियों को ट्रेनिंग देने के लिए तैयार थीं। असल बात जो सुझाई गई वह यही कि टेक्नालाजिकल संस्थाओं की स्थापना भारत में ही होना चाहिये। इसी सुझाव के अनुसार टाटा महोदय की दानशीलता ने बंगलोर का साइंस इस्टीट्यूट तैयार कराया। विदेशी संस्थाओं में न भेजने का एक कारण और भी था। अक्सर उन देशों के कल-यंत्र आदि कुछ इतनी उन्नत दशा में थे कि उन्हें समझने में ही भारतीय विद्यार्थी को बहुत समय लग जाता। मान लो कि वह सीख भी गया तो भारतीय उद्योगों में अपना अनुभव ठीक तरह से लगा सकने में उसे बड़ी कठिनाई होती थी, क्योंकि हमारे कल-कारखानों की मशीनें उनकी तुलना में बहुत पिछड़ी हुई रहतीं थीं। सन् १९२१-२२ में भारतीय विद्यार्थियों की दशा का अध्ययन करने के लिए लार्ड लिटन की अध्यक्षता में जो समिति कायम की गई थी उसने यही मत दिया।

भारतवर्ष में जो टैक्नालॉजिकल संस्थाएँ कायम हो सकीं वे इस प्रकार हैं:—

बम्बई—	विक्टोरिया जुबली टेक्निकल इंस्टीट्यूट	मिकेनिकल, विद्युत, सूत, टेक्निकल रसायन-शास्त्र और सफाई-विज्ञान
अहमदाबाद—	आर० सी० टेक्निकल इंस्टीट्यूट	कताई, बुनाई मशीन की तीन साल का कोर्स इंजीनियरी।
टाटा नगर—	जमशेदपुर टेक्निकल इंस्टीट्यूट	टाटा इस्पात और फौलाद विभिन्न उद्योग।
मद्रास—	सरकारी टेक्स्टाइल इंस्टीट्यूट	पुतलीघरों के उद्योग।

कंचरापारा खड़गपुर पहाड़ताली	टेक्निकल स्कूल—	रेलवे वर्कशापों के लिए।

बम के इस युग में भारतीय औद्योगिक शिक्षा की प्रगति कोई महत्वपूर्ण नहीं है तो भी वह राह पर है और यही संतोष का कारण है। अभी लम्बी सफर बाकी है जिसे स्वतंत्र भारत के कंधों को वहन करना होगा।

यूनिवर्सिटी प्रश्न

(१) झा-रिपोर्ट द्वारा निर्धारित "मध्यप्रदेश में माध्यमिक शिक्षा की पुनर्संगठन-योजना" पर समीक्षात्मक मत प्रगट करो (१९५०)

(२) मध्यप्रदेश की माध्यमिक शिक्षा पुनर्संगठन विषयक झा रिपोर्ट की योजना का संक्षेप में वर्णन करो (१९४९)

(३) भारतीय जन-साधारण से निरक्षरता दूर करने के मार्ग सरकारी और प्राइवेट संस्थाओं को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, वे लिखो (१९४७)

(४) यूनिवर्सिटियों में बी. ए. या बी. एससी. की डिग्री तीन साल में प्राप्त करने के लिए जो मत अभी प्रकाशित किये जा रहे हैं उनकी समालोचना करो (१९४७)

(५) पिछले कुछ सालों में शाला जानेवाले बालक और बालिकाओं के शारिरिक स्वास्थ्य को सुधारने के हेतु तुम्हारे प्रांत की सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं ने जो प्रयत्न किये हैं, उनका वर्णन करो।

इस दिशा में और सुधार करने के लिए तुम कुछ साधन सुझाओ (१९४२)

(५) मध्यप्रदेश में सह-शिक्षा की प्रगति और विकास का वर्णन करो। (१९४२)

(७) समाज-शिक्षा और प्रौढ़ साक्षरता के बीच क्या भेद है? मध्यप्रदेश द्वारा नियोजित पाठ्यक्रम ने किस सीमा तक समाज-शिक्षा के उद्देश्यों को पूर्ण किया है? (१९५०)

(८) ज़ाकिर हुसैन-समिति द्वारा प्रतिपन्न बुनियादी शिक्षा के मुख्यसिद्धांत क्या हैं? किस सीमा तक वे व्यावहारिक हैं? (१९४८)

(९) भारतीय माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में सरकारी औरर प्राइवेट प्रयासों का सम्बन्ध संक्षेप में चित्रित करो। इस प्रकार की शिक्षा को प्रभावित करने के लिए सरकार कौनसा पार्ट अदा करे? अपना मत बताओ? (१९३६)

अध्याय २१

विशेष वर्गों की शिक्षा

भारत के विशेष वर्ग

राजनीति और शासन की दृष्टि से अंग्रेजों ने जितनी सफलता के साथ 'फूट करो और राज करो' 'डिवाइड एन्ड' रूल की मैकियावेलियन नीति को भारत में निभाया, उसकी तुलनाका संसार के शासन-इतिहास में कोई दृष्टांत न मिलेगा। अल्पसंख्यकों की सुरक्षा का नारा लगाकर अथवा सिद्धान्त पेशकर उन्होंने भारत में सफलता से फूट-बीज बोया। उधर कतिपय भारतीय-संप्रदायों को विशेष सम्मान और अधिकारों का भागी करार देकर अपने समर्थकों का एक सबल दल भी निर्मित किया। भारत के अंग्रेजी अंश और रियासती अथवा देशी अंश उनकी दूरदर्शिता और राजनैतिक सूझबूझ के बड़े महत्वपूर्ण अस्त्र सिद्ध हुए। विशेषाधिकारों की सुपात्रता का दावा सदैव यथावत् रहे, इस हेतु सहज ही उन्होंने शिक्षा को अपना अप्रतिम साधन माना। एतदर्थ मुसलमान, ईसाई, ऐंग्लोइंडियन, राजकुमार, तथा अन्य अल्पसंख्यक-वर्गों के लिये विशेष प्रकार की शिक्षा आवश्यक बताई। तदनुसार उनके लिये विशेष प्रकार की पाठशालाओं, पाठ्य-क्रमों, छात्रावासों, परीक्षाओं, अध्यापकों एवं रहन-सहन के ढंगों का विधान किया। इन सब कार्यवाहियों के दो केन्द्र बिन्दु थे, एक तो यह कि इस वर्ग के लोग सामान्य भारतीय नागरिक से अपने को एक ऊंचे तबके का सदस्य मानें, और दूसरा यह कि अंग्रेजी हुकूमत को अपने इस अहंकार का अभिभावक मान सदैव अपनी रक्षार्थ उसके चरणों की ओर देखा करें। और खूबवे सफल हुए अपनी चतुराई में। उनका अनुभव हुआ कि ऊपर गिनाया हुआ भारतीय नागरिक अपने को वर्ग विशेष

का जन्मजात प्राणी समझकर साधारण प्राणियों से ऊंचे धरातल का व्यक्ति समझने लगता है। फलतः प्रथकत्व, अहम्मन्यता, रईसी की मदान्धता, अमीराना ठाट इत्यादि की कुत्सितता भी उत्पन्न हो जाती है। जब व्यक्ति अथवा व्यक्तिसमूह परमात्मा की सृष्टि में अपने को स्वाभाविक महानताओं का स्वामी समझता है तो वर्ग-वैषम्य की सृष्टि होती है। कहने की जरूरत नहीं कि संसार के सारे के सारे शासन और राज्य व्यवस्था के कर्णधार अपने को शासन का पैदायशी अधिकारी मानते आये हैं, जिनमें कुछ अजीब गुण, अजीब रहन-सहन, अजीब शिक्षा-दीक्षा, अजीब बोल-चाल ढंग इत्यादि का होना अनिवार्य माना जावे। मानव मानव के बीच जब कुछ वर्ग अपने में इस तरह की स्नॉबरी (snobbery) का आरोप स्वयं कर लेता है तो वह प्रजातंत्रीय सिद्धांतों का गला घोंटता है। अंग्रेजी के पब्लिक स्कूलों की अनेक श्लाघ्य परंपराओं के बीच भी एक नेतृत्व-वर्गवाद का न्यस्त निरंकुश स्वार्थ उत्पन्न हो गया कि जो समाज के सर्वोच्च लाभों का अधिकारी बन बैठा।

भारतीय न्यस्तस्वार्थ खड़ा करने का अंग्रेजी राजनैतिक उद्देश्य

इस तरह नेतागिरी के इस संप्रदाय का जन्म हुआ और ये पब्लिक स्कूल हुए उस संप्रदाय के संवर्धन के गढ़। यह हानिकारी पार्श्व भी पब्लिक स्कूलों के लाभदायी कार्यों के साथ समक्ष प्रस्तुत हुआ। इस संप्रदाय ने अन्य गरीब, पदहीन, प्रतिष्ठाहीन, धनहीन समाज से अपने को ऊँच मानकर उन पर दया-भाव या मेहरबानी रखने की बात अपनाई अथवा उनके साथ विशुद्ध नफरत या घृणा का ही भाव रखा। जहां वैलिंगटन, पिट, आर्नोल्ड, माउंटबेटन जैसे यशस्वी नेता उन स्कूलों से हुए तहां वैलेजली, डेलहौजी, कर्जन, और चर्चिल जैसे घृणा--प्रचारक साम्राज्यवादी भी, जिन्होंने राष्ट्र--प्रेम की अंधी भावना के आगे मानवता को त्राहि-त्राहि करा दी। जब

समाज व्यवस्था में उच्चस्थ लोगों के हाथ में सारी सत्ता और वैभवोपभोग का अधिकार रहता है तो उन्हें सिवा अपने वर्ग के कल्याण के जनता-जनार्दन का ख्याल नहीं आता। इस न्यस्त स्वार्थ को चिरस्थायी बनाने के लिये वे नानाविध साधनों को ईजाद करते हैं। भारतवर्ष में ईस्ट इंडिया कंपनी अथवा अंग्रेजी सरकार के कर्णधार इन्हीं पब्लिक-स्कूल संप्रदाय के व्यक्ति थे। अतः उन्हें अपने जैसों की सामर्थ्य और योग्यता पर ही भरोसा हो सकता था। इस पब्लिक स्कूल प्रणाली का श्रीगणेश उन्होंने भारतवर्ष में भी किया ताकि उनके न्यस्त स्वार्थों के साथ साथ यह भारतीय न्यस्त स्वार्थ सहयोग करे और साम्राज्यवाद का अन्त न हो। भारतवर्ष के जाति-भेद की निंदा करते हुए उन्होंने एक सामाजिक-वर्ग-भेद कायम किया जिसका आधार शासनात्मक न्यस्त-स्वार्थ था कोई परंपराजन्य या नैसर्गिक वैशिष्ट्य अथवा सामर्थ्य नहीं।

गोरी चमड़ी और काली चमड़ी का भेद

यों तो इस वर्ग-विशेष की शिक्षा के विषय में सबसे पहले सन् १८८२ की हंटर कमीशन ने संकेत किया था, परन्तु उसका सूत्रपात इसके पहले ही हो चुका था। कंपनी ने अपने कारखानों में नौकरी करने वाले अंग्रेज अफसरों की हिन्दुस्तानी पत्नियों द्वारा उत्पन्न संतानों की शिक्षा-दीक्षा के हेतु योजना और धन निश्चित किये। इसी उद्देश्य से हमारे भारतवर्ष में एंग्लोइंडियन और स्थानीय यूरोपियनों की शिक्षा का एक विभाग केन्द्रीय सरकार की मातहती में खोला गया। सन् १९१९ के सुधार कानून के बाद जब शिक्षा-विभाग प्रांतीय देशी मंत्रियों के अधिकार में हस्तांतरित कर दिया गया तब भी एंग्लोइंडियन और स्थानीय यूरोपियनों की शिक्षा केन्द्र के हाथ में रही। जिस प्रकार अंग्रेजी राज ने चम के रंग को

आधार मान कर भारत के सारे शासन-क्षेत्र में गोरी चमड़ी और काली चमड़ी का मूर्खतापूर्ण वैमनस्य खड़ा किया था उसी प्रकार इन पाठशालाओं में भी काली चमड़ी वाले भारतीय बालकों को प्रवेश निषिद्ध हो गया। उनके अध्यापक वर्गों की नियुक्ति भी भारतीयों में से नहीं हो सकती थी; अक्सर यह अध्यापक अंग्रेजी साम्राज्यवाद के रस और रंग में डूबे, पके साम्राज्यवादी अंग्रेज होते अथवा होते वही एंग्लोइंडियन जो कि साम्राज्यवादी अंग्रेजों के सच्चे वफादार पिछलग्गू (stooges) बनकर साम्राज्य के काम आते।

एंग्लोइंडियन स्कूलों की विशेषताएं: भारतीय प्रतिक्रियाएं :

उनके स्कूलों की व्यवस्था वास्तव में गैर-सरकारी ईसाई मिशनरियों के हाथ में थी जो विदेशों से पैसा जुटातीं; परन्तु उनकी मैनेजिंग कमेटियों के सभापति सदा सरकारी डिप्टी कमिश्नर ही हुआ करते। इनके अतिरिक्त शासन के बड़े बड़े अधिकारी, गवर्नर, गवर्नर जनरल, वाइसराय, जंगीलाट इत्यादि सबके सब सक्रिय रूप से उन स्कूलों की व्यवस्था में या तो पदाधिकारी होते या दिलचस्पी लेते। इन्हें दी जाने वाली सरकारी ग्रांटों की रकमें भी बड़ी लम्बी होतीं। इस तरह इन स्कूलों में एंग्लोइंडियन पृथक्वाद और वर्गवाद जड़ें फोड़ता रहा और सरकारी अंग्रेजी अफ़सरों ने उसे पुष्ट किया। सरकार ने अल्पमत, नाम का एक न्यस्त-स्वार्थ मुस्लिमों के अतिरिक्त एंग्लोइंडियनों में भी खड़ा किया। डाक-तार विभाग, रेल विभाग, पुलिस विभाग, और फौजों में प्रायः सब के सब एंग्लोइंडियन लड़कों को उच्च पद प्राप्त होते गये भले उनमें शैक्षणिक योग्यता का अभाव ही रहा हो। इन स्कूलों की फीसें उनकी रहन-सहन का अंग्रेजी लहजा, बोलने को अंग्रेजी चाल, खाने-पीने का ढंग सभी अंगेजी राह पर चलते थे और' अधिक खर्च के कायल थे। अंग्रेज लोग इन्हें अपने समीप समझते; भारतीय भी उन्हें ऐसा ही मानते तथा पदों और अधिकार के योग्य समझते। अतः जब सरकारी

पदों पर उन्हें एक के बाद एक तरक्की और लाभ मिलते गये तो महत्वाकांक्षी और धनीमानी भारतीयों को यह बात अखरी। उन्होंने आंदोलन शुरू किया कि चमड़ी के रंग के आधार पर बालकों को पाठशालाओं में प्रवेश देना अथवा निषिद्ध करना घोर अन्याय है और इसलिए उन भारतीयों को भी इन पाठशालाओं में भर्ती दी जाना चाहिये जो वहां की फीस वगैरह देकर वहां के अनुशासन की मांगें पूरी कर सकने में समर्थ हों। भारत के धनीवर्ग ने इस पर आंदोलन किया और शनैः शनैः अधिकारियों ने एक निश्चित संख्या में भारतीय बालक-बालिकाओं को प्रवेश पाने का अधिकार दिया। साथ ही जब उन्हें विज्ञान गणित और हिंदी जैसे कतिपय विषयों के अंग्रेज अथवा एंग्लोइंडियन अध्यापक न मिलने लगे तब उन्हें भारतीयों को भी मास्टर बनाने पर मजबूर होना पड़ा। ये बात अलग है कि भारतीय मास्टरों के साथ भी फिरका परस्ती का व्यवहार किया गया: क्या वेतन, क्या तरक्की, क्या नौकरी की शर्तें इत्यादि। यह परिस्थिति भारत की तत्कालीन अंग्रेजी मनोवृत्तियों के अनुकूल परिवर्तित होती आई है और उसके पाठ्यक्रम, प्रवेश-नियम, इत्यादि में हेरफेर भी बराबर हुए हैं। समस्त एंग्लोइंडियन शालाएं केवल माध्यमिक स्टेज तक शिक्षा देती थीं और सीनियर तथा जूनियर केंब्रिज की परीक्षाओं के नियमों से संचालित होती थीं।

उनके अनुशासन का स्टैंडर्ड और सामाजिक प्रभाव

जहां एक ओर अंग्रेजों के पब्लिक स्कूलों की नाईं स्कूलों ने वर्गवादिता और पृथक्ता तथा रईसी की मदान्धता के विष को शक्ति दी तहां ही शिक्षा-व्यवस्था और अध्यापन-प्रणाली की अच्छी बानगियां भी प्रस्तुत कीं। प्रायः सारी की सारी व्यवस्था पब्लिक स्कूलों के आधार पर थी, प्रत्येक विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास, उन्नति और प्रोत्साहन पर व्यक्तिगत रूप से आंख रखी जाती थी। खेल कूद, दौड़, अनुशासन, वीरता इत्यादि की ट्रेनिंग एंग्लोइंडियन स्कूलों

ने दी है। उनकी तुलना में हमारे भारतीय स्कूलों का मस्तक लज्जा से झुक जाता है। यहां के विद्यार्थियों ने अनुशासन की विशेष अपेक्षा रखनेवाले सरकारी विभागों पल्टन, पुलिस, रेल, तार और डाक इत्यादि में सरकारी नौकरी का अच्छा नमूना पेश किया। विद्यार्थी हमारी शालाओं जैसे दब्बू, भीरु, पुस्तकों के कीड़े न होकर बातचीत, व्यवहार-बर्ताव, रहन-सहन में अधिक तेज, सजीव और साहसी हुए। एंग्लोइंडियन और अंग्रेजी समाज की जो दुराचारिताएं हैं वे भी उन्होंने गले न लगाई हों सो बात नहीं। परन्तु यह पार्श्व वास्तव में व्यक्तिगत जीवन से ही संबंध रखता है, उसका सामाजिक पहलू अभी किसी प्रेक्षणीय परिमाण में हमारे समक्ष नहीं आया है। जो कुछ है वह एंग्लोइंडियन शालाओं में शिक्षा प्राप्त भारतीय विद्यार्थियों द्वारा ही भारतीय समाज में लाया गया है: यथा टेबिल पर बैठकर कांटे छुरी से खाना, विवाह पूर्व का कैशोर्य-रोमांस और प्रणय, वर्षगांठ, बाल-नाच इत्यादि मनाने की प्रणाली। ऐसे स्कूल भारतवर्ष में सर्वत्र कायम हैं।

भारतीय स्वतंत्रता के प्रसंग में इन पाठशालाओं ने अपने सारे रुख को परिवर्तित कर लिया है; चमड़ी के रंग का भेद-भाव भी समाप्त कर लिया है; वे भारतीय विषयों का अध्यापन करते हैं तथा शिक्षा बोर्डों और सिलेबसों से संबद्ध हो गये हैं और भारतीय अध्यापकों को नौकरी देने लगे हैं। अब देखना यह है कि अनुशासन का जैसा ऊंचा स्टेंडर्ड तथा शाला-भक्ति की जो श्लाघ्य परंपराएं उन्होंने कायम की हैं वे नित्य प्रति विद्यार्थियों द्वारा उत्पन्न उद्दंडताओं के बावजूद भी कायम रह सकती है अथवा नहीं? शिक्षकों पर बड़ी भारी जिम्मेदारी है। यदि वे अंग्रेज कालीन वर्ग-वैषम्य और पृथक्वाद की दुर्गन्धि को समाप्त कर अनुशासन का स्टेंडर्ड कायम रखें तो निस्संदेह भारतीय शिक्षा में बड़ा काम कर सकेंगे।

अमीरी वर्ग की शिक्षा: उनकी स्थापना की प्रेरणा:—

वर्ग विशेषों की शिक्षा के अंतर्गत हम केवल दो वर्गों को ले रहे हैं। पहिला तो हुआ एंग्लोइंडियन संप्रदाय और दूसरा हुआ अमीरी संप्रदाय। अमीरी संप्रदाय की शिक्षा का आरंभ वास्तव में देशी रियासतों के राजा महाराजों, नवाबों ऊँचे अफसरों और उद्योगपतियों की संतान की शिक्षा से क्रमशः होता आया है। राजा-महाराजों के राजकुमारों की शिक्षा का उद्देश्य अंग्रेज–सरकार की दृष्टि में राजनैतिक था, जो मैकाले की भावना के दूसरे पहलू का सहयोगी था। उधर मैकाले का इन्फिल्ट्रेशन-सिद्धांत चलता तो इधर वर्ग-विशेष मात्र की शिक्षा का सिद्धांत। वास्तव में इन वर्गों की शालाओं का बीजारोपण सरकारी प्रेरणा से देशी राजा महाराजाओं की निधि तथा संरक्षणता के बीच किया गया। हां, शिक्षा की पूरी प्रणाली, सिलेबस, शिक्षकों और हेडमास्टरों इत्यादि की नियुक्ति अंग्रेजों और अंग्रेजों की शालाओं के अध्यापकों के बीच में से हुई। जहाँ तक संभव हुआ इन स्कूलों के अध्यापक ईटन, हैरो, विंचेस्टर, या रग्बी सदृश पब्लिक स्कूलों के अवकाशप्राप्त या भूतपूर्व अध्यापक थे। यदि यह न हो सका तो भी विलायत से ही वे बुलाये जाते थे। ऐसी संस्थाओं में अंग्रेजी पब्लिक स्कूल की परिपाटी पर किस सीमा तक नेतृत्व की शिक्षा दीक्षा हुई यह कहना असंभव है; परन्तु इन शालाओं में हिज़ मैजस्टी सम्राट इंग्लैंड के बहुत स्वामिभक्त प्रजाशोषक मिडिलमैन उत्पन्न हुए यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है। स्नॉबरी की गढ़ इन शालाओं में रियासती राजकुमारों में रेसहार्स पाले गये। भारत की प्रगति में इन लोगों ने अवरोध ही अवरोध उत्पन्न किये जबकि अंग्रेजों के पब्लिक स्कूलों ने देश का यश सारे संसार में व्याप्त कराया था। स्वतंत्रता की परिस्थिति में प्रतिक्रिया के इन गढ़ों का स्वरूप यदि समाज के स्वामिभक्त कर्णधारों को उत्पन्न करने में संलग्न हुआ तो लाभ होगा। ऐसी शालाओं में अधिकांश की तालिका इस प्रकार है:—

डाली कालेज इन्दौर ।
मेयो कालेज अजमेर ।
राजकुमार कालेज रायपुर ।
सिंधिया पब्लिक स्कूल ग्वालियर ।
दून स्कूल देहरादून ।
राजकुमार कालेज राजकोट ।

अंग्रेजों की साम्राज्यवादी विचार-धाराओं से ओत-प्रोत इन राजकुमारों के लिये बने पब्लिक स्कूलों को देखकर भारतीय संस्कृति के अनुरूप शाला निर्माण करने का विचार कलकत्ते के ख्यातिप्राप्त बैरिस्टर श्रीमान एस० आर० दास के मस्तिष्क में पहलेपहल आया। बाद में दास साहब वाइसराय की कार्यकारिणी के भी सदस्य हुए थे।

एस. आर. दास और इंडियन पब्लिक स्कूल सोसायटी

दास साहब की स्वयं की शिक्षा–दीक्षा पंडित जवाहरलाल-नेहरू की ही नाई अंग्रेजी पब्लिक स्कूलों में हुई थी। इसलिये उन्होंने इंडियन पब्लिकस्कूल सोसायटी की नींव डाली। सोसाइटी के उद्देश्यों को कार्यान्वित करने की शर्त पर सन् १९२७ में वे वाइसराय की कार्य-कारिणी के सदस्य भी हो गये। हैदराबाद, जयपुर, काश्मीर, जैसे रियासतों के प्रधानमंत्री सर अकबर हैदरी और रायबहादुर अमरनाथ अटल ने दास साहब को इस योजना में बहुत मदद दी। परन्तु सन् १९२८ में उनका देहान्त हो गया। उसी समय दास साहब के कार्यकारिणी के अन्य सहयोगी सर जोजफ भोर ने उनका सूत्र ग्रहण कर लिया। और सन् १९३५ में 'दून पब्लिक स्कूल' अपने वर्तमान भूमिखंड पर स्थापित किया गया।

दून-स्कूल की स्थापना, पाठ्यक्रम इत्यादि: मि. फूट हेडमास्टर

देहरादून अपनी जलवायु के कारण बहुत सुन्दर माना जाता है और फारेस्ट कालेज तथा मिलिटरी एकेडमी का केन्द्र पहले से ही रहा

है । सब से पहले हेडमास्टर मिस्टर ए०डी० फूट हुए जिन्होंने इस स्कूल को पूरा आकार दिया है । फूट साहब पहले ईटन में अध्यापक थे और उनका चुनाव इग्लेंड के शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष लार्ड हैलिफैक्स द्वारा संचालित एक चुनाव-समिति के द्वारा किया गया था । फूट साहब ने दो और अध्यापक भर्ती किये एक हैरो से और दूसरे मेडस्टोनसे । फूट साहब १३ वर्ष तक स्कूल के हेडमास्टर रहे । सितम्बर सन् १९३५ में गवर्नर जनरल लार्ड वेलिंगटन की अध्यक्षता में शाला का उद्घाटन समारोह श्रीमती दास की उपस्थिति में किया गया । इसके उपरांत निरन्तर माउंटबैटन, चक्रवर्ति राजगोपालाचारी प्रभृति गवर्नर जनरल उसकी प्रगति में स्वयं उपस्थित होकर भाग लेते रहे । सन् ३५ में स्कूल में ७२ विद्यार्थी और सात शिक्षक थे और अब १५५ विद्यार्थी हैं । भर्ती के लिये इतनी भीड़ रहती है कि सन् १९५० में ही सन् १९५५ तक की तमाम जगहें भरी जा चुकी हैं । स्कूल सीनियर कैंब्रिजसे संबद्ध है और उत्तर प्रदेश के बोर्ड द्वारा उसे इंटर मीडियट कालेज की मान्यता प्राप्त है । विद्यार्थियों की आयु ११ से लेकर १७ वर्ष के बीच रहा करती है। कक्षा-भवन की शिक्षा के अतिरिक्त शिल्प, चित्रकला, शारीरिक व्यायाम, संगीत, कला, कौशल इत्यादि की भी इतनी सुविधाएं हैं कि बालक को आत्माभिव्यक्ति का पूरा अवसर प्राप्त हो सके । बढ़ईगिरी, फोटोग्राफी, सभा--सोसाइटियों इत्यादि में भाग लिये बिना बालकों की शिक्षा बिलकुल अधूरी रहती है । स्कूल में सुधीर खस्तगीर जैसे चोटी के कलाकार नियुक्त हैं । अवकाश के सदुपयोग के विभिन्न साधन मौजूद हैं और हाउसमास्टर के जिम्मे उनकी सर्वांगीण उन्नति रहती है । दंड विधान का उद्देश्य भी बालक सुधार है । आंतरिक शासन में बालकों का सहयोग प्राप्त किया जाता है और 'देहात सभा' के जरिये उन्हें समाज सेवा की शिक्षा दी जाती है । स्कूल में केवल बालकों को ही भर्ती किया जाता है, हां; मास्टरों की लड़कियां भर प्रवेश पा सकती हैं ।

परन्तु सब मिलाकर इन स्कूल रईसों की संस्था है। जब स्कूल का उद्घाटन हो रहा था, वहाँ फूट साहब ने यही घोषित किया था कि हमारा उद्देश्य हमारे विद्यार्थी समुदाय को एक रईसाने समाज का सदस्य बनाकर बाहर भेजना है। परन्तु बाद में उन्होंने तरमीम कर दी कि इन रईसों के बच्चों का आदर्श निस्वार्थ सेवा होगा जिसका आधार न तो धन, न सामाजिक मान-प्रतिष्ठा और न अधिकार रहा है। अब हिन्दी का अध्यापन भी शुरू हो गया है।

संक्षेप में हमने वर्ग विशेषों के इस प्रतिनिधि स्कूल का इतिहास प्रस्तुत किया। बाकी के सब स्कूल भी इसी ढर्रे पर चलते हैं। किस हद तक ये राष्ट्र की प्रगतिशीलता. कल्याण और हितके साधक होंगे यह भविष्य ही कह सकता है। खबरदारी यह रखी जावे कि ये न्यस्त-स्वार्थ, नेताबाजी और प्रतिक्रिया के गढ़ न बन जावें।

अध्याय २२

प्रथम-पंचवर्षीय-योजना (१९५१) और शिक्षा

पंचवर्षीय 'योजना' कांग्रेस का चुनाव पत्र—

स्वतंत्र भारत की पहली कांग्रेसी सरकार का अंतिम महत्वपूर्ण कार्य था उनके द्वारा नियुक्त योजना कमीशन की पंचवर्षीय योजना के मजमून का प्रकाशन। भारतवर्ष के कांग्रेसी प्रधानमंत्री ने जो सन् १९५१ में भारतीय कांग्रेस के अध्यक्ष भी थे आम चुनावों में इस पंचवर्षीय योजना को ही अपना चुनाव-पत्रक, अथवा इलेक्शन मेनीफेस्टो करार दिया। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने घोषणा की कि कांग्रेस के लिये उपरोक्त योजना का सफल बनाना अपने जीवन मरण के प्रश्न से संबंधित है। योजना भारतवर्ष के वर्तमान अस्त व्यस्त, जीर्ण शीर्ण जीवन और समूची आर्थिक व्यवस्था के जीर्णोद्धार की विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत करती ह। इस प्लेनिंग कमीशन के अध्यक्ष प्रधान मंत्री पं जवाहरलाल नेहरू स्वयं थे। सदस्यों की नामावली इस प्रकार थी:— श्री गुलजारीलाल नंदा (उपाध्यक्ष) श्री. वी. टी कृष्णमाचारी (सदस्य), श्री चितामन देशमुख (अर्थ मंत्री भारत सरकार) श्री गगनबिहारीलाल मेहता (सदस्य) श्री आर. के. पाटील (सदस्य) श्री एन. आर. पिल्ले (सचिव) श्री तरलोकसिंग (उपसचिव)। वास्तव में योजना समस्त भारतीय जीवन को एक मिली जुली आर्थिक व्यवस्था के रूप में गढ़ना चाहती है जो न तो विशुद्ध कृषि-व्यवस्था हो, न विशुद्ध औद्योगिक व्यवस्था हो, न विशुद्ध भौतिक वादी प्रेरणा से प्राणान्वित हो और न विशुद्ध अध्यात्मवाद से ही। वह जीवन की इन समस्त प्रेरणाओं को यथास्थान आसीन कर भारतबर्ष में महात्मा गांधी की सर्वोदय प्रणाली का वर्तमान औद्योगिक युग में साक्षात् कराना चाहती है। एतदर्थ यद्यपि उनका प्रधान केन्द्र विन्दु समूची आर्थिक व्यवस्था और आर्थिक क्षेत्र है तो भी उसके साक्षात्कार-

हेतु शिक्षा जैसे साधन की ओर उनका ध्यान गया ही। अभी तक हमने जिस इतिहास का अध्ययन किया है वह विशुद्ध शिक्षात्मक अथव शासनात्मक मात्र था। प्रस्तुत योजना जिस इतिहास का सृजन करना चाहती है वह शिक्षा को एक क्रांतिकारी सजीव और प्रगतिशील जीवन का अंतरंग और अविच्छिन्न भाग मानकर है। अतः इस योजना में अन्य शिक्षात्मक इतिहास की एकदेशीयता का दोष नहीं आने पाता। उसमें शिक्षा विशारदों की अपनी डफली की अपनी राग का आलाप नही और यह बात बहुत श्रेयस्कर हैं। शिक्षा को जो भी महत्व अथवा तूला दिया जावे उसे जीवन का अनिवार्य अंग मात्र मानकर, समूचे जीवन की प्रक्रिया ही मान लेकर नहीं। अब हम इसके कतिपय अंगों पर एक विहंगम दृष्टि डालेंगे।

जीवन के उच्च स्तर और सामाजिक न्याय की उपलब्धि

कमीशन की रिपोर्ट तीन हिस्सों में बाँटी गई है। पहले हिस्से में योजना-प्रणाली की ओर के अपने दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण हैं, दूसरे में योजना के प्रधान अंगों को प्रस्तुत किया गया है और तीसरे में पालिसी तथा शासन के प्रश्नों और समस्याओं का विवेचन है। १९५० के संविधान के द्वितीय अध्याय में सरकारी पालिसी को संचालित करने के जिन सिद्धान्तों का समावेश किया गया है उन्हीं को आधार मानकर योजना आगे बढ़ी है। इन सिद्धान्तों में अवसर की समानता, काम करने का अधिकार, वाजिब मजदूरी पाने का अधिकार और सब नागरिकों के हेतु मांकूल सुरक्षा की प्राप्ति आते हैं। इसलिये योजना के समक्ष दो उद्देश्य रहे। पहला तो देश के नागरिकों को जीवन का अच्छा स्तर प्रदान करना और दूसरा इन्हें सामाजिक न्याय उपलब्ध कराना। इस तरह सब मिलाकर संविधान जिस वेलफेयर स्टेट अथवा कल्याणकारी राज्य की महत्वा-

कांक्षा करता है उसे इस योजना के द्वारा साक्षात् कराने की कांग्रेसी सरकार की मन्शा है। एतदर्थ अनेक परस्पर विरोधी तत्वों का एक समन्वय करने की चेष्टा की गई है। उत्पादन की अधिकाधिकता, बेकारी का पूर्णतः निष्कासन, सस्ती कीमतें और आमद की बराबरी, सबका संकलन करना बड़ी कठिन बात है। किन्तु योजना सबको यथेष्ट परिमाण में सफलतापूर्वक संभव बनाने की चेष्टा करती है। कमीशन ने भारतवर्ष के आर्थिक जीवन के विकास का खाका पेश किया है। उसका अनुमान निम्नलिखित आंकड़ों से हो जावेगा:--

विषय	१९५१–५६ के बीच पूरा खर्च	पूरे खर्च का प्रतिशत
कृषि और ग्रामीण विकास —	१९१.७ करोड़ रु०	१२.८
आबपाशी और बिजली —	४५०·३६ ,,	३०.२
आवागमन के साधन — —	३८८·१२ ,,	२६.१
उद्योग — — —	१००.९९ ,,	६.७
सामाजिक सेवाएं — —	२५४.२२ ,,	१७.०
विस्थापितों का पुनर्वास– —	७९.०० ,,	५.३
विविध — — —	२८.५४ ,,	१.९
	१४९२.९३	१००.०
	अथवा १४९३-०० करोड़ रु.	

विषयों की महत्वशीलता में पांचवा स्थान है सामाजिक सेवाओं का। जिन विभागों की तालिका यहां उदधृत है वे उसी क्रम में हैं कि जिसमें कमीशन ने उन्हें महत्व दिया है अथवा महत्वपूर्ण समझा है। इस तरह सामाजिक सेवाओं को पांचवां महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। परन्तु सामाजिक सेवाओं में पहला महत्वपूर्ण स्थान शिक्षा का है। प्रत्येक विभाग की कार्यान्विति के लिये निम्नलिखित सिलसिले में तरीके बताये हैं। सबसे पहले उन्होंने पालिसी सुझाई, फिर बाद में उसे कार्यान्वित करने का कार्यक्रम रखा और अंत में उसे संपन्न करने के लिये साधनों का विचार किया है। योजना को सफल बनाने में चोदह अरब और तेरान्नवे करोड़ रुपये के खर्च का अनुमान लगाया गया है। सामाजिक-सेवाओं में शिक्षा के अतिरिक्त स्वास्थ्य, पिछड़ी जातियों का उद्धार, स्त्रियों का उत्कर्ष, बच्चों, नवयुवकों, बहरों, गूंगों, अपाहिजों और खानाबदोशों की भलाई के विषय शामिल किये गये हैं।

विषय	(१९५१ से ५३)	(१९५१ से १९५६ तक)
शिक्षा —	—४४.५ करोड़ रू.	१२३.१ करोड़
स्वास्थ्य –	—३३.७ ,,	— ८३.६ ,,
मकान –	— ९.५ ,,	— २२.८ ',
मजदूर और उनका कल्याण	२.५ ,,	— १६.७ ,,
पिछड़ी जातियों का उद्धार	७.० ,,	— १८.० ,,
	९७.२	२५४.२ करोड़

शिक्षा का कमीशन ने स्पर्श मात्र किया है

कमीशन ने शिक्षात्मक प्रगति के विषय का स्पर्श मात्र किया है क्योंकि उनका मत है कि इस विषय को विशेषज्ञों के सुपुर्द ही किया जाना चाहिए। उनका अनुमान है कि भारत की १।७ आबादी

साक्षर हैं। हमारी शिक्षा-प्रणाली अपर्याप्त होने के साथ-साथ हमारी जरूरतों के अनुरूप भी नहीं है। अतः न केवल शिक्षात्मक सुविधाओं का संवर्धन आवश्यक है वरंच साथ ही उसकी आंतरिकता में भी क्रान्तिकारी सुधार और परिवर्तन जरूरी हैं। पिछले पांच सालों में गवर्नरों की राज्य-सरकारों में और खर्च की सामर्थ्य रही नहीं तो भी कमीशन ने उनके जिम्मे लगभग ९१ करोड़ रुपयों का उपयोग कर दिया गया है।

भारत सरकार के कार्य की सीमाएं

भारत सरकार के जिम्मे कमीशन ने सीमित शिक्षात्मक कार्यवाहियाँ सौंपीं। इन सीमाओं में कुछ चुनी हुई योजनाओं, कुछ–पुरोगामी प्रोजैक्ट, शिक्षाविधियों में सुधार करने के प्रयोग, उपयुक्त साहित्य की रचना, स्टाफ की ट्रेनिंग, भाषाओं में उपयुक्त और महत्वपूर्ण रचनाओं का अनुवाद तथा संघीय भाषा की उन्नति आती है। इस खर्च के लिए कमीशन ने ३२ करोड़ रुपये मंजूर किये।

आर्थिक–सुधार पहले–शिक्षा–सुधार बाद में

संपूर्ण योजना के इस भाग का उद्देश्य यह है कि संविधान की उस धारा की पूर्ति शीघ्र की जा सके जिसके अनुसार १४ वर्ष तक की अवस्था के बालकों को निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा देना संभव हो जावे। शिक्षा के महत्व को किसी तरह भी कम किये बिना कमीशन ने एक बहुत व्यावहारिक बात कही है और वह यह कि देश की आर्थिक बुनियादों को बलशाली बनाने का काम पहले आवेगा; तभी बाद में देश अपनी आय में से शिक्षा अथवा अन्य सामाजिक सेवाओं पर खर्च बढ़ा सकेगा।

कमीशन ने स्वीकार किया कि हमारी शिक्षा की अपूर्णता तथा असंपन्नता का कारण हमारी आर्थिक निर्धनता है तथापि हमारी निर्धनता का कारण भी हमारी अपूर्ण और असम्पन्न शिक्षा है।

इस पर गर्वनरी राज्यों में पिछले चार पांच वर्षों में शिक्षा पर कुछ इतना अधिक खर्च बढ़ गया कि कमीशन को शंका होने लगी कि खर्च के इस स्तर को वे आयंदा कायम रख सकेंगे अथवा नहीं? उधर केन्द्रीय सरकार के जिम्मे भी उन्होंने केवल चुनिन्दा कार्य-क्रमों में हाथ बंटाना ही उचित समझा ।

वर्त्तमान शिक्षा के दोष

इन दोषों का निदान करते हुए कमीशन ने शिक्षात्मक अपव्यय की गंभीरता पर अधिक जोर दिया । यह अपव्यय शिक्षा के प्रारंभिक सोपान में सबसे अधिक होता है । इस अपव्यय में हरएक बालक कुल दो तीन साल पढ़कर पाठशाला छोड़ देता है । उस शिक्षा को पा लेने के उपरान्त भी न तो उसकी बुद्धि ठीक हो पाती है न उसकी व्यावहारिक कुशलता का विकास होता है और न उसमें नैतिक अथवा सामाजिक कीमतों का संचार । शिक्षार्थी में जिज्ञासा की भावना नहीं जागती; संतुलनपूर्ण निर्णय-बुद्धि का विकास नहीं होता और न नवीन मार्गों के खोजने का माद्दा ही उसमें पैदा हो पाता है । कमीशन ने गिरते हुए अनुशासन के स्तर की ओर संकेत किया तथा आर्थिक बाजार में शिक्षार्थियों की उस अयोग्यता का उल्लेख भी किया कि जिसके कारण उनमें बेकारी बढ़ती है । बेकार हो जाने पर ये लोग न तो सरकारी महकमों की कुशलता का संवर्धन करते हैं और न निजी व्यवसायों की ही । इसलिये कमीशन ने घोषणा की कि शिक्षा का उद्देश्य इंद्रियों की ट्रेनिंग, बुद्धि का विकास, भावनाओं का परिमार्जन तथा व्यक्ति को सफल जीवन के लिये तैयार करना होना चाहिये । अधिकारों के पूर्व उनमें उत्तरदायित्व का ज्ञान हो, सहयोग और समाज सेवा की मनोवृति जागे । अहंकार और दंभ के स्थान पर विनय, और संग्रह-लोभ के स्थान पर परोपकार की वृत्तियाँ प्रगतिशील हों । अनुचित वृत्तियों का निष्कासन करने के

उपरांत ही देश में वर्ग-वर्ग के आपसी भेद, धर्म-धर्म के दुराव और स्थान स्थान की जो कूपमंडूकता फैली हुई है उस पर विजय पा सकेगा। कमीशन रचनात्मक शक्तियों के उद्बोधन पर विशेष जोर देता है; ताकि कला साहित्य-संगीत के रसास्वादन, और आलोचनात्मक प्रशंसा की वृतियों का जन्म संभव हो जावे। अध्यापन की विधियों के विषय में उन्होंने कहा कि वे इस ढंग की होवें जो स्वयं विद्यार्थियों की भक्ति तथा अभिभावकों के समर्थन की पात्र बन जावें। आने वाले वर्षों में कमीशन ने यह भविष्यवाणी की कि अधिकांश शिक्षार्थी समुदाय विभिन्न रचनात्मक और उत्पादक कार्यों में संलग्न रहा करेगा। अतः उस उत्पादन के स्तर को उन्नतिशील बनाने के हेतु उन शिक्षार्थियों को कार्य विशेषों में कुशलता और चतुराई की ट्रेनिंग देना ही आवश्यक होगा। इस व्यवसायात्मक चतुराई के साथ-साथ उन शिक्षार्थियों में एक सामाजिक दृष्टिकोण, और अनुशासन का संचार करना भी आवश्यक होगा कि जिसकी दम पर ही व्यक्ति अपनी ड्यूटी को ईमानदारी और कुशलता से पूरी कर सकता है।

बुनियादी शिक्षा

६ वर्ष से लेकर १४ वर्ष तक की आयु के बालकों के हेतु कमीशन ने बुनियादी शिक्षा को राष्ट्रीय शिक्षा-पालिसी की बुनियाद, स्वीकार कर लिया है। उस शिक्षा का जो केन्द्र बिन्दु है वह यह कि विद्यार्थी अपने जीवन के माध्यम से ही शिक्षा ग्रहण करता है। उस जीवन का प्रधान साधन हुआ करता है 'कला कौशल'—ऐसा कला कौशल जो उत्पादक होते हुए भी सामाजिक उपयोगिता से पूर्ण है। व्यावहारिक कार्य को प्रत्येक शाला में शीघ्रातिशीघ्र प्रारम्भ कर देने की सिफारिश करते हुए कमीशन ने मौजूदा शालाओं को बेसिक स्कूल बना देने का सुझाव दिया है। इसके अतिरिक्त बेसिक शिक्षा के क्षेत्र में बड़े राज्यों में एक आदर्श बेसिक शिक्षा केन्द्र खोलने का प्रस्ताव उन्होंने रखा

है। केन्द्र उन नवीन पद्धतियों की खोज और अनुसंधान करे जिनके आधार पर पाठशाला स्थानीय जन-जीवन से पूर्णत: अविभक्त और समन्वित की जा सके। इस हेतु पूर्व-बेसिक, बेसिक और बेसिकोत्तर, अध्यापकों की ट्रेनिंग इत्यादि सभी इस केन्द्र में होगी। अंतत: इस केन्द्र को एक ग्राम्य विश्वविद्यालय बनाने का आदर्श समक्ष रखा जावेगा।

माध्यमिक शिक्षा

कमीशन ने माध्यमिक शिक्षा को भारतीय शिक्षा शृंखला की सबसे कमजोर कड़ी करार दिया है। उन्होंने इस सोपान का सर्वांगीण अनुशीलन करना आवश्यक बताया। तदनुसार डा० ए. लक्ष्मणस्वामी मुदालियर मद्रास–विश्वविद्यालय के उपकुलपति की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा-कमीशन जुलाई सन् १९५२ में नियुक्त हो गया है। माध्यमिक शिक्षा के जिम्मे योजना-कमीशन के मतानुसार ग्राम्य क्षेत्रों में अगुवाई कर सकने वाले स्नातक उत्पन्न करना होना चाहिए। समाज की व्यावहारिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने में ये विद्यार्थी सफल होवें तभी इस शिक्षा की सफलता है। उन्होंने शिक्षा के माध्यम और अंग्रेजी भाषा के स्थान के विवादग्रस्त प्रश्न की ओर संकेत मात्र किया है।

विश्वविद्यालय शिक्षा

यूनिवर्सिटियों की बाढ़ को कमीशन ने आर्थिक पुख्तगी के अभाव में बेकार करार दिया है क्योंकि इस बाढ़ की प्रेरणा देशवासियों में आपसी दुराव की भावना है। उन्होंने राधाकृष्णन् कमीशन की सिफारिशों को लगभग पूरी तरह स्वीकार किया तथा अंग्रेजी माध्यम से मातृभाषा माध्यम के संधियुग में अधिक संजीदगी और सावधानी बर्तने की खबरदारी दी है, ताकि उचित पाठ्यग्रंथों के अभाव में शिक्षा का स्तर गिर न जावे। उन्होंने विश्वविद्यालयों में उम्मीदवारों की बाढ़

को उचित नहीं माना क्योंकि इनमें से अधिकांश बालक उस शिक्षा से कोई लाभ नहीं उठा पाते। अतः इससे नीचे की सतहों पर यदि व्यावसायिक और टैक्निकल शिक्षा के उपयोगी साधन जुटाये जावें तो उधर भीड़ कम होगी और इधर शिक्षार्थियों को जीविका का वसीला मिल जावेगा। टैक्निकल शिक्षा और उद्योगों के बीच अधिक अंतरंग सम्पर्क स्थापित करने का सुझाव भी कमीशन ने पेश किया है।

समाज शिक्षा

इस विषय में कमीशन ने कक्षाभवन के अध्यापन को एकदम अप्रधान घोषित किया। इस शिक्षा को प्रदान करने के साधन समाज के विभिन्न कार्यक्रमों, सहकारी संस्थाओं, और कम्यूनिटी सेन्टरों द्वारा ही उपलब्ध होने चाहिए। हाँ समाज–शिक्षा के कार्यकर्ताओं की सिल–सिलेवार ट्रैनिंग की व्यवस्था की जानी एकदम आवश्यक है। इस ट्रैनिग के बल पर कार्यकर्ता समाज की समर्थ शक्तियों को काम में लाने के टैकनीकों का अध्ययन कर सकेंगे। तभी वे समाज का कुछ ऐसा संगठन करने में सफल होंगे जो रचनात्मक होगा। ये लोग परंपरा–सम्मत सांस्कृतिक संस्थाओं जैसे लोक नृत्य. लोक गीत, लोकनाट्य, भजन, कीर्तन इत्यादि के जरिये समाज-शिक्षा को आगे बढ़ा सकेंगे।

कमीशन को शिक्षा–विकास के व्यय का सदा ही अन्दाज रहा इसलिए उन्होंने महात्मा गाँधी की बेसिक प्रणाली के उस आदर्श को पुनः दुहराया जिसमें शिक्षा की आत्मनिर्भरता का उद्घोष है। बात यह है कि इस व्यय को उठा सकना किसी भी आर्थिक व्यवस्था वाली सरकार के लिए उन्हें संभव न दिख पड़ा। एतदर्थ उन्होंने कुछ ऐसी रिसर्चें कराने का सुझाव पेश किया है जिनसे कि शिक्षा के साथ साथ उसके व्यय का कुछ अंश भी उपार्जित किया जा सके। इस प्रसंग में कमीशन ने एक बहुत पते की बात कही है जो अभी तक

किसी भी अधिकारी-कमीशन ने नहीं कही थी। वह बात थी शिक्षा व्यय को उठा सकने की औसतन भारतीय कुटुम्ब की अक्षमता। जिस परिमाण में यह खर्च बढ़ा है उसे उठा सकने में भारत का कुटुम्ब एकदम असमर्थ है, विशेषतः मध्यमवर्ग तो और भी असमर्थ है। इस वर्ग के अच्छे से अच्छे होनहार लड़के महज अपनी गरीबी के कारण उच्च शिक्षा से वंचित रहने को मजबूर होते हैं। इसलिए कमीशन ने शिक्षा-प्राप्ति के साथ-साथ आत्म-निर्भरता और कमाने की विधियों का विधान तथा सहूलियतें पेश करने पर बहुत जोर दियाहै। कमीशन ने इस अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न को आज देश के समक्ष रखा जो उनका अभूतपूर्व एलान है।

विशुद्ध शिक्षात्मक विषयों पर कमीशन ने इसी सीमा तक सिफारिशें पेश की हैं। किन्तु शिक्षा के व्यापक विषय के अंतर्गत उन्होंने दो क्रांतिकारी तत्वों का भी समावेश किया जो हमारे समूचे जीवन की दिशा को परिवर्तित करने की भूमिका रचेंगे। इसमें पहली चीज है 'सामाजिक कार्यकर्ताओं की ट्रेनिंग' और दूसरी है स्वास्थ्य शिक्षा। सामाजिक कल्याण के लिए जब तक कार्यकर्ताओं को कुछ टेकनीक न सिखाया जावेगा उनकी सारी सद्भावना और सेवावृति के बावजूद भी काम में सिलसिला और अल्पव्ययता का संचार न हो पावेगा। अतः व्यावसायिक कार्यकर्ताओं के साथ साथ यदि स्वयंसेवक कार्यकर्ताओं की बड़ी संख्या को काम में लगाना है तो पहलेवालों को ट्रेनिंग देना अनिवार्य है जो स्वयं नेतृत्व और ट्रेनिंग देने में बाद में समर्थ हो जावेंगे। स्वयंसेवकों के हेतु ट्रेनिंग के अल्पकालीन सत्र भी चलाये जा सकते हैं। इसलिये देश की व्यावहारिक आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुकूल पाठयक्रमों का स्टेंडर्डाईज़ेशन करना आवश्यक होगा। कमीशन ने सुझाव दिया है कि शिक्षा की एक केन्द्रीय रिसर्च संस्था स्थापित कराना जरूरी होगा। इस तरह शिक्षा पाकर नवयुवक

और कार्यकर्तागण 'कम्यूनिटी संगठनों' का संचालन करेंगे।

कम्यूनिटी संगठन

पंचवर्षीय योजना को सफल बनाने का असल उत्तरदायित्व सरकारी नौकरों अथवा नौकरशाहों के ऊपर छोड़ने की कमीशन की क़तई मंशा नहीं है। अतः उसके हेतु वे देश की सेवा वृत्ति के बल-पर कम्यूनिटी संगठनों (Community organisations) को अपनी सफलता का प्रधान साधन मानते हैं। संक्षेप में यदि कहा जाये तो यह संगठन निर्दिष्ट क्षेत्रों में रहनेवाले संगठनीय संख्या के कुटुम्बों का एक क्षेत्रीय संगठन होगा जो अपने सामान्य और पारस्परिक हितों के हेतु प्रजातंत्रीय व्यवस्था में अपने को गुंफित करेंगे। उसके कार्यों की प्रेरक-भावना होगी सहकारिता, और उसके संचालनकर्त्ता होंगे वे समस्त मानव जो उस क्षेत्र में रहते हैं। प्रारंभ, में भले सरकार इन संगठनों का सूत्रपात करदे परन्तु शीघ्र ही स्थानीय सूझबूझ, लीडर-शिप और संगठनकर्त्ताओं को तैयार करना आवश्यक होगा। इस प्रकार संगठन अपने समाज के उत्कर्ष और सर्वांगीण विकास के लिये विभिन्न क्रियाओं की खोज करेगा जो ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में किंचित् भिन्न-भिन्न हो सकती हैं।

युवक-कल्याण-आंदोलन

राधाकृष्णन् कमीशन ने भारतवर्ष में इस आंदोलन को चलाने की सिफारिश की थी। योजना-कमीशन ने भी उसका समर्थन किया। इस आन्दोलन के प्रोग्रामों में शारीरिक व्यायाम, मनोरंजन, बौद्धिक और सांस्कृतिक क्रियाएँ, हॉबियों को उत्साह तथा सामाजिक सेवाओं के विभिन्नतः संगठन का समावेश होना चाहिए। एक राष्ट्रीय क्रीड़ांगण के विकास का सुझाव भी उन्होंने दिया है। क्षेत्रीय आधार पर विभिन्न स्वास्थ्यप्रद क्रियाओं को संगठित करने की सिफ़ारिश देते हुए उन्होंने

घने बसे स्थानों में भी उपयुक्त खेल के मैदानों को रिजर्व करने के कानून बनाने की सिफ़ारिश की है। अब हम कमीशन की स्वास्थ्य-शिक्षा विषयक सिफारिशों का संक्षेप में उल्लेख करेंगे।

स्वास्थ्य शिक्षा

कमीशन ने पहला ध्यान प्रायमरी स्कूलों की ओर दिया। स्वास्थ्य-शिक्षा के हेतु इन स्कूलों का पूरा पूरा उपयोग किया जावे ताकि बालकों की व्यक्तिशः और समवेत रूप से स्वस्थ जीवनयापन करने की आदतों को बल मिले। सैद्धांतिक ज्ञान की अपेक्षा स्वच्छता के अध्यापन के जरिये व्यावहारिक आदतों का निर्माण अधिक आवश्यक है। माध्यमिक शालाओं की अन्तिम सीढ़ी पर विद्यार्थी को परीक्षा पास करने के पूर्व स्वच्छता के मौलिक सिद्धांतों, सामूहिक स्वास्थ्य और शरीर-विज्ञान की जानकारी अनिवार्य समझी जावे। प्रत्येक राज्य सरकार हेल्थ-ब्यूरो का संगठन करे जो विशेष ट्रेनिंग प्राप्त अफसरों के हाथ में हों। केन्द्रीय सरकार का स्वास्थ्य विभाग इन ब्यूरों को उपयुक्त साहित्य और सूचनाओं से सहायता करे। शालाओं के लिए इस हेतु उपयुक्त सामग्री और साहित्य जुटाया जावे। कमीशन ने जिस तरह सर्वत्र ग्रामीण जीवन की ओर विशेष ध्यान दिया है उसी तरह स्वास्थ्य-शिक्षा के ग्रामीण कार्यक्रमों पर उनका अधिक जोर है। जच्चागृहों, शिशु-केन्द्रों तथा रेडियो के जरिये स्वास्थ्य-शिक्षा की सहूलियतें और जानकारी प्रदान कराई जाना आवश्यक बनाया है। आयुर्वेद चिकित्सा एवं प्राकृतिक चिकित्सा प्रभृति देशी प्रणालियों के क्षेत्र में रिसर्चों को प्रोत्साहन देने का सुझाव भी कमीशन ने दिया।

शारीरिक शिक्षा

स्वास्थ्य-शिक्षा के प्रसंग में कमीशन का ध्यान स्वभावतः शारीरिक शिक्षा और व्यायाम की ओर गया। एतदर्थ एक राष्ट्रीय

महाविद्यालय के निर्माण को उन्होंने आवश्यक बताया कि जो सामूहिक मनोरंजन एवं नेतृत्व के लिए अपेक्षित व्यक्तियों को ट्रेनिंग देवे। बम्बई की केन्द्रीय संस्था को उन्नत करने की जरूरत उन्होंने बताई। इन पाठशालाओं में खेलकूद एवं यौगिक-व्यायाम की सुविधाएं जुटाने का सुझाव दिया गया है। प्रायमरी स्कूल के अध्यापकों के हेतु शरीर–शिक्षा के अल्पावधि-सत्र भराया जाना आवश्यक है तथा शिक्षकों के टेनिंग-स्कूलों में शरीर शिक्षा आवश्यक विषय माने जाने की सिफारिश उन्होंने की। खेलकूद और विभिन्न व्यायामों के ऊपर शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं शिक्षात्मक दृष्टिकोणों से रिसर्च की जाना चाहिए। योगासनों की सम्भावनाओं का अनुसंधान भी जरूरी है।

इस सम्बन्ध में कमीशन ने जहां बचाव सम्बन्धी तरीकों पर विचार किया तहाँ ही चिकित्सा के हेतु उन्होंने अपने सुझाव पेश किये। जहां-जहाँ बड़ी–बड़ी अस्पतालें मौजूद हैं वहां पर मेडिकल कालेजों की स्थापना की जाने की उन्होंने सिफारिश की। अभी तक मेडिकल कालेजों में जो फेल होनेवाले विद्यार्थियों की संख्या सद बड़ी रहती उस पर उन्होंने चिन्ता प्रगट की। इन कालेजों में ग्रामीण स्वास्थ्य से संबंध रखने वाले कार्यों को सिलेबस में स्थान देना उन्होंने बहुत आवश्यक बतायाहै। पंचवर्षीय योजना में केन्द्रीय सरकार द्वारा अखिल भारतीय मेडिकल इंस्टीट्यूट कायम किये जाने का प्रस्ताव है जो देश में औषधि विज्ञान की ग्रेजुयेटोत्तर शिक्षा का प्रबंध करेगी तथा मेडिकल कालेजों के लिये अध्यापक जुटावेगी। मेडिकल शिक्षा के अतिरिक्त कमीशन नेनान-मेडिकल कार्यकर्त्ताओं की टेनिंग की सुविधाएं जुटाना भी जरूरी बताया ताकि उपयुक्त मेडिकल निरीक्षण के नीचे वे लोग टीके और इनाकुलेशन लगाने, मामूली बीमारियों के निदान तथा उपचार में समर्थ हो जावें। मेडिकल कालेजों को अनुसंधान

शालाएं बनाना एकदम जरूरी है।

इस तरह हम देखते हैं कि प्लानिंग कमीशन ने शिक्षा को राष्ट्रीय जीवन के प्रसंग में आंका है। शिक्षाविदों द्वारा एक न्यस्त-स्वार्थ की नाईं जो शिक्षा को अलाउद्दीन का चिराग बताने की गल्ती की गई उससे कमीशन दूर है। शिक्षा का अपना उपयुक्त स्थान है इसमें संदेह नहीं; किन्तु वह हमारे जीवन का समूचा स्थान हड़पने की अधिकारिणी नहीं, इस तथ्य को शिक्षा-विभाग द्वारा समझा जाना चाहिए क्योंकि जीवन के बहुरूपियेपन में शिक्षा एक साधन मात्र है स्वयं साध्य नहीं। शिक्षाधिकारियों को समझ होना चाहिये कि जीवन में सुरक्षा, भोजन, वस्त्र, निवास, स्वास्थ्य इत्यादि पहले महत्व पाते हैं शिक्षा बाद में। अतः पुलिस और सेना, कृषि और कारखाने, मकान और डाक्टरों के लिये आपको पहले खर्च करना होगा, स्कूलों के लिये बाद में। मेरा ख्याल है पहली दफा एक अधिकारी संस्था ने इस यथार्थवाद को स्वीकार किया और शिक्षात्मक अपव्यय पर लगाम लगाने की ओर संकेत किया। और शिक्षा के अधिकारी शिक्षा के हितैषी हों सो बात रत्तीभर नहीं, वे तो शिक्षा के सब से बड़े दुश्मन हैं जिनका न्यस्त-स्वार्थ शिक्षात्मक विभीषिकाओं के संवर्धन और पोषण में है ताकि वे उन विभीषिकाओं के डाक्टर रूप में आकर टैक्स देने वाले भारतीय को चूसा करें। शिक्षा–क्षेत्र का नौकरशाही तांडव देश की सबसे बड़ी महामारी है इसलिये योजना कमीशन यदि अपनी योजना को स्थानीय जनता के बल पर सफल बनाना चाहती है तो वह हमारे हत्यारे नौकरशाहों के आचरण पर अच्छी कालिख पोत रही है। अब देखना यह है कि कहीं ये सारी योजनाएं लालफीते के मायाजाल में फिर न फँस जायें क्योंकि नौकरशाही गीध उसके शव पर आँखें लगाये बैठे हैं।

कामनवेल्थ की कोलम्बो योजना

भारतवर्ष की अंग्रेजी शिक्षा के इतिहास में एक और नवीन अध्याय खुल रहा है। स्वतंत्र हो जाने के बाद भारत को अपना अन्य देशों के साथ संबंध निश्चित करना पड़ा। अंग्रेजों के साथ जो हम लोग लगभग दो शतियों से बड़ी निकटता से जुड़े हुए थे उसे एकाएक एकदम और पूर्णतः तोड़ देना न तो अच्छी राजनीति मानी गई और न अच्छी स्वार्थनीति ही। एतदर्थ भारत ने अंग्रेजी साम्राज्य की उस संस्था में सम्मिलित होना चतुराई समझी जिसे सन् १९५० तक ब्रिटिश कॉमनवेल्थ ऑफ् नेशन्स (British Commonwealth of Nations) कहा जाता था। भारतीय रिपब्लक की स्वतंत्रता और सम्मान के अनुरूप अंग्रेजी सरकार ने इस सँज्ञा में से ब्रिटिश शब्द को अलग कर देना स्वीकार किया और भारतीय रिपब्लिक के प्रवेश का मार्ग खोल दिया। इस कॉमनवेल्थ में आस्ट्रेलिया, कनेडा, लंका, न्यूजीलैंड, पाकिस्तान, जैसे समृद्धिशाली और औद्योगिक राष्ट्र सम्मिलित हैं। इनके सर्वांगीण विकास और उन्नति की योजनाओं के लिये समय समय पर समस्त सदस्य राष्ट्रों के प्रतिनिधियों की बैठकें देश देश में बारी बारी से हुआ करती हैं। पारस्परिक कल्याण, सहयोग और आदान-प्रदान के उन तमाम विषयों पर यहां योजनाएँ तथा कार्यक्रम बनते हैं जिन पर एक अकेला कोई भी देश सफल प्रोग्राम कार्यान्वित नहीं कर सकता। भारतीय प्लेनिंग कमीशन के निर्माण के उपरांत कामनवेल्थ देशों की एक ऐसी बैठक लंका की राजधानी कोलम्बो में हुई। सन् १९५१ में एक विकास योजना का उन्होंने निर्माण किया जिसे कोलम्बो योजना कहा जाता है।

भारतीय योजना कमीशन ने कोलम्बो योजना को अपने कार्यक्रमों से समवेत करने का उद्योग किया है। तदनुसार हमारे कमीशन ने

अपने देश की उन्नति के लिए विदेशों से सम्मान पूर्ण सहायता लेने का सिद्धान्त स्वीकार किया। इस सिद्धान्त की क्रियान्विति का सबसे महत्व-पूर्ण अंग है— उच्चकोटि के छात्रों का अंतर्राष्ट्रीय आदान-प्रदान एवं शिक्षात्मक प्रबंध। देश के सर्वांगीण विकास के हेतु भारतवर्ष से अनेकों छात्र कॉमनवेल्थ के सदस्य राष्ट्रों की शिक्षा एवं औद्योगिक संस्थाओं में पारस्परिक लेन देन के आधार पर गये। प्रधानतः यह छात्र औद्योगिक और टैक्निकल विषयों के अध्ययनार्थ भेजे गये हैं। इन विषयों में उच्चकोटि की विशेष मशीनों के अध्ययन से लेकर वन-विज्ञान, तथा कृषि-विज्ञान की शिक्षा भी सम्मिलित हैं।

यू. एन. ओ.

इसके अतिरिक्त भारत संयुक्त राष्ट्र संघ का भी सदस्य है डा. राधाकृष्णन उसकी शिक्षा समिति यूनेस्को के अध्यक्ष भी रह चुके हैं। यूनेस्को की स्वयं ही अनेकानेक शिक्षात्मक एवं लोक कल्याणात्मक योजनाएं हैं। एतदर्थ करोड़ों की रकम स्वीकार की गई है तथा उच्चतम कोटि के टैक्निशियनों का भी प्रबंध किया गया है। भारतवर्ष इन दोनों संस्थाओं से शिक्षात्मक लाभ उठा रहा है। अभी वह लाभ सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के उत्पादन तक सीमित है। जब इन कार्यकर्ताओं की ट्रेनिंग समाप्त हो जावेगी तभी हम कह सकते हैं कि इन योजनाओं से देश समृद्ध और लाभान्वित हुआ अथवा नहीं। हमें आशा करना चाहिये कि ऐसा हो सकेगा। वैसे नौकरशाही और लालफीतावाद तथा पून्जीवाद के न्यस्त-स्वार्थों के पंजे उस कल्याण का गला न घोंट दें, इस आशंका के प्रति भी खबरदार रहना जरूरी है।

परिशिष्ट

शिक्षा-प्रगति के कतिपय योगदाता

अंग्रेजी राज्य में शिक्षा के जिन क्षेत्रों में मौलिक कार्य हुआ है वे हैं, ऐतिहासिक खोज और अनुसंधान के। इनमें से कुछ कार्यकर्ताओं का परिश्रम स्थायी और महत्वपूर्ण है। उनके अभाव में भारतीय इतिहास की अनेक गौरव गाथाएं या तो विस्मृति के गर्भ में लीन हो जातीं या उनकी स्मृति भ्रम और अनुमान के जाल में अटकल ही की चीजें होतीं। प्राथमिक माध्यमिक और विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम अथवा अध्यापन की विधियों को लेकर भले इनकी खोजें शिक्षा शास्त्रियों के प्रत्यक्ष प्रयोजन की न सिद्ध हों परन्तु समस्त राष्ट्रीय जीवन और सांस्कृतिक धारावाहिकता की दृष्टि से वे अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इनके आधार पर ही विभिन्न स्टेजों की शिक्षा और शिक्षा संस्थान की भूमिका प्रस्तुत होती है। यों तो उनका उल्लेख यथा स्थान हुआ है परन्तु यहां उनके विषय में कुछ और उपलब्ध बातें कहना उपयुक्त होगा।

प्रथम अंग्रेज-टामस स्टीफेन्स

भारतवर्ष में सर्वप्रथम जिस अंग्रेज के आने की जानकारी है वह है टामस स्टीफेंस। उसका जीवन काल १५४९ से १६१९ के लगभग कहा जाता है। विन्चेस्टर और रोम में उसने शिक्षा पाई थी। उसके बाद वह जीसुइट पादरी (Jesuit) होकर अप्रैल १५७९ में लिस्बन से रवाना हुआ। गोवा के बन्दरगाह तक पहुंचने में उसे छै मास लग गये। स्टीफन्स पहला यूरोपियन है जिसने कोंकण की मराठी का वास्तविक अध्ययन किया। उसने मराठी में

मार्शल

सन् १६७३ में जानमार्शल नामक सज्जन को सरकारी छात्रवृत्ति से भारतीय भाषाओं के अध्ययन का मौका मिला। वह कैंब्रिज का ग्रेजुयेट था और उसने मधूसूदन नामक बंगाली ब्राह्मण द्वारा लिखित संस्कृत ग्रंथ सौन-बीद (सामवेद) के हिन्दुस्तानी संस्करण का अंग्रेजी में अनुवाद किया था। उसने फारसी भाषा में लिखित भागवत पुराण का भी इसी तरह अंग्रेजी में उलथा किया।

वारेन हेस्टिंग्ज (१७३२-१८१८)

वारेन हेस्टिंग्ज स्वयं फारसी का जानकार था। सेमुयल जॉन्सन ने २० मार्च सन् १७७४ को उसे एक चिट्ठी लिखी थी जिससे ऐसा पता लगता है कि कभी वारेनहेस्टिंग्ज ने स्वयं ही एक फारसी व्याकरण लिखने का इरादा किया था। सन् १७५० में भारत में पहुँचकर उसने बंगाल में बोली जाने वाली लोक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। इन भाषाओं में कुशलता तथा कार्यपटुता के कारण सन् १७५९ में उसे मुर्शिदाबाद के नवाब के दरबार में दूत नियुक्त किया गया।

हिन्दू कानून को सम्बद्ध और संकलित करने के लिए वारेन हेस्टिंग्ज ने नौ ब्राह्मणपण्डितों की एक समिति बनाई। समिति ने हिन्दू कानून का संकलन संस्कृत में किया। वारेन हेस्टिंग्ज ने उसे एक संस्कृत जानने वाले मुस्लिम विद्वान द्वारा फारसी में लिखवाया। सन् १७७६ में उसे अंग्रेजी में प्रकाशित भी किया गया। उसीने सन् १७८१ में कलकत्ता-मदरसा कायम किया जिसमें मुस्लिम स्कूलों में पढ़ाये जाने वाले सभी विज्ञान पढ़ाये जाते थे। सन् १७९१ में लार्ड कार्नवालिस बनारस में जो संस्कृत कालेज कायम कर सका वह केवल वारेन हेस्टिंग्ज की प्रेरणा और दृष्टांत का अनुसरण करके ही।

वारेन हेस्टिंग्ज के प्रारम्भ किये गये लाभप्रद कार्य का ही परिणाम है कि विलियम जोन्स प्रभृति पंडितों ने भारतीय खोज को उत्कर्ष प्रदान किया।

न्यायाधीश सर विलियम जोन्स (१७४६–१७९४)

सर विलियम जोन्स कलकत्ते के सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश के पद पर सन् १७८३ में नियुक्त हुए। पहले वे ऑक्सफर्ड में कानून विषय के प्रोफेसर थे और फारसी के अच्छे पंडित भी। भारत में पहुँचते ही उन्होंने संस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ किया। सन् १७७१ में जोन्स का फारसी-व्याकरण प्रकाशित हो चुका था। इसे लिखने में इतिसामुद्दीन नामक सज्जन ने उन्हें मदद की थी। इतिसामुद्दीन ही शायद पहले पढ़े लिखे भारतवासी थे जो पहले-पहल इंग्लैंड गये। सन् १७८५ तक विल्किन्स द्वारा अनूदित श्रीमद् भगवद्गीता, जोन्स द्वारा अनूदित मनुस्मृति, शाकुंतल, गीतगोविन्द और हितोपदेश ने यूरोप में तहलका मचा दिया। जर्मन कवि गेटे इस अनुवाद से अत्यन्त प्रभावित हुआ था।

विल्किन्स और जोन्स मौलिक पथप्रदर्शक हुए। उनके कार्य में सौष्ठव, परिमार्जन एवं परिष्कार करने वाला हेनरी टामस कोलब्रूक नाम का विद्वान पंडित अफसर था। १७९४ में सर विलियम जोन्स की अकाल मृत्यु से वारेन हेस्टिंग्ज का अपूर्ण और असन्तोष-जनक हिन्दू कानूनों का संशोधन कार्य अधूरा रह गया। उसे बाद में जगन्नाथ तर्कपंचानन के सहयोग में कोलब्रूक ने ही पूरा किया। कोलब्रूक का सबसे बड़ा काम भारतीय वैयाकरणों का गंभीर अध्ययन और अनुसंधान था। उसने संस्कृत व्याकरण के लगभग चार हजार नियमों का नियमन प्रस्तुत किया। इन्हें पश्चिम वाले अभी तक न तो समझते थे और न समझने का धैर्य ही रख पाते थे। विल्किन्स और कोलब्रूक के मार्गप्रदर्शन के फलस्वरूप भारतीय

इतिहास संस्कृति ज्ञान-विज्ञान के प्रति पश्चिम में जागति हुई। चित्किन्स ने स्वयं बंगला, अरबी, फारसी और देवनागरी लिपि के स्टेंसिल काटे तथा टाइप ढाल ढाल कर बनाये। भारतवर्ष का सबसे प्रथम मुद्रित ग्रन्थ सन् १७६२ में कलकत्ता में प्रकाशित हुआ। कालीदास रचित 'ऋतु संहार' बंगला देवनागरी लिपि में जोन्स की प्रस्तावना सहित प्रकाशित हुआ था।

बंगाल की एसियाटिक सोसाइटी :

अनेक पथप्रदर्शक कार्यों में बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना भारतीय ज्ञान प्रसार क्षेत्र में स्थायी महत्व की सिद्ध हुई। स्थापना के समय सर विलियम ने प्रवेश की शर्तों का निर्देश किया कि सिवा ज्ञान पिपासा एवं ज्ञान-संवर्धन की भावना के कोई विशेषता आवश्यक नहीं है। भारतीयों ने उसकी सदस्यता सन् १८३२ के लगभग से प्रारम्भ की। प्रथम सदस्यों में महाकवि रवीन्द्रनाथठाकुर के पितामह द्वारकानाथ ठाकुर थे। राजा राममोहन राय के वे अभिन्न मित्र थे। प्रसिद्ध समाज-सुधारक केशवचन्द्र सेन के पितामह रामकमल सेन भी सदस्य हुए थे। जेम्स प्रिसेंप के वे बड़े मित्र थे तथा उन्होंने एक अंग्रेजी-बंगला डिक्शनरी भी प्रकाशित की थी। इस सोसाइटी के भारतीय अन्वेषकों में सबसे प्रथम रिसर्च स्कालर राजा राजेन्द्रलाल मित्र (१८२४-९१) हुए हैं। राजेन्द्रलाल सन् १८८५ में उसके सभापति भी नियुक्त हुए थे।

मुस्लिम पुरातत्व के क्षेत्र में सर सैयद अहमद खां ने (१८१७-९८) 'असार-उस-सनादिद' नामक प्रसिद्ध रचना में मुस्लिम इमारतों, महलों, किलों और मकबरों का सचित्र वर्णन सन् १८४७ में छापा था। मुस्लिम शिलालेखों, लेखों, पत्रों की प्रतिलिपियाँ भी उन्होंने छापीं। दिल्ली, जौनपुर, आगरा, फतेहपुर सीकरी, अहमदाबाद

और बीजापुर इत्यादि जगहों की १५ वीं और १७ वीं शती के बीच बनी मुस्लिम इमारतों को उन्होंने इस तरह दुनिया के सामने रखा।

१७७२ में जार्ज हेडले नाम के बंगाल-सेना के एक अफसर ने हिन्दोस्तानी भाषा का व्याकरण अंग्रेजी में प्रकाशित किया। वह बहुत दिनों तक चलता रहा और उसके कई संस्करण छपे। सन १८७३ में जोन्स फरग्यूसन ने पहली हिन्दोस्तानी डिक्शनरी बनाई। दोनों के संशोधन में जान गिलक्राइस्ट का हाथ रहा।

विलियम केरी

विलियम केरी सन् १७९३ में पादरी बनकर भारतवर्ष आया। उसे कम्पनी का सर्जन टॉमस अच्छा मित्र मिल गया। दोनों अपने अवकाश में बंगला और संस्कृत पढ़ते। सन् १७९६ में केरी ने 'महाभारत' खोलली और सन् १७९८ में व्याकरण भी समाप्त की। कलकत्ते के फोर्ट विलियम कालेज में अंग्रेज अफसरों की ट्रेनिंग के लिए सन् १८०१ में वेलेज़ली ने उसे बंगला, संस्कृत और मराठी का अध्यापक नियुक्त किया। सन् १८१५-२५ के बीच केरी ने बंगाली कोष का संपादन किया।

केरी की रचनाओं का महत्व इसलिए नहीं कि उनमें उच्चतम कोटि का साहित्य है, वरन् इसलिए कि उनकी भाषा में सरलता, शुद्धता और स्पष्टता है। उसकी भाषा में संस्कृत फारसी जैसी पांडित्य अथवा चमत्कार लाने की चेष्टा न होकर स्वस्थ अभिव्यंजना है। आधुनिक बंगला गद्य के सर्व प्रथम लेखक रामराम बसु तथा मृत्युंजय सभी संस्कृतगर्भा बंगला का उपयोग करते। केरी की सभी किताबें सिरामपुर मिशन प्रेस में छपतीं थीं। इस तरह सन् १८१६ तक पच्चीस, तीस रचनाएं छप गईं। उसी वक्त एक साप्ताहिक समाचारपत्र 'समाचार दर्पण' और मासिक पत्रिका 'दिग्दर्शन' का

प्रकाशन शुरु किया गया। इस प्रयोग से बंगला और खड़ी बोली दोनों प्रोत्साहित हुईं। इसी प्रेरणा से लल्लूलाल ने प्रेमसागर नाम का हिन्दी ग्रंथ रचा, तथा मीर अमान ने उर्दू में 'बागो बहार' लिखा। छापने के काम में केरी को एक बंगाली लुहार ने बहुत सहायता पहुँचाई थी। केरी रचित मराठी का व्याकरण तथा उसके अन्य अनुवादों ने भारतीय लोक भाषा साहित्य को बंबई में भी प्रेरणा दी। तदनुसार सन् १८२० में बंबई के गवर्नर एलफिस्टन ने स्कूल बुक और स्कूल सोसाइटी कायम की।

राजा राममोहनराय (१७७२–१८३३)

शिक्षा और ज्ञानविज्ञान के क्षेत्र में राजा राममोहन का नाम अनायास आता है। उनका कार्य-काल उन्नीसवीं शती का पूर्वार्ध है। इस पूर्वार्ध में भारत की नवीन शिक्षा की भूमिका स्थापित की जा चुकी थी। सन् १८१३ में जब कंपनी के जरिये गवर्नर जनरल को एक लाख रुपया ज्ञान विज्ञान के प्रसारार्थ खर्च करने की अनुमति दी गई तो राजा राममोहन ने उसके सदुपयोग के लिए सबसे अधिक प्रयत्न किये। १८०२–१४ के बीच तीन अंग्रेज अफसरों की मातहती में उन्होंने काम किया। अंग्रेजों से उन्हें अंग्रेजी तथा यूरोपीय ज्ञान का भंडार प्राप्त हुआ। फलस्वरूप सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक परिवर्तनों की ओर उनकी लालसा बड़ी तीव्र हो गई। उन्होंने उपनिषदों का अंग्रेजी अनुवाद किया। १८१६ और २० के बीच राममोहन राय ने वेदान्त का सार तथा अनुवाद ग्रंथ प्रकाशित किये। उनके बंगला संस्करण तो कलकत्ते में छपे परन्तु अंग्रेजी संस्करण इंग्लैंड में। राममोहनराय ने आधुनिक बंगला गद्य में उत्कृष्ट रचनाएं कीं, बंगला तथा फारसी पत्र पत्रिकाओं को प्रारम्भ किया। सन् १८२५ में बंगला का एक व्याकरण अंग्रेजी में उन्होंने प्रकाशित किया। सन् १८२३

में उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा का सूत्रपात करने के लिए गवर्नर जनरल को एक स्मृतिपत्र भेजा जिसका आधार ले मैकाले ने भारतीयों के अंग्रेजी-प्रेम की बात सिद्ध करली ।

जार्ज ग्रियरसन (१८५१–१९४१)

भाषा–विज्ञान के क्षेत्र में डाक्टर जार्ज ग्रियरसन का कार्य चिरकाल तक दीपस्तम्भ बना रहेगा । 'बिहार पेजेन्ट लाइफ' (१८८५) नामक ग्रंथ में उन्होंने बिहारी जन जीवन, कृषि, व्यवसाय और शिल्पियों से संबंध रखने वाले बारह हजार वर्णनात्मक शब्दों का संकलन किया । बिहारी जन भाषाओं के उन्होंने सात व्याकरण लिखे । सन् १८८९ में उन्होंने 'वर्तमान हिन्दुस्तानी साहित्य' नामक ग्रंथ में ९५२ लेखकों की तालिका तथा उनकी रचनायें प्रस्तुत की । सन् १८९८ में जार्ज ग्रियरसन को सारे देश के भाषा-सर्वे के लिए भारत सरकार ने नियुक्त किया । लगभग तीस वर्ष के अनवरत श्रम के उपरान्त आठ हजार पृष्ठों के क्वार्टो साइज के बीस ग्रंथ प्रकाशित हुए । ग्रीयरसन ने ५४४ देश भाषाएं स्वीकार कीं । इस महान ग्रंथ में ग्रियरसन के पांडित्य के साथ साथ उनका परिश्रम और उनका शील सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है ।

गोपाल कृष्ण गोखले

गोपाल कृष्ण गोखले आधुनिक भारत के मौलिक निर्माताओं में अग्रगण्य हैं । उनकी अद्वितीय प्रतिभा, अप्रतिम भाषण शैली, देश-प्रेम तथा त्याग बिरलों में देखा जाता है । महात्मा गांधी ने उन्हें अपना राजनैतिक गुरु माना है । निस्वार्थ और कम वेतन पर काम करनें वाले त्यागी देशभक्तों की जिस परंपरा को महात्मा गांधी के साबरमती और वर्धा आश्रमों में उत्कर्ष मिला उसका बीजारोपण महात्मा गोखले ने पूना की सर्वेन्ट्स आफ इंडिया

सोसाइटी के द्वारा इसके पूर्व ही कर दिया था। आत्मत्याग की परंपरा देश सेवकों में प्राण डालती है और राष्ट्रीय जीवन को बल देती है। यह भारतवर्ष में गोखले द्वारा निर्मित हुई। लार्ड कर्जन जैसे उग्र वाइसराय से अगर इज्जत, आत्मसम्मान, तथा पांडित्य के साथ कोई टक्कर ले सकता था तो वह गोखले ही।

गोखले का हृदय दया का भांडार था, विशेषतः भारत के इन अधनंगे, अधभूखे, अधमरे मानवों के प्रति जो सूर्योदय के पहले से लेकर सूर्यास्त के बाद तक लगातार आधा खाये, बिना शिकायत के, खामोशी से सारी बेबसी सारी लाचारियाँ सहते हुए जीवित थे। लार्ड कर्जन के वंग-विच्छेद, यूनिवर्सिटी सुधार, सरकारी गुप्त-वार्ता कानून इत्यादि को गोखले ने फटकार दी। यूनिवर्सिटियों की सेनेटों पर सरकारी शासन के बाहुल्य से जो शिक्षा महंगी हो गई थी वह उन्हें सहन न हो सकी। सरकारी आंकड़े बताते थे कि भारत में साक्षरता १२ फी सदी है। इस झूठ को गोखले ने बड़े साफ शब्दों में पेश किया। उन्होंने सिद्ध किया कि हर पांच गांवों के पीछे प्रत्येक चार गांव स्कूलों से वंचित हैं।

भारतीय राजनैतिक तूफान को सरकार के सामने सही रूप में रखने की दिलेरी गोखले की चीज़ थी। गोखले भारतीय मानवता के सच्चे प्रतिनिधि थे; ऐसे बहादुर प्रतिनिधि कि जो विरोधी को भी अपना मित्र ही मानते थे।

यों गोखले १८९७ में स्वयं ही इंग्लैंड हो आये थे; १९०५-६ में वे भारतीय प्रतिनिधि की हैसियत से भी गये। परन्तु उनकी इस मनोवृत्ति के फलस्वरूप भारतीय जनमत उन्हें जहां नरम मानने लगा था वहां ही उनकी उग्रता को देख सरकारी मत उन्हें गरम मानता था। वे जनता के सामने जहां सरकार की कठि-

नाइयां पेश करते वहां ही सरकार के सामने जनता की आशाएं और महत्वाकांक्षाएं भी। परिणामतः उनके इस मिले जुले व्यक्तित्वका अजीब असर हुआ। कांग्रेस की उग्र परंपरा से उन्हें अपना संबंध तोड़ना पड़ा।

बाल गंगाधर तिलक (१८५७–१९२०)

गोखले और तिलक राजनीति में साथी थे। प्रारंभ में तिलक महाराष्ट्र प्रदेश के बिना मुकुट के राजा रहे; और बाद में वे समस्त भारत के। इनकी वक्रोक्तियां गहरा प्रहार करती थीं।

साथी होकर भी लोकमान्य, गोखले से बहुत भिन्न थे–एक गरम थे तो दूसरे नरम। एक को गांधीजी ने विशाल हिमालय कहा तो दूसरे को पतित पावनी गंगा। तिलक विधान को तोड़ने के हामी थे तो गोखले उसे सुधारने के। गोखले सहयोगी थे तो तिलक बाधा डालनेवाले। गोखले का ध्यान शासन पर था तिलक का राष्ट्र पर। गोखले का आदर्श था स्नेह और त्याग; तिलक का सेवा और आत्मपीड़ा। गोखले विदेशी को जीतना चाहते थे तिलक उसे हराना चाहते थे। गोखले की आशा शिक्षित वर्ग था, तिलक की आशा अगाध जन समुदाय। गोखले का रंग-मंच कौंसिल भवन था तो तिलक का ग्राम–मंडप। तिलक का माध्यम मराठी थी और गोखले का माध्यम अंग्रेजी। गोखले अंग्रेजों द्वारा प्राप्त हुई आत्म–शासन प्रणाली चाहते थे तो तिलक हर भारतीय का जन्मसिद्ध अधिकार स्वराज। गोखले अपने समय के साथ थे तो तिलक उनके कई युग आगे।

महामना मदनमोहन मालवीय

महामना मदनमोहन मालवीय भारतीय सार्वजनिक जीवन

में कांग्रेस के ही जरिये अवतीर्ण हुए। कोई उन्हें यदि कांग्रेस की अंध-भक्ति का अभियोग लगावे तो वह गलत है क्योंकि वे उसके विरोधी के रूप मे भी समादर के पात्र होते आये हैं, अपने उज्ज्वल स्वतंत्र व्यक्तित्व में। हिंदू की हैसियत से प्रगतिशील थे किन्तु कांग्रेसी की हैसियत से वे रूढ़िवादी, तो भी कांग्रेस की उनमें श्रद्धा रही। भारत राष्ट्र को उनकी अनूठी भेंट जो उनका महान स्मारक सदा बनी रहेगी, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी है जिसकी स्थापना श्रीमती एनी बेसंट की प्रेरणा से हुई।

महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर

मानवोत्कर्ष के आदर्शों के स्वप्नों को साक्षात् करने की प्रेरणा से अनुप्राणित हो ऋषिकण्व, मुनि भरद्वाज के आश्रमों अथवा प्लेटो की एकेडेमी की नवीन सृष्टि करने वाला यह एक महात्मा था। दीक्षा के क्षेत्र में वह न तो कोरा आदर्शवादी स्वप्नदृष्टा रहा न केवल व्यवहार की बारीकियों में उलझकर आदर्शों और स्वप्नों का गला घोंट देने वाला ही। भारत के अन्य शिक्षा शास्त्रियों अथवा विश्व ही के समस्त शिक्षा विशारदों की तुलना में रवीन्द्रनाथ की विशेषता है—जो कुछ उन्होंने कहा उसके करने में वे रत हुए; उसे व्यवहारिक स्वरूप दिया, उसे चिरस्थायी बना रखने की शाश्वत प्रेरणाओं की सृष्टि की। अनेक शिक्षा शास्त्री कहीं तो केवल सिद्धान्तों में उलझे रहे तो अन्य केवल उनकी व्यवस्था बंदोबस्त में। भारतीय जीवन और इतिहास के अभिजात अतीत के बाद वसुधैव-कुटुम्बकम् का चेतन संदेश शायद पहली बार ज्ञान-इतिहास में महाकवि रवीन्द्र ने ही दिया।

शांतिनिकेतन उनके आदर्शों की सजीव प्रतिमा है। वे स्वयं शिक्षक थे, प्लेटो, अरस्तू, पेस्टोलाजी सेनेका, फ्रोबेल और मांटेसेरी से कहीं

अधिक आध्यात्मिक और श्रेयस्करी परंपरा के शिक्षक। मानव मानव के भेदों का अपहरण कर मानव मात्र की आंतरिक विच्छेदोन्मुख प्रतिभाओं को समवेत कर एक समन्वयवादिनी शिक्षा प्रणाली का उन्होंने सूत्रपात किया। मानव जीवन का यह सर्वोच्च लक्ष्य है, जिससे मानवात्मा की मुक्ति और पूर्णविकास संभव होते हैं। शिक्षा का कर्तव्य कुछ ऐसी ही सिद्धि होना चाहिये। उसे स्वरूप देने का स्वप्न रवीन्द्रनाथ का निजी स्वप्न था। यों विश्वभारती की स्थापना २२ दिसम्बर १९२१ को हुई परन्तु उसका जन्म १९०१ में ही कवि के पिता के हाथों हो चुका था। उन्होंने अपनी शिक्षा के त्रिविध उद्देश्य सामने रखे:—

(१) पूर्व की विविध संस्कृतियों का अध्ययन (२) श्री निकेतन में सुखी, संतोषी, मानवोचित ग्रामीण जीवन का संचार (३) मानव की विभिन्न भूखंडों में विकसित संस्कृतियों का एकत्रीकरण कर मानव–मानव के भेदों को दूर कर उन्हें समझकर मानवता की एकता के तत्वों को समवेत करना।

इन आदर्शो को जब व्यवहार में परिणत करने की बात आई तो गुरुदेव ने स्पष्ट घोषणा की कि मानसिक विकास एवं स्वास्थ्य के हेतु केवल उनके अध्यापन की शालाएं मात्र आवश्यक नहीं हैं वरंच एक ऐसे संसार का निर्माण ही अपेक्षित है, जिसके संचालन की प्रेरणा व्यक्तिगत–स्नेह की भावना दे। एक ऐसा आश्रम हो जहाँ के समस्त सदस्य जीवन के उस चरम उद्देश्य को पाने के लिये इकट्ठे हों। उन्होंने कहा कि उन्हें अध्यापन पद्धतियों की अपेक्षा मानव की आत्मा का अधिक ख्याल है। "मानव को आत्मा के सत्य का समन्वित रूप प्राप्त हो, जीवन का समन्वित सत्य उपलब्ध हो–सारी शिक्षा का केन्द्र बिन्दु यह समन्वित सत्य हो।"

वे कहते हैं कि कुछ ऐसे सत्य होते हैं जिन्हें हम 'सूचना'

की संज्ञा देते हैं। सूचनाएं हमारे ज्ञान भंडार में बाहर से लाकर जोड़ी जा सकती हैं। पर कुछ ऐसे सत्य भी होते है जिन्हें हम प्रेरणात्मक सत्य की संज्ञा दे दें। उन्हें हम अपनी योग्यताओं की सूची में बाहर से लाकर नहीं जोड़ सकते। दूसरे किस्म के सत्य किसी प्रकार का भोजन नहीं, प्रत्युत उनका गुण हमारी क्षुधा की ही नाईं है।

इस सत्य का दान फुटकर फुटकर खुराकों में बांटकर शिक्षा की मशीनरी के जरिये नहीं हो सकता। वह तो आध्यात्मिक जीवन की ज्वलंत दीपशिखा से ही प्राप्य है जो जीवन के उपयुक्त वातावरण में देदीप्यमान रह सकती है। भारत के वनस्थित आश्रम इस सत्य के अध्यापन का साधन प्रस्तुत करते आये हैं। उपनिषदों में धार्मिक विचारों के शस्य संग्रहीत हैं और उनके चहुंओर धार्मिक जलवायु का वातावरण है। इन्हें सांप्रदायिक नहीं कहा जा सकता। ऐसे धर्म में मुक्ति का सच्चा 'सत्य' होता है जो कि आध्यात्मिक सत्य का सत्व होता है। हमारे शिक्षा केन्द्रों को ऐसे आध्यात्मिक जगत का अनुभव कराना है जो जीवन की कार्य कलाओं का अभीष्ट केन्द्र हों; जो सारे मानव के विचारों और सत्यों का केन्द्र हो। शान्तिनिकेतन शिक्षा के वातावरण-आदर्श का आधुनिक नमूना है। गुरुदेव का आदर्श उनके मरणोपरांत कहां तक मूर्तमान रहेगा यह तो शांतिनिकेतन के अभिभावकों के हाथमें है किन्तु विश्व को उन्होंने भारतीय संस्कृति की जो शाश्वत प्रेरणा दी वह बहुमूल्य है।